उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

बी.ए. कर्मकाण्ड (चतुर्थ सेमेस्टर)

BAKA(N)-202

(CORE COURSE)

शान्ति एवं संस्कार विधान

मानविकी विद्याशाखा

भारतीय कर्मकाण्ड विभाग

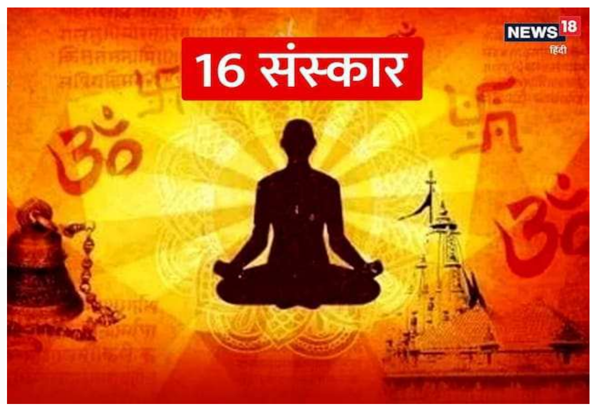

तीनपानी बाईपास रोड , ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139

फोन नं .05946- 261122 , 261123

टॉल फ्री न0 18001804025

Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in

http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम समिति

कुलपति - अध्यक्ष
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

प्रोफेसर रेनू प्रकाश – संयोजक
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि 0, हल्द्वानी

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वैदिक ज्योतिष एवं भारतीय कर्मकाण्ड विभाग

प्रोफेसर रामराज उपाध्याय
पौरोहित्य विभाग
श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रोफेसर रामानुज उपाध्याय
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रोफेसर उपेन्द्र त्रिपाठी
वेद विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पाठ्यक्रम संयोजन एव सम्पादन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वैदिक ज्योतिष-भारतीय कर्मकाण्ड विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
प्रोफेसर रामानुज उपाध्याय वेद विभाग, श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय कटवरिया सराय, नई दिल्ली	**1**	**1,2,3,4**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष वैदिक ज्योतिष-भारतीय कर्मकाण्ड विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**2**	**1,2,3**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष वैदिक ज्योतिष-भारतीय कर्मकाण्ड विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**2/3**	**4/ 1,2,3**
प्रोफेसर रामराज उपाध्याय पौरोहित्य विभाग, श्रीलालबहादुरशास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय कटवरिया सराय, नई दिल्ली	**4**	**1,2,3**

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष : 2025 ISBN No. -

प्रकाशक: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी - 263139 **मुद्रक:**

नोट - : (इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।)

शान्ति एवं संस्कार विधान **CORE COURSE** **BAKA(N)-202**

बी.ए. चतुर्थ सेमेस्टर – (कर्मकाण्ड)

क्रम व इकाइयों के नाम		पृष्ठ संख्या
खण्ड 1	**संस्कार विधान (क)**	**2**
इकाई 1	संस्कार विमर्श	3-22
इकाई 2	जातकर्म एवं नामकरण	23-46
इकाई 3	अन्नप्राशन	47-62
इकाई 4	चूड़ाकरण संस्कार	63-76
खण्ड 2	**संस्कार विधान (ख)**	**77**
इकाई 1	अक्षराम्भ संस्कार	78-84
इकाई 2	उपनयन आवश्यकता एवं महत्व	85-96
इकाई 3	उपनयन विधान	97-109
इकाई 4	वेदारम्भ एवं समावर्तन	110-118
खण्ड 3	**विवाह प्रकरण**	**119**
इकाई 1	विवाह-अर्थ, परिभाषा, प्रकार एवं प्रयोजन	120-127
इकाई 2	विवाह मुहूर्त में शुभाशुभ विवेक	128-138
इकाई 3	वधूप्रवेश एवं द्विरागमन	139-147
खण्ड 4	**शान्ति विधान**	**148**
इकाई 1	मूल शान्ति विधान	149-184
इकाई 2	नवग्रह शान्ति	185-219
इकाई 3	यमल, जनन एवं ज्वारादि रोगोत्पत्ति शान्ति	220-247

बी.ए. (चतुर्थ सेमेस्टर)

CORE COURSE

शान्ति एवं संस्कार विधान

BAKA(N)-202

खण्ड – 1

संस्कार विधान (क)

इकाई – 1 संस्कार विमर्श

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 संस्कार विमर्श

1.3.1 संस्कार शब्द की परिभाषा

1.3.2 लोकप्रिय प्रयोजन

1.4 संस्कारों का भौतिक उद्देश्य

1.4.1 नवग्रह मण्डल रचना प्रकार

1.4.2 नवग्रह मण्डल पर ग्रहों की प्रतिमा, आकार एवं विशेष विचार

1.5 सारांशः

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 बोधप्रश्नों के उत्तर

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAKA(N)-202 के प्रथम खण्ड की पहली इकाई 'संस्कार विमर्श' से सम्बन्धित है। इस इकाई से पूर्व की इकाई में आप पूजन के सभी अंगों एवं विधियों से परिचित हो गये हैं। अतः अब आपको कुछ संस्कारों के विषय में भी ज्ञान कराया जायेगा जो मानव जीवन के अति महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं तथा जिनके बिना मानव जीवन की पूर्णता सम्पन्न नहीं होती है।

प्रस्तुत इस इकाई में पूर्व प्रतिज्ञात-विषय के अनुसार संस्कार शब्द की परिभाषा, संस्कारों की उपयोगिता (प्रयोजन) एवं उसके महत्त्वपूर्ण-पक्ष तथा संख्या आदि के विषय में आपको ज्ञान कराया जायेगा। जो वर्तमान समाज के लोगों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपको संस्कारों के स्वरूप एवं महत्त्व तथा विविध प्रयोजनों का भी ज्ञान स्वतः हो जायेगा। आप जिसे समाज के सामने प्रस्तुत कर सनातन धर्म की रक्षा के साथ-साथ सम्पूर्ण मानवता के पथ को प्रशस्त करेंगे।

1.3 संस्कार विमर्श

अभी सर्वप्रथम संस्कारों के मूलस्रोत पर आपसे चर्चा करते हैं क्योंकि मूलस्रोत के विषय में जिज्ञासा स्वाभाविक है। तो देखें! संस्कारों का मूल स्रोत हमारे भारतीय वैदिक गृह्यसूत्र हैं। यहीं से यह धारा प्रवाहित होते हुए क्रमशः धर्मसूत्र, स्मृतिग्रन्थ, पुराणग्रन्थ, महाकाव्यों आदि में भी प्रवाहशील है। इसके बाद पद्धति, प्रयोगों, टीकाग्रन्थों के माध्यम से तथा आचार्य पुरोहितों के सुकण्ठ से प्रसृत वाणी के रूप में उसका आज भी हम कानों से रसास्वादन करते हैं।

1.3.1 संस्कार शब्द की परिभाषा

किसी भी शब्द के प्राथमिक अर्थज्ञान के लिए सामान्यतः व्याकरण-शास्त्र के अनुसार धातु प्रत्यय आदि का विचार करना आवश्यकता है उसी प्रकार यहाँ भी सम् उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर संस्कार शब्द निष्पन्न होता है। परन्तु इतने अर्थ से आप को सन्तुष्ट नहीं होने देंगे। इसके लिए हम और आगे चलते हैं। यहाँ हम कुछ शास्त्रों की और आप को ले चलेंगे जहाँ भिन्न-भिन्न अर्थों में संस्कार शब्द का प्रयोग हुआ है।

पूर्वाचार्यों के द्वारा संस्कार शब्द का प्रयोग विभिन्न शास्त्रों में भिन्न-भिन्न रूपों में देखा जाता है। जैसे उदाहरण के लिए आप देखें! मीमांसाशास्त्र में यज्ञ के अंगभूत पुरोडाश की शुद्धि के लिए ही संस्कार

शब्द का प्रयोग किया गया है।

'प्रोक्षणादिजन्यसंस्कारो यज्ञांगपुरोडाषेष्विति द्रव्यधर्मः'।

अद्वैतवेदान्त के आचार्य जीव पर शारीरिक क्रियाओं के मिथ्या आरोप को संस्कार मानते हैं। जैसा कि - 'स्नानाचमनादिजन्याः संस्कारा देहे उत्पद्यमानानि तदभिधानानि जीवे कल्प्यन्ते'।

न्यायशास्त्र के आचार्य भावों को व्यक्त करने की आत्मव्यंजक शक्ति को संस्कार मानते हैं। जिसका परिगणन वैशेषिक दर्शन में 24 गुणों के अन्तर्गत किया गया है। जैसे - **रूपरसगन्ध स्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वद्रव्यत्वस्नेहषब्दबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाधर्माधर्मसंस्कारा ष्चतुर्विंशतिर्गुणाः।**

उपरोक्त इन अर्थों से हमारा प्रयोजन यहाँ सिद्ध नहीं होता दीख रहा है अतः अब हम शास्त्रों से हटकर आधुनिक संस्कृत साहित्य में प्रवेश करते हैं, क्योंकि वहाँ भी संस्कार शब्द की चर्चा सुनी जाती है।

संस्कृत साहित्य में 'शुद्धि' के अर्थ में संस्कार शब्द का प्रयोग महाकवि कालिदास ने अपने कुमारसंभव नामक ग्रन्थ में किया है। यथा - '**संस्कारवत्येव गिरामनीषी तया स पूतष्च विभूषितश्च**'। इसी प्रकार आभूषण के अर्थ में भी संस्कार शब्द का प्रयोग देखा जाता है। जैसा कि अभिज्ञानशाकुन्तल नामक ग्रन्थ में कहा गया है-

स्वभाव सुन्दरं वस्तु न संस्कारमपेक्षते। इसके अतिरिक्त प्रभाव या छाप इन अर्थों में भी इसका प्रयोग देखा जाता है। जैसा कि 'यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्'।

उपर्युक्त अर्थों के अलावा मनुस्मृति का एक वचन हम प्रस्तुत करते हैं, शायद जो अर्थ हम चाहते हैं उसके निकट पहुँच जाये।

'कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह यः'

अर्थात् शरीर को पावन (पवित्र) बनाने के लिए धार्मिक अनुष्ठान की विधि ही संस्कार है। इस प्रकार इन अर्थों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने से यही बात सामने आती है कि जिस संस्कार की चर्चा हम करने जा रहे हैं उसका तात्पर्य यह है कि संस्कार, मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का परिष्कार एवं पूर्णता का प्रतीक है। शास्त्रोक्त विधि से अनुष्ठित संस्कार मानव में मानवता प्रदान करते हुए उसे समाजोपयोगी बनाते हैं। इसी बात का समर्थन वीरमित्रोदय नामक ग्रन्थ भी करता है। जैसा कि - आत्मशरीरान्तरनिष्ठो विहितक्रियाजन्योऽतिशयविशेषः संस्कारः। इस प्रकार मानवता की पूर्णता, शुद्धि एवं उसका समाज के लायक योग्यता संस्कार से ही सम्पन्न होती है। यही निष्कर्ष है। इसी बात को हम और स्पष्ट करने के लिए एक सुन्दर सा उदाहरण देते हैं धैर्यपूर्वक आप श्रवण करें।

संस्कार में दो प्रकार की वस्तुएँ देखने में आती है, एक प्राकृत दूसरी संस्कृत। प्रकृति ने जिस रूप में जिस वस्तु को पैदा किया वह उसी रूप में बनी रहे तो उसे प्राकृत वस्तु कहेंगे। जैसे पर्वत, जंगल के वृक्ष, नदी आदि। किन्तु प्रकृति के द्वारा पैदा की हुई वस्तु का अपने उपयोग में लाने के लिए जब हम कुछ सुधार करते हैं तब उस सुधरी हुई वस्तु को संस्कृत कहा जाता है। वह सुधार ही संस्कार है। अर्थात् अपने लिए तथा समाज के लिए उपयोगी बनाना ही संस्कार है तथा संस्कृत होकर वह व्यक्ति अपने में पूर्ण हो जाता है। उसे अन्य गुणों की अपेक्षा अब नहीं रह जाती है। यह संस्कार (सुधार) तीन प्रकार से होता है - दोषमार्जन, अतिशयाधान, हीनांगपूर्ति। इसें हम उदाहरण के साथ आगे बतायेंगे। जैसे -

लोहा जिस प्रकार खान से निकलता है ठीक उसी प्रकार उसका उपयोग हम आप नहीं कर सकते हैं क्योंकि वह अति-मलिन होता है। यदि उससे तलवार बनानी हो तो उसका संस्कार करना पड़ता है। इसी प्रकार एक दूसरा उदाहरण जैसे - धान जिस प्रकार खेत से निकलता है ठीक उसी प्रकार हम उसका उपभोग (भोजन) नहीं कर सकते हैं उससे भूँसी उसका अलग करना ही पड़ेगा, फिर चावल बनाकर उसके साथ अन्य द्रव्यों के संयोग से हम उसे ग्रहण करते हैं।

इस प्रकार हम पहले कह चुके हैं कि संस्कार में तीन बातें अति महत्त्वपूर्ण की हैं।

क. दोषमार्जन - अर्थात् उसे साफ करना (प्रकृति के द्वारा पैदा किए हुए पदार्थ में यदि कोई दोष हो तो अपने उपयोग में लाने के लिए सुधार करते हैं, जिसका नाम दोषमार्जन है।

ख. अतिशयाधान - उपयोगी बनाने के लिए कुछ विशेषता उत्पन्न कर देना ही अतिषयाधान है।

ग. हीनांगपूर्ति - फिर उपयुक्तता में कोई त्रुटि हो तो अन्य पदार्थ को मिलाकर उसकी पूर्ति करना ही हीनांगपूर्ति है ।

एक और उदाहरण से इसे समझे - कपास के वृक्ष से प्राप्त मलिन कपास को साफ करना दोषमार्जन है, उससे कपड़ा (कुर्ता) बना लेना अतिशयाधान है, और बटन आदि लगाकर पहनने लायक बनाना यह हीनांगपूर्ति है। इसी प्रकार धान से भी भूसी अलग करना दोषमार्जन है। शुद्ध चावल को जल में मिलाकर अग्नि पर पकाना अतिशयाधान है अर्थात् खाने लायक रूप गुण उसमें लाना तथा उसे दाल सब्जी आदि के साथ भोजन करना यहीं हीनांगपूर्ति है।

ये ही बातें संस्कारों पर भी लागू होती है। गर्भाधान, जातकर्म, अन्नप्राश आदि संस्कारों के द्वारा मानव का दोषमार्जन होता है। चूडाकरण, उपयनयन आदि संस्कारों के द्वारा अतिशयाधान (विशेष गुण की स्थापना) होता है तथा विवाह, अग्न्याधान आदि संस्कारों के द्वारा हीनांगपूर्ति होती है।

गार्भैर्होमैर्जातकर्म चौडमौंजी निबन्धनैः।

बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते।।

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैः निषेकादिद्विजन्मनाम्।

कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च।।

इस प्रकार संस्कारों के इन्हीं तीनों गुणों से मानव अपने जीवन को पूर्ण करता है। तथा इस लोक में सुख शान्ति का अनुभव करते हुए शान्ति से परलोक सुख का भी आनन्द लेता है।

आज सभी मानव अपने को पूर्ण बनने की अभिलाषा रखते हैं और रखना भी चाहिए, जो वर्तमान समाज के लिए एवं स्वयं के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्पूर्ण है।

मित्रों! संसार में सभी वस्तुओं की यही दशा है। लोहा जिस रूप में खान से निकलता है उसे देखकर कोई आशा भी नहीं कर सकता, कि यह वस्तु हमारे बड़े काम की होगी, किन्तु बड़े बड़े कारखानों द्वारा पहले जिसका दोषमार्जन होता है तथा कुशल-कारीगरों से भिन्न-भिन्न रूप दिलवाकर तेज धार आदि दिलाकर अतिशयाधान अर्थात् विशेषता उसमें उत्पन्न की जाती है, फिर भी उपयोग में लाने के लिए तलवार में मूंठ (लकड़ी का पकड़ने के लिए) आदि लगाकर हीनांगपूर्ति जब कर ली जाती है, तब वह सुसंस्कृत लोहा हमारे लिए सभी प्रकार से उपयोगी सिद्ध होता है। जिस प्रकार आज अनुदिन नये नये आविष्कार बड़े गर्व के साथ भारतीय कौशल सम्पन्न कारीगर करते हैं, ठीक उसी प्रकार प्राचीन भारतीयों को भी यह अभिमान था कि हम संस्कार से मनुष्य को जैसा चाहे वैसा बना सकते हैं। अस्तु।

विषय को हम यहीं संक्षेप करते हैं अन्यथा विस्तृत हो जायेगा।

इस प्रकार हमारे जीवन में इन संस्कारों का आध्यात्मिक महत्त्व तो अत्यन्त उत्तम है, परन्तु इस वैज्ञानिक तथा तार्किक युग में उत्पन्न मानव-जाति के लिए भी इसे समझना एवं समझाना अत्यन्त आवश्यक है। जिसका दायित्व इस पाठ्यक्रम के अध्येता को है। अस्तु।

यहाँ संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि संस्कार, दोषमार्जन, अतिशयाधान, हीनांगपूर्ति रूप तीन गुणों से व्यक्ति को पूर्ण मानव की संज्ञा से विभूषित करता है।

संस्कार की परिभाषा के बाद हम इन संस्कारों का प्रयोजन क्या है? इसे आपको बताने जा रहे हैं। क्योंकि बिना प्रयोजन (उद्देश्य) के संसार में कोई भी व्यक्ति किसी भी काम में प्रवृत्त नहीं होता है। आप देखें। वेद के भी आदेशवाक्यों को मानने के लिए तथा उसमें मनुष्य को प्रवृत्त होने के लिए अर्थवाद वाक्य (प्रशंसावाक्य) ब्राह्मणग्रन्थों में भरे पड़े हैं, तथा जिनका उपयोग या प्रयोजन मात्र विधिवाक्य की स्तुति या प्रशंसा करके मानव को उस कर्म में लगाना है। उसी तरह यहाँ पर हम कहते

हैं कि संस्कार एक शास्त्रीय विधि है जिसे सभी मनुष्यों को अपनी पूर्णता के लिए करनी चाहिए, फिर भी आज वर्तमान समाज में विवाह एवं उपनयन के अलावा कोई भी संस्कार दिखाई नहीं देता है। अब तो कछ लोग कुल परम्परा को मानकर विवाह में ही उपनयन (जनेऊ) संस्कार कर देते हैं। जिसका फल विवाह संस्कार तक वह मनुष्य पतित हो जाता है। इन संस्कारों में भी केवल नाम मात्र की ही शास्त्रीय विधि रह गई है शेष आप सब जान ही रहे हैं, जिस के कारण ही आज वर्तमान भारत की दुर्दषा हमें देखनी पड़ रही है। आज कोई भी मानव संस्कारों से संस्कृत नहीं है। जिसका फल उसका नारकीय-जीवन या पशुओं की तरह जीवन जीने के लिए वह बाध्य है। द्रव्योपार्जन में तो अपना सम्पूर्ण जीवन लगा ही देता है, फिर भी सुख या शान्ति उसे नहीं मिलती। वह चैन के लिए हमेशा बेचैन रहता है। कितना भी दुख कहा जाय कम ही है अस्तु।

अतः अब कुछ नई चर्चा संस्कारों के प्रयोजन से सम्बद्ध करने जा रहे हैं। ध्यान से देखें।

1.3.2 लोकप्रिय प्रयोजन

लोकप्रिय प्रयोजन पर विचार करते समय हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि मानव समाज में प्राचीन काल से ही यह धारणा थी कि कुछ ऐसे भी अमंगल तत्त्व है जिनसे रक्षा करना हमारा परम दायित्व है। लोगों की धारणा थी कि किसी भी महत्त्वपूर्ण अवसर पर व्यक्ति के जीवन में वे अमंगल तत्त्व (भूत-प्रेतादि) हस्तक्षेप कर सकते हैं अतः अमंगलजनक प्रभावों के निराकरण के लिए तथा हितकर प्रभावों की प्राप्ति के लिए प्राचीन लोग प्रयत्न किया करते थे, जिससे मनुष्य बिना किसी बाह्य विघ्न के अपना विकास और अभिवृद्धि कर सके और देवों तथा दिव्य शक्तियों से सामयिक निर्देश एवं सहायता प्राप्त कर सके। संस्कारों के अनेक अंगों के मूल में यही विश्वास रहे हैं । आइए कुछ उदाहरण से इसे हम और स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं।

हमारे यहाँ संस्कारों में अवांछित प्रभावों का निराकरण के लिए गृह्यसूत्रों में संस्कारों के अन्तर्गत, अनेक साधनों का अवलम्बन करने का निर्देश मिलता है। इनमें प्रथम-स्थान, आराधना का है। आराधना सबसे पहले अशुभ निवारण शक्तियों की जाती है। जैसे तत्कालीन समाज में अशुभ शक्तियों के प्रभाव से मुक्त रहने के लिए उन्हें बलि तथा भोजन दिया जाता था जिससे वे तृप्त होकर बिना किसी प्रकार की क्षति पहुँचाए लौट जाये। गृहस्थ अपनी पत्नी और बच्चों की रक्षा के लिए सदा चिन्तित रहता था । तथा भूतप्रेतादिकों की निवृत्ति अपना परम कर्तव्य समझता था। जैसे स्त्री के गर्भिणी रहने के समय या शैशव काल में बालक के ऊपर होने वाली बाधाओं के समय पिता कहता था कि ''शिशुओं पर आक्रमण करने वाले कूर्कुर सकुर्कूर शिशु को मुक्त कर दो। हे सीसर मैं तुम्हें बलि देकर अपनी स्तुति से प्रसन्न करना चाहता हूँ जिससे इस बालक का अनिष्ट दूर हो जाय।

पारस्करगृह्यसूत्र के टीकाकार आचार्य गदाधर कहते हैं ''ततस्तुष्टः सन् एनं एनं कुमारं मुंचय' आदि मन्त्र पढ़े जाते थे।

इसी तरह जातकर्म संस्कार के समय शिशु का पिता कहता है कि हे! शण्डामर्क उपवीर शौण्डिकेय, उलूखल मलिम्लुच द्रोणास और च्यवन तुम सभी यहाँ से अदृश्य हो जाओ । ऐसा मन्त्र पढ़कर स्वाहा अर्थात् घृत से आहुति देता है।

गृहस्थ देवताओं से भी अशुभ प्रभावों के निवारण के लिए प्रार्थना करता था । चतुर्थी-कर्म के अवसर पर नव विवाहिता पत्नी के घातक तत्त्वों के निवारण के लिए अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, गन्धर्व आदि देवों का आवाहन एवं पूजन करता था। इस तरह के असंख्य उदाहरण है । हमारा प्रयोजन यहाँ प्रसंगवश संकेत कर देने से है।

जिस प्रकार अवांछित प्रभावों के निराकरण के लिए संस्कार किये जाते थे, ठीक उसी प्रकार अभीष्ट प्रभावों के आकर्षण के लिए भी संस्कारों का विधान बताया गया है शास्त्रों में।

हम सामान्य रूप से देखते हैं कि प्राचीन लोगों का यह विश्वास था कि जीवन का प्रत्येक क्षण किसी न किसी देवता द्वारा अधिष्ठित है। अर्थात् उस काल में अमुक देवता उसकी रक्षा करते हैं। अतः अवसर उपस्थित होने पर उस देवता की स्तुति या आराधना अवश्य की जाती थी। जैसे गर्भाधान के समय विष्णु प्रधान देवता है, विवाह के समय प्रजापति और उपनयन के समय बृहस्पति इत्यादि। तत् तत् कालों के उपस्थित होने पर इनकी पूजा की जाती थी। यही नहीं शुभ वस्तुओं के स्पर्श से भी वे मंगल परिणाम की आशा करते थे। जैसे सीमन्तोन्नयन संस्कार के समय उदुम्बर वृक्ष की शाखा का पत्नी के गले से स्पर्श कराया जाता था क्योंकि यह विश्वास था कि उसके स्पर्श से स्त्री में उर्वरता (सन्तति प्रजनन) की क्षमता आयेगी। जैसे - औदुम्बरेण त्रिवृतमाबध्नाति - अयमूर्जावतो वृक्षः उर्ज्जीव फलिनी भव' इसी प्रकार सन्तति प्रजनन के लिए पत्नी की नाक के दायें छिद्र में दूरव्यापी जड़वाले विशाल वटवृक्ष के कोपल का रस छोड़ा जाता था। अस्तु।

अब हम इसके अतिरिक्त कुछ दूसरे प्रयोजनों पर भी विचार करते हैं -

1.4 संस्कारों का भौतिक उद्देश्य

संस्कारों का भौतिक उद्देश्य धन-धान्य-पशु-सन्तान-दीर्घजीवन-सम्पत्ति-समृद्धि-शक्ति और बुद्धि की प्राप्ति। चूँकि संस्कार गृह्यकृत्य थे, और स्वभावतः उनके अनुष्ठान के समय घरेलू जीवन के लिए आवश्य सभी वस्तुओं की प्रार्थना देवताओं से की जाती थी। हमारे भारतीय जनों का यह विश्वास था कि आराधना एवं प्रार्थना के माध्यम से उनकी इच्छाओं को देवता जान लेते हैं, तथा समय पर प्रदान भी करते हैं। क्योंकि वे (देवता) सर्वज्ञ होते हैं । अतः संस्कारों में प्रायः इससे सम्बद्ध

बहुत सारी प्रार्थनायें आती हैं। जैसे विवाह में सप्तपदी के अवसर पर ''एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु, द्वे उर्ज्जे त्रीणि रायस्योषाय चत्वारि मायोभवाय, पंच पंषुभ्यः षड् ऋतुभ्यः'।

इस प्रकार भौतिक सुख-समृद्धि की प्राप्ति भी एक प्रकार से संस्कारों का मुख्य प्रयोजन था।

अब हम आपको कुछ आचार्यों के पास ले चलेंगे जिन्होंने भी संस्कारों के प्रयोजन के विषय में कुछ कहा है जिन्हें संक्षेप में उनके भावसौरभ की सुगन्ध आप तक चहुँचाने का प्रयत्न करता हूँ।

सांस्कृतिक प्रयोजन

संस्कारों के लोकप्रिय प्रयोजन को पूर्णतः स्वीकार करते हुए महान् लेखकों एवं धार्मिक विधिनिर्माताओं ने उनमें उच्चतर धर्म और पवित्रता का समावेश करने का प्रयास किया है। जिसमें सर्वप्रथम आचार्य मनु की चर्चा प्रस्तुत की जा रही है। आचार्य मनु कहते हैं कि गार्भहोम (गर्भाधान के अवसर पर किये जाने वाले होम आदि) जातकर्म चूडाकर्म (मुण्डन) और मौंजीबन्धन (उपनयन) संस्कार के अनुष्ठान से द्विजों के गर्भ तथा बीज सम्बन्धी दोष दूर हो जाते हैं।

गार्भैहोमैर्जातकर्म चौडमौंजी निबन्धनैः।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते।।

आचार्य याज्ञवल्क्य भी ठीक इसी मत का समर्थन करते हैं।

प्राचीन लोगों का विश्वास था कि बीज और गर्भाधान, अपवित्र अर्थात् अशुद्ध होता है। इनकी पवित्रता जातकर्म आदि संस्कारों से ही सम्भव है। जैसा कि आज भी हमलोग संस्कार के शुभ संकल्प के सुअवसर पर ''बीजगर्भसमुद्भवैनोनिवर्हणोजातकर्मादिजन्य' इसी मूल वाक्य का पदान्तर प्रक्षेप के साथ पाठ करते हैं। इस प्रकार यह भी एक संस्कार का परम प्रयोजन था। आचार्य अंगिरा भी इसे प्रकारान्तर से इस प्रकार कहते हैं-

चित्रकर्म यथानेकैरंगैरुन्मील्यते शनैः।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकम्।।

अर्थात् चित्र निर्माण करते समय विविध रंगों की आवश्यकता होती है तत् तद् अंगों के निर्माण के लिए, ठीक उसी प्रकार विविध संस्कारों के द्वारा ही मानव की पूर्णता सम्पन्न होती है।

आचार्य शंख लिखते हैं कि संस्कारों से संस्कृत आठ आत्मगुणों से युक्त व्यक्ति ब्रह्मलोक में पहुँचकर ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेता है। जिससे वह कभी गिरता नहीं है।

संस्कारैः संस्कृतः पूर्वैरुत्तरैरनुसंस्कृतः।
नित्यमष्टगुणैर्युक्तो ब्राह्मणो ब्राह्मलौकिकः।

ब्राह्मं पदमवाप्नोति यस्मान्नच्यवते पुनः।।

इससे यह सिद्ध होता है कि संस्कारों का प्रयोजन स्वर्ग तथा मोक्ष लाभ भी था। हो भी क्यों न, मोक्ष को तो जीवन का चरम उद्देश्य हमारे ऋषियों ने माना है। मोक्षप्राप्ति में पहले स्वस्वरूप ज्ञान, गुरु के 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों के उपदेश से होता है, फिर 'अहं ब्रह्मास्मि' का बोध होता है इसके बाद जीव संसार से मुक्त होकर परमपद (मोक्ष) को प्राप्त करता है। क्योंकि मोक्ष में भी कारण, ज्ञान ही है। 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'। यह ज्ञान ब्रह्मनिष्ठ गुरु के उपदेश से ही संभव है। अस्तु।

1.4.1 नैतिक प्रयोजन

हमारे भारतीय संस्कारों का एक नैतिक प्रयोजन भी है जिसकी आज के समाज में अत्यन्त आवश्यकता है।

आचार्य गौतम चालीस-संस्कारों को गिनाने के पश्चात् आत्मा के (मनुष्य) आठ गुणों का उल्लेख करते हैं - क. दया, ख. क्षमा, ग. अनुसूया, घ. शौच ङ. शम, च. उचित व्यवहार, छ. निरीहता, ज. निर्लोभता।

वे आगे कहते हैं के जिस व्यक्ति ने 40 संस्कारों का अनुष्ठान तो किया है, किन्तु आठ आत्मगुणों का जिसमें अभाव है उसके सारे 40 संस्कार निरर्थक हैं।

अर्थात् आचार्य गौतम के अनुसार संस्कारों का नैतिक प्रयोजन ही सर्वश्रेष्ठ है। जिसका अनुभव हम आज के समाज में अनुदिन करते हैं। व्यक्ति पढ़-लिखकर साक्षर तो हो जाता है पर नैतिक दायित्वों के अभाव में शुद्ध रूप से मनुष्य भी उसे नहीं कहा जा सकता है। इसलिए संस्कारों का परम प्रयोजन नैतिक गुणों की प्राप्ति से है जिन्हें विकसित करना वर्तमान समाज में अत्यन्त आवश्यक है। आज भी इन संस्कारों से हम नैतिक सद्गुणों की वृद्धि की अपेक्षा अवश्य ही रखते हैं।

1.4.2 व्यक्तित्व का निर्माण और विकास

आज देश को सबसे बड़ी आवश्कयता चरित्रवान्, व्यक्ति या समाज की है। उसे हम व्यक्तित्व के निर्माण की भी संज्ञा प्रकारान्तर से दे सकते हैं। वास्तव में देखा जाय तो इस देश में जितना ही संस्कारों का ह्रास हुआ, उतना ही चरित्र या व्यक्तित्व का पतन हुआ। वह दिन दूर नहीं जब लाखों व्यक्ति में कोई एक चरित्रवान् होगा। प्राचीन काल में आधुनिक सुविधा के अभाव में लोग भले ही वैभव सम्पन्न कम होते थे, साक्षर कम होते थे, लेकिन चरित्रहीन पथभ्रष्ट कम होते थे उनमें संस्कारों का ही प्रभाव था, जिससे कभी भी वे अपने स्थान से या अपने सिद्धान्त से हट नहीं सकते थे। तथा ये संस्कार उनके चरित्र की रक्षा सदैव करते थे।

आइये हम एक दो उदाहरण से इसे और भी स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं।

आप अनुभव करेंगे, संस्कार जीवन के प्रत्येक भाग को व्याप्त कर लेते हैं। ये संस्कार इस प्रकार व्यवस्थित किये गये है कि जीवन के आरम्भ से ही व्यक्ति उनके प्रभाव में आ जाता है। आदिकाल से ही संस्कार जीवन में मार्गदर्शन का कार्य करते थे। जो आयु बढ़ने के साथ व्यक्ति के जीवन की एक निर्दिष्ट दिशा की ओर ले जाते थे। उसका परिणाम होता था कि एक संस्कृत (संस्कारवान्) मनुष्य के लिए अनुशासित जीवन व्यतीत करना आवष्यक होता था, तथा उसकी शक्तियाँ सुनियोजित एवं सोद्देश्य धारा में प्रवहमान रहती थी जिससे वह चरित्रवान् होता था।

हम शास्त्रों में देखते हैं कि गर्भाधान संस्कार उस समय किया जाता था जब पति पत्नी दोनों शारीरिक दृष्टि से पूर्णतः स्वस्थ होते थे तथा परस्पर एक दूसरे के हृदय की बात जानते और दोनों में सन्तान प्राप्ति की वेगवती इच्छा होती थी। उस समय उनके समस्त विचार गर्भाधान की ओर केन्द्रित होते और होम के साथ वैदिकमन्त्रों के उच्चारण से शुद्ध तथा हितकर वातावरण तैयार कर लिया जाता था। स्त्री जब गर्भिणी होती तो दूषित शारीरिक व मानसिक प्रभावों से उसे बचाया जाता और उसके व्यवहार को इस प्रकार अनुशासित किया जाता था कि जिसका प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़े। यहाँ प्रसंगवश कश्यप अदिति के संवाद का एक सूक्ष्म भाग आप से कहने जा रहा हूँ। अन्यथा आप सोचेंगे कि प्राचीनकाल में गर्भिणी के लिए कौन सा अनुशासन था ? यह कथा पद्मपुराण में आयी है-

कश्यप अदिति से कहते हैं - गर्भिणी को अपवित्र स्थान चूने बालू आदि पर नहीं बैठना चाहिए। नदी में स्नान नहीं करना चाहिए। उसे मानसिक अशान्ति से सदैव अपने आपको बचाना चाहिए। उसे सदा निद्रालु या आलस्य नहीं करना चाहिए। अपने केश को खुले नहीं छोड़ने चाहिए। सोते समय उत्तर की ओर सिर नहीं करना चाहिए। अमंगल शब्दों का व्यवहार, अधिक हँसना सायंकाल में भोजन, आदि गर्भिणी को नहीं करना चाहिए। इन नियमों के पालन से ही जन्म लेने वाला बालक भी अपने जीवन में अनुशासित एवं चरित्रवान उत्पन्न होता है।

एक बात और अच्छी है कि, न केवल गर्भिणी के लिए ही ये नियम बनाये गये थें अपितु उसके पति के लिए भी कुछ नियम है जो अनिवार्यतः पालनीय होते थे। जैसे -

वपनं मैथुनं तीर्थं वर्जयेद् गर्भिणीपतिः।

श्राद्धं च सप्तमान्मासदूर्ध्वं चान्यत्र वेदवित्॥

अर्थात् क्षौरकर्म, मैथुन तीर्थ सेवन श्राद्ध आदि गर्भिणी के पति को नहीं करना चाहिए। अस्तु।
इस प्रकार के नियम यदि आज भी लोग करें तो अवश्य ही अच्छी सन्तान उत्पन्न होगी।
हाँ तो हमलोग संस्कारों की वर्तमान सन्दर्भ में उपयोगिता की चर्चा कर रहे थे, परन्तु कुछ दूर भी चले गये थे। आइए हम अपने विषय पर फिर से आते है।

शिशु के जन्म होने पर आयुष्य तथा प्रज्ञाजनन कृत्यों का अनुष्ठान किया जाता था और नवजात शिशु को पत्थर के समान दृढ एवं परशु की तरह शत्रुनाशक, बुद्धिमान तथा चरित्रवान् होने का आशीर्वाद दिया जाता था।

शैशव में प्रत्येक अवसर पर आशापूर्ण जीवन के प्रतीक आनन्द और उत्सव मनाये जाते थे। चूडाकरण या मुण्डन संस्कार के पश्चात् जब शिशु बालक की अवस्था में पहुँच जाता, तो उसे बिना ग्रन्थो के अर्थात् श्रुतिपरम्परा से अध्ययन तथा विद्यालय के कठोर नियन्त्रण में ही उसके कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों से उसका परिचय कराया जाता था।

उपनयन तथा अन्य शिक्षा सम्बन्धी संस्कार ऐसी सांस्कृतिक अग्नि का काम करते थे, जिसमें तपाकर बालक के अपनी अभिलाषाओं इच्छाओं को पिघलाकर अभीष्ट साँचे में ढाल दिया जाता था और अनुशासित, किन्तु प्रगतिशील और परिष्कृतजीवन व्यतीत करने के लिए उसे तैयार किया जाता था।

इस प्रकार निःसन्देह संस्कारों में अनेक ऐसी विधियाँ हैं जिनकी उपयोगिता मेरे विश्वास पर ही अवलम्बित नहीं है। किन्तु संस्कारों के मूल में निहित सांस्कृतिक उद्देश्यों के माध्यम से व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव को आज भी कोई अस्वीकार नहीं कर सकता, भले ही किसी पूर्ण वैज्ञानिक व व्यवस्थित योजना में उनकी गणना न हो सके।

इन संस्कारों के नियमों को कठोर बनाने की अनिवार्यता का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को संस्कृत एवं चरित्र की दृष्टि से समाज का एक रूप विकास तथा उसे समान आदर्श से अनुप्राणित करना था। इस प्रयास में वे बहुत दूर तक सफल भी रहे। आज भी जिसका परिणाम कहीं यत्र तत्र देखने को मिलता है।

अब हम आपसे संस्कारों के एक और महत्त्व आध्यात्मिक महत्त्व की चर्चा भी अत्यन्त संक्षेप में करेंगे क्योंकि संस्कारों के आध्यात्मिक महत्त्व ही हमें जीवन में विशेष रूप से अनुभव होते हैं एवं धर्म पथ पर आरूढ होकर हमारे आगे की जीवन यात्रा को सुगम बनाते हैं।

आज भी संस्कार एक प्रकार से आध्यात्मिक शिक्षा की क्रमिक सीढ़ियों का कार्य करते हैं। इनके द्वारा संस्कृत व्यक्ति यह अनुभव करता था कि सम्पूर्ण जीवन वस्तुतः संस्कारमय है और सम्पूर्ण दैहिक क्रियाएँ आध्यात्मिक ध्येय से अनुप्राणित है। यही वह मार्ग था जिससे क्रियाशील सांसारिक जीवन का समन्वय आध्यात्मिक तथ्यों के साथ स्थापित किया जाता था। जीवन की इस पद्धति में शरीर और उसके कार्य बाधक नहीं, पूर्णता की प्राप्ति में सहायक हो सकते थे। इन संस्कारों के अनुष्ठानों से सात्विक भावों के उदय होते ही जीव मनुष्यभाव से देवभाव की ओर अग्रसर हो

जाता है, जो जीवन का वास्तविक सुगम पथ है।

इस प्रकार हमारे भारतीयों का यह दृढ विष्वास था कि सविधि संस्कारों के अनुष्ठान से वे जीव दैहिक बन्धन से मुक्त होकर मृत्युसागर को पार कर लेते हैं। शायद इसीलिए ईषोपनिषद् में कहा गया है-

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

अर्थात् जो विद्या तथा अविद्या दोनों को जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को पारकर विद्या से अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। यहाँ अविद्या का अर्थ संस्कार, यज्ञादि अनुष्ठानों से है। तथा विद्या का तात्पर्य देवता ज्ञानरूपाविद्या।

इसका सार यह है कि (अविद्या) अर्थात् कर्म से चरित्र की शुद्धि और विद्या अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय मन तथा बुद्धि की वृत्तियों से सदसद्विवेक, उपासना, श्रवण, मनन आदि के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि को प्राप्त कर जीव अमृतत्व को प्राप्त करता है। चरित्रशुद्धि तथा अन्तःकरण की शुद्धि होने पर ही ज्ञानोपलब्धि होती है जिससे जीव संसार से मुक्त होकर ब्रह्मभाव को प्राप्त करता है।

इस प्रकार यहाँ विविध संस्कारों से व्यक्ति की चारित्रिक शुद्धि तथा अन्तःकरण की शुद्धि होती है। यही इसका आध्यात्मिक महत्त्व है।

यहाँ आप संस्कारों के विषय में बहुत कुछ जान चुके हैं क्यों न आपसे कुछ प्रश्न कर लिया जाय क्योंकि आप भी बताने के लिए उत्सुक नजर आ रहे हैं तो लीजिए आपके लिए कुछ बोधप्रश्न नीचे दिये जा रहे हैं, जिनका उत्तर आपको देना है-

बोधप्रश्न

1. संस्कारों के मूल स्रोत कौन से ग्रन्थ हैं?
2. संस्कार शब्द में कौन सा उपसर्ग है?
3. 'आत्मव्यंजक शक्ति ही संस्कार है' यह मत किस शास्त्र का है?
4. 'कुमारसंभव' ग्रन्थ में संस्कार शब्द का क्या अर्थ है?
5. संस्कार में कौन सी तीन बातें अतिमहत्त्वपूर्ण की हैं?

1.5 संस्कारों की संख्या

संस्कारों के महत्त्व ज्ञान के बाद, इन संस्कारों की संख्या के विषय में भी जानना आवश्यक है। क्योंकि शास्त्रों में संस्कारों की संख्या को लेकर भिन्न-भिन्न मत देखे जाते हैं।

आइये! हम संस्कारों की संख्या के विषय में शास्त्रों का मत जानते हैं।

यह तो हम जानते ही हैं कि मुख्य रूप से संस्कारों का उद्भव गृह्यसूत्रों से हुआ है। अतः इसी क्रम से सर्वप्रथम आश्वलायन गृह्यसूत्र में प्रवेश करते हैं। यह आश्वलायन गृह्यसूत्र ऋग्वेद से सम्बद्ध हैं। इसमें चार अध्याय हैं, जिनमें संस्कारों, कृषिकर्मों एवं पितृमेघ आदि धार्मिक कृत्यों का प्रधान रूप से वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त अन्य भी गृह्यसूत्र ऋग्वेद से सम्बद्ध है। परन्तु संस्कारों की चर्चा अल्पमात्रा में ही वहाँ देखी जाती है। अतः आश्वलायन गृह्यसूत्र में 11 संस्कारों का वर्णन मिलता है जो निम्नलिखित हैं।

1. विवाह, 2. गर्भाधान, 3. पुंसवन, 4. सीमन्तोन्नयन, 5. जातकर्म, 6. नामकरण, 7. चूडाकरण, 8. अन्नप्राशन, 9. उपनयन, 10. समावर्तन, 11. अन्त्येष्टि।

बौधायन गृह्यसूत्र के अनुसार

यह गृह्यसूत्र कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध है। इस गृह्यसूत्र में 13 संस्कारों का वर्णन मिलता है। जो निम्नलिखित है-

1. विवाह, 2. गर्भाधान, 3. पुंसवन, 4. सीमन्तोन्नयन, 5. जातकर्म, 6. नामकरण, 7. उपनिष्क्रमण, 8. अन्नप्राशन, 9. चूडाकर्म, 10. कर्णवेध, 11. उपनयन, 12. समावर्तन, 13. पितृमेघ।

यह प्रायः दक्षिण भारत में प्रसिद्ध है। जो कृष्णयजुर्वेदी है उनके लिए ये संस्कार हैं। उसी प्रकार आश्वलायन गृह्यसूत्र में वर्णित संस्कार ऋग्वेदीय शाखा वालों के लिए है, परन्तु हमलोगों के यहाँ उत्तरभारत में शुक्लयजुर्वेद की ही प्रधानता है। जिसके गृह्यसूत्र का नाम पारस्करगृह्यसूत्र हैं। हमलोगों का यही एक गृह्यसूत्र है। इसी गृह्यसूत्र में वर्णित संस्कारों का अनुपालन हमलोग अक्षरश: करते हैं। अतः अन्य गृह्यसूत्रों से हमारा कोई विशेष प्रयोजन यहाँ नहीं है मात्र जानकारी के लिए आपको यहाँ दिखाया गया है। अतः हमें तो पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार ही संस्कार करना या कराना चाहिए। यह पहले भी होता था, आज भी हो रहा है, जिसके लिए आचार्यों द्वारा पद्धतियाँ बना दी गई है, जिनका अनुपालन कर्मकाण्डियों या पुरोहितों के द्वारा समाज में हो रहा है।

पारस्कर गृह्यसूत्र के रचयिता महर्षि पारस्कर है। यह गृह्यसूत्र, शुक्लयजुर्वेद के दोनों शाखाओं (काण्व एवं माध्यन्दिन) का प्रतिनिधित्व करता है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ तीन काण्डों में विभक्त है। पुनः प्रत्येक काण्ड का अवान्तर विभाजन कण्डिकाओं में है। कण्डिकाओं की कुल संख्या 51 हैं।

इसमें प्रधान रूप से 13 संस्कारों का वर्णन प्राप्त होता है। जो निम्नलिखित हैं।

1. विवाह, 2. गर्भाधान, 3. पुंसवन, 4. सीमन्तोन्नयन, 5. जातकर्म, 6. नामकरण, 7. निष्क्रमण, 8. अन्नप्राशन, 9. चूडाकर्म, 10. उपनयन, 11. केशान्त, 12. समावर्तन, 13. अन्त्येष्टि।

ये जितने संस्कार विभिन्न गृह्यसूत्रों में बताये गये हैं वे सब सूत्रशैली में निबद्ध हैं। इनके विशेष नियम धर्मसूत्रों में भी यत्र- तत्र कहे गये हैं। अब आप पूछेंगे कि धर्म सूत्र क्या है?

कल्पसूत्र या कल्पशास्त्र (जो वेद के हस्त रूप अंग है, हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते)। वेद के हस्तस्थानिक अंग है। इसीलिए कल्पशास्त्र की परिभाषा करते हुए आचार्य कहते हैं - 'कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्' अर्थात् जिनमें वेदविहित कर्मों का सुव्यवस्थित रूप से वर्णन हैं उसे कल्पशास्त्र कहते हैं।

इसी कल्पशास्त्र का वर्गीकरण प्रमुख रूप से चार श्रेणियों में किया गया है - श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र और शुल्बसूत्र।

हम यहाँ गृह्यसूत्र में संस्कारों पर चर्चा आपसे की जो सूत्ररूप में निबद्ध हैं। इसके बाद कुछ धर्मसूत्रों की भी यात्रा हम करेंगे। पहले गृह्यसूत्र एवं धर्मसूत्र का भेद समझे।

विषयवस्तु एवं प्रकरणगत साम्य देखकर दोनों (गृह्यसूत्र एवं धर्मसूत्र) में घनिष्ठ सम्बन्ध और अभिन्नता जैसी प्रतीति होती है किन्तु वस्तुतः इनमें सूक्ष्म अन्तर है। गृह्यसूत्र प्रायः गृहस्थजीवन की चर्चा से सम्बद्ध है इनमें मानवीय आचारों, अधिकारों, कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। इसके विपरीत धर्मसूत्रकारों का मुख्य उद्देश्य है आचार, विधि, नियम, क्रिया एवं संस्कारों की विधिवत् चर्चा करना। यद्यपि धर्मसूत्रों में भी विवाह प्रभृति संस्कारों, अनध्याय दिनों, श्राद्ध, मधुपर्क आदि के विषय में नियम पाये जाते हैं, तथापि गृह्यजीवन के क्रियाकलापों की चर्चा बहुत न्यून है।

अब हम धर्मसूत्रगत कुछ संस्कारों की संख्या पर विचार करेंगे।

गौतमधर्मसूत्र में आठ आत्मगुणों के साथ 40 संस्कारों का वर्णन है। (चत्वारिंशत् संस्काराः अष्टौ आत्मगुणाः) जो अधोलिखित है-

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयन, चार वेदव्रत, स्नान, सहधर्मचारिणी संयोग, 5 महायज्ञ, सात पाकयज्ञ (अष्टका पार्वण श्राद्ध श्रावणी आग्रहायणी चैत्री आष्वयुजी) सात हविर्यज्ञाः (अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्षपूर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रहायणेष्टि, निरुढपषुबन्ध, सौत्रामणी) सप्तसोमसंस्था (अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडषी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम) इत्येते चत्वारिंषत् संस्काराः। यस्यैते चत्वारिंशत् संस्कारा अष्टावात्मगुणाष्च स ब्राह्मणो ब्रह्मणे सायुज्यमाप्नोति।

इन चालीस संस्कारों में आपको सन्देह होगा कि कुछ तो संस्कार है, परन्तु कुछ याग विशेष है तो क्या याग एवं संस्कार एक ही वस्तु है। या याग एवं संस्कार में कोई अन्तर है? इसके समाधान

के लिए स्मृतिग्रन्थों को देखना चाहिए। संस्कार दो प्रकार के हैं - ब्राह्म एवं दैव। इसकी व्याख्या अभी किया जा रहा है।

स्मृति ग्रन्थों में संस्कारों की संख्या

हारीत स्मृति के अनुसार - दो प्रकार के संस्कार कहे गये हैं 1. ब्राह्म 2. दैव। गर्भाधान आदि ब्राह्मसंस्कार हैं तथा (सप्तपाकसंस्था आदि याग) दैवसंस्कार हैं।

आगे चलकर स्मृतियों में यज्ञों का समावेश दैवसंस्कारों के अन्तर्गत माना गया। क्योंकि न केवल ब्राह्म (गर्भाधानादि) संस्कारों को ही यथार्थ संस्कार समझना चाहिए। निःसन्देह यज्ञ भी परोक्षरूप से पवित्र करने वाले संस्कार स्वरूप माने जाते हैं। यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्। किन्तु उनका (यागों) मुख्य प्रयोजन था देवों की आराधना, जबकि संस्कारों का प्रधान ध्येय संस्कार्य व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा जीवन को संस्कृत करना। जैसा कि **मनु ने कहा है - 'संस्कारार्थं शरीरस्य'।**

बाद में चलकर स्मृतियों में संस्कार शब्द का प्रयोग केवल उन्हीं धार्मिक कृत्यों के अर्थ में किया गया है, जिनका अनुष्ठान व्यक्ति के व्यक्तित्व की षुद्धि के लिए किया जाता था। आचार्य मनु के अनुसार भी गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त 13 संस्कारों का वर्णन मिलता है। जो निम्नलिखित है - गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, केशान्त, समावर्तन, विवाह।

आचार्य अंगिरा के अनुसार संस्कारों की संख्या 25 होनी चाहिए। यथा-

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो बलिरेव च।
जातकृत्यं नामकर्म निष्क्रमोऽन्नाषनं परम्॥
चौलकर्मोपनयनं तद्व्रतानां चतुष्टयम्।
स्नानोद्वाहौ चाग्रयणमष्टकाष्च यथायथम्॥
श्रावण्यामाष्वयुज्यां च मार्गषीर्ष्यां च पार्वणम्।
उत्सर्गष्चाप्युपाकर्म महायज्ञाष्च नित्यषः॥
संस्कारा नियता ह्येते ब्राह्मणस्य विषेषतः।
पंचविंशति संस्कारैः संस्कृता ये द्विजातयः॥

ते पवित्राश्च योग्याश्च श्राद्धादिषु सुयन्त्रिताः इति।

इस प्रकार महर्षि अंगिरा के अनुसार भी सामान्यतः संस्कारों में कुछ याग विशेषों को समाविष्ट कर संस्कारों की 25 संख्या निर्धारित की गई है। अस्तु।

संस्कारों की संख्या के क्रम में हमें अभी तक 11, 13, 25, 40 आदि संख्या गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, स्मृतिग्रन्थों के आधार पर हमने निर्धारित की, जिनका हमने सप्रमाण नाम गिनाये। परन्तु वर्तमान समाज में 16 संस्कारों की प्रसिद्धि प्रायः लोगों से सुनी जाती है। उसका मूल क्या है ? इसके उत्तर में हम आपको व्यास स्मृति की ओर ले चलते हैं।

महर्षि व्यास के अनुसार संस्कार मुख्य रूप से सोलह (16) है।

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च।
नामक्रिया निष्क्रमोऽन्नप्राषनं वपनक्रिया॥
कर्णवेधो व्रतादेषो वेदारम्भ क्रियाविधिः।
केशान्तः स्नान उद्वाहो विवाहोऽग्नि परिग्रहः॥
त्रेताग्नि संग्रहश्चैव संस्काराः षोडशस्मृताः।

इस प्रकार संस्कारों की संख्या में भेद होने पर यह कैसे निश्चित होगा कि कितने संस्कार है तथा हमें कितनी करनी चाहिए? इस प्रश्न के उत्तर के लिए महर्षि अंगिरा का यह वचन अत्यन्त प्रामाणिक है।

स्वे स्वे गृहे यथा प्रोक्तास्तथा संस्कृतयोऽखिलाः।
कर्तव्या भूतिकामेन नान्यथा भूतिमृच्छति॥

अर्थात् अपने अपने गोत्र परम्परा शाखा के अनुसार अपने अपने गृह्यसूत्र में जितने संस्कार वर्णित है उन्हीं संस्कारों को करना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि शुक्लयजुर्वेद के माध्यन्दिन शाखा वाले के द्विजातियों को पारस्करगृह्यसूत्र के अनुसार 13 संस्कार करना चाहिए। अतः मुख्य रूप से हमारे यहाँ 13 संस्कार सरलतया आचार्यों के द्वारा सम्पन्न कराये जाते हैं। यदि हम दूसरी शाखा के अनुसार 40, 11, 25 आदि संस्कारों को करते हैं तो हमारी हानि होगी। इसके लिए आचार्य वसिष्ठ ने स्पष्ट ही लिखा है-

न जातु परशाखोक्तं बुधः कर्म समाचरेत्।
आचरन् परशाखोक्तं शाखारण्डः स उच्यते॥

अर्थात् जो अपनी शाखा के संस्कारों को छोड़कर दूसरे की शाखा में वर्णित संस्कारों को करता या कराता है वह शाखारण्ड दोष युक्त हो जाता है। अर्थात् कुल परम्परा प्राप्त शाखा के विरुद्ध नहीं करना चाहिए। इससे यही बात स्पष्ट हुई कि उत्तर भारत में प्रसिद्ध शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिनशाखा वालों को 13 संस्कार ही करना चाहिए। जिसका विधान पारस्करगृह्यसूत्र में हुआ है। भिन्न भिन्न (शाखा भेद) वेद शाखा के अनुसार ही आचार्यों द्वारा कहा गया संस्कारों की संख्या में भेद है। अतः अपनी कुल परम्परा प्राप्त वेदशा शाखा के अनुसार संस्कार करना चाहिए। प्रसंग में एक बात और जान

लीजिए कि किनका किनका संस्कार होना चाहिए अर्थात् इन संस्कारों के अधिकारी कौन लोग है। इसके लिए याज्ञवल्क्य का वचन प्रमाणरूप में उपस्थित करता हूँ -

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः।

निषेकाद्याः ष्मषानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रिया।।

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैष्य को द्विज कहा जाता है। अतः इनका गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक का संस्कार मन्त्रपाठपूर्वक करना चाहिए । एवं शूद्र तथा स्त्रियों का जाकर्मादि संस्कार मन्त्र रहित करना चाहिए । अर्थात् ये स्वयं संस्कृत होते हैं इनके संस्कार की आवश्यकता नहीं है । रही बात मन्त्रपाठ की तो शास्त्र आदेश देता है-‘तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः’। लिखा गया है ।

स्त्रियों का विवाह मन्त्रसहित तथा शेष संस्कार कुल परम्परानुसार मन्त्ररहित होंगे ।

दूसरी बात यह है कि यदि किसी को गन्ना चूसने के लिए दिया जाय तो पहले यह देखा जाता है कि गन्ना सूनने में वह समर्थ है कि नहीं? यदि गन्ना किसी वृद्ध (दन्तविहीन) को दे दिया जाय तो देने वाले की ही हँसी होगी। ऐसा ही विचार कर लोक में भी सामर्थ्यहीन व्यक्ति के लिए गन्ने से ही बनी चीनी के रस से युक्त गुलाब जामुन खिलाते हैं तो वह उसे अच्छा लगता है। उसी प्रकार महर्षियों के द्वारा भी धनादि से सामर्थ्यहीन अत्यन्त कोमल आदि भावों को देखकर ही दयावश स्त्रियों एवं शूद्रों के लिए इतने जटिल कर्कश, अधिक धन व्ययजन्य संस्कारों को करने में छूट दी गई है। अर्थात् ये स्वयं में संस्कृत है। इनके संस्कार की कोई आवश्यकता नहीं है। अस्तु!

अब तक हम संस्कारों की संख्या के विषय में भिन्न-भिन्न ऋषियों के अनुसार जानकारी प्राप्त कर चुके हैं, साथ ही इनमें मतभेद क्यों है? इसका भी समाधान आप जान चुके हैं। संस्कार के अधिकारी कौन-कौन लोग है? एवं मन्त्रों के साथ किनका संस्कार होगा एवं बिना मंत्र के भी कुछ लोगों का संस्कार करने की आज्ञा शास्त्र देता है क्यों? इन सभी विषयों पर ऊहापोह के साथ संक्षिप्त रूप से यहाँ चर्चा की गयी है।

अब आप से कुछ प्रश्न पूछे जायेंगे जिसका उत्तर आपको देना है। ये प्रश्न है-

बोध-प्रश्न

1. आश्वलायन गृह्यसूत्र किस वेद से सम्बद्ध है?
2. आश्वलायन गृह्यसूत्र में कितने संस्कारों का वर्णन मिलता है?
3. बौधायन गृह्यसूत्र किस वेद से सम्बद्ध है?
4. 13 संस्कारों का वर्णन किस गृह्यसूत्र में प्राप्त होता है?

5. शुक्लयजुर्वेद का कौन सा गृह्यसूत्र है?
6. किसके मत में 16 संस्कार वर्णित है?
7. पारस्कर गृह्यसूत्र में कितने संस्कार वर्णित है?

1.6 सारांश

इस संस्कार विमर्श नामक इकाई में संस्कार के मूलस्रोत एवं संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति तथा संस्कार शब्द का प्रयोग एवं अर्थ विभिन्न शास्त्रों में किस किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, उसका सोदाहरण स्वरूप परिचय आपके सामने प्रस्तुत किया गया है।

इसी क्रम में संस्कार के वैज्ञानिक पक्षों को ध्यान में रखते हुए उसके तीन महत्त्वपूर्ण अर्थ आपको बताये गये, क. दोषमार्जन, ख. अतिशयाधान, ग. हीनांगपूर्ति।

इसके बाद हम आगे संस्कारों की प्रयोजन की तरफ बढ़ते हैं और भिन्न-भिन्न प्रयोजनों को दर्शाते हुए मुख्य प्रयोजन पर भी कुछ चर्चा की गई।

आज के समय में जो अत्यन्त आवश्यक प्रयोजन है वह चरित्र निर्माण एवं नैतिक ज्ञान का जो संस्कार से ही सुलभ है। इसके साथ ही संस्कारों के आध्यात्मिक प्रयोजन पर भी दृष्टि डाली गई। एवं बोध प्रश्न के साथ हुए पहले खण्ड का समापन एवं दूसरे उपखण्ड में संस्कारों की संख्या से सम्बद्ध बातें भिन्न-भिन्न गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों, स्मृतियों के आधार पर आपके सामने रखी गई। साथ ही संस्कार के अधिकारी आदि की भी चर्चा करते हुए अन्त में बोधप्रश्न के साथ इस उपखण्ड का समापन होता है।

1.7 शब्दावली

1. धातु = क्रिया जैसे भू, पठ्, गम् आदि
2. पुरोडाश = श्रौतयाग में दिया जाने वाला हवि विशेष
3. भाजन = बरतन या पात्र
4. वपनम् = क्षौर कर्म कराना
5. संज्ञा = नाम
6. अर्थवाद = विधिवाक्यों की प्रषंसा करने वाले वाक्य
7. विट् = वैष्य
8. ब्रह्म = ब्राह्मण

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उपखण्ड - 1 के प्रश्नोत्तर

1. संस्कारों के मूलस्रोत प्रधानरूप से गृह्यसूत्र हैं।
2. संस्कार शब्द में सम् उपसर्ग है।
3. न्यायशास्त्र के विद्वानों का (नैयायिकों का)
4. कुमारसंभव में संस्कार शब्द का अर्थ शुद्धि (पवित्रता) है।
5. संस्कार में अधोलिखित तीन बातें अति महत्त्वपूर्ण की है-

   (क) दोषमार्जन

   (ख)अतिशयाधान

   (ग) हीनांगपूर्ति

उपखण्ड - 2 के प्रश्नोत्तर

1. आश्वलायन गृह्यसूत्र ऋग्वेद से सम्बद्ध है।
2. आश्वलायन गृह्यसूत्र में ग्यारह (11) संस्कारों का वर्णन है।
3. बौधायन गृह्यसूत्र कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध है।
4. 13 संस्कारों का वर्णन बौधायन गृह्यसूत्र में है।
5. शुक्लयजुर्वेद का गृह्यसूत्र पारस्करगृह्यसूत्र है।
6. महर्षि व्यास के मत में 16 संस्कार है।
7. पारस्करगृह्यसूत्र में 13 संस्कार वर्णित है।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थनाम	लेखक	प्रकाशन
हिन्दूसंस्कार	डॉ. राजबलीपाण्डेय	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
पारस्करगृह्यसूत्र	आचार्य पारस्कर सम्पादक डॉ. सुधाकर मालवीय	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
वीरमित्रोदय	मित्रमिश्र	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
मनुस्मृति	आचार्यमनु	श्रीकृष्णदास मुम्बई
याज्ञवल्क्यस्मृति	आचार्ययाज्ञवल्क्य	श्रीकृष्णदास मुम्बई
भगवन्तभास्कर	श्रीनीलकण्ठभट्ट	श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रिसंस्कृतविद्यापीठम् नवदेहली

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संस्कारों के प्रयोजनों को विस्तार से लिखें।
2. संस्कारों की संख्या के विषय में विविध आचार्यों के मतों का उल्लेख करें।
3. संस्कारों के महत्त्व पर एक निबन्ध लिखें।
4. मानव जीवन में संस्कारों की उपयोगिता पर प्रकाश डालें।

इकाई – 2 जातकर्म एवं नामकरण

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 जातकर्म संस्कार

2.3.1 जातकर्म संस्कार का प्रयोजन

2.3.2 जातकर्म में होने वाले मुख्य कर्म

2.4 नामकरण संस्कार

2.4.1 नाम ग्रहण संस्कार के काल विचार

2.4.2 नाम का स्वरूप

2.4.3 नामकरण प्रक्रिया

2.5 सारांशः

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई से पूर्व की इकाई में आपको संस्कारों के विषय में बहुत कुछ बता दिया गया है, जिसमें संस्कारों का प्रयोजन, अधिकारी संस्कारों की संख्या आदि विषय सप्रमाण सम्मिलित हैं। संस्कारों की संख्या में मतभेद का सकारण समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही आज के समय में स्वगृह्यसूत्रानुसार कितने संस्कार अपेक्षित है जिन्हें आवश्यक रूप से करना ही चाहिए यह बात भी आपको विदित हो गयी है।

प्रस्तुत इस खण्ड में जातकर्म एवं नामकरण संस्कार के विषय में आप अध्ययन करेंगे, तथा साथ ही इसकी विधि क्या है? अर्थात् कैसे शास्त्रीय विधि से सम्पन्न होता है, इसे भी आप जानेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जातकर्म संस्कार एवं नामकरण संस्कार के महत्त्व, प्रयोजन एवं विधि को आप अच्छी तरह समझ जायेंगे। ये उपरोक्त संस्कार आज के समाज में कदाचित् ही कहीं होते दिखाई देते हैं, अन्यथा इससे लोग प्रायः विमुख होते जा रहे हैं। इसमें एक कारण यह भी है कि इसके महत्त्व को लोग जानते ही नहीं है, दूसरी बात है कि इसकी सविधि (प्रयोग ज्ञान) के ज्ञान का लोगों में अभाव है। परन्तु आप तो इसके महत्त्व को एवं प्रयोजन को अच्छी तरह जानते हैं। रही बात प्रयोग ज्ञान की तो अब आपको प्रयोग की विधि भी बताने जा रहा हूँ। जिससे समाज में आप भली-भाँति विश्वासपूर्वक शास्त्रीय रीति से कहीं भी विद्वानों के बीच में अच्छी तरह इस संस्कार को सम्पन्न कर सकते हैं या यजमान के यहाँ करा सकते हैं जिससे समाज को एक नई दिशा प्राप्त होगी तथा लोग धार्मिक होकर सुख एवं शान्ति का अनुभव करेंगे।

2.3 जातकर्म संस्कार

वैसे आप जानते हैं कि संस्कारों का प्रधानरूप से प्रादुर्भाव गृह्यसूत्रों से हुआ है, साथ ही इसकी विधि भी सूत्र-रूप में वहीं वर्णित है। परन्तु जातकर्म संस्कार का संक्षिप्त-संकेत सर्वप्रथम अथर्ववेद में एक सूक्त के रूप में भी देखी जाती है जिसमें, सरल तथा सुरक्षित प्रसव के लिए देवताओं से प्रार्थनाएँ की गई हैं तथा उपचार भी वर्णित है। स्पष्टता के लिए एक, दो उदाहरण, मन्त्रों के, हिन्दी अनुवाद के रूप में आपके सामने रखा जा रहा है।

हे पूषन्! प्रसूति के इस अवसर पर यह नारी भली-भाँति शिशु का प्रसव करे। स्त्री के शरीर के सन्धिस्थान (पर्वाणि) प्रसव करने के लिए ढीले हो जाएँ।

जिस प्रकार वायु, मन तथा पक्षी बाहर निकलकर उड़ने लगते हैं उसी प्रकार दस मास पर्यन्त गर्भ में रहने वाला शिशु (दशमास्या) तू जरायु के साथ बाहर आ जाओ।

इन मंत्रों से यही अनुभव हो रहा है कि अति प्राचीनकाल में भी साधारण मानव-हृदय सद्यःप्रसूता माता के दृश्य को देखकर स्वभावतः विचलित हो गया होगा। अपनी पत्नी के साथ सर्वविध सुखोपभोग करने वाले पुरुष के लिए इस कठिन समय में प्राकृत संकटों से स्त्री एवं शिशु की रक्षा के लिए प्रयत्नशील होना स्वाभाविक ही था। इस प्रकार जातकर्म संस्कार का प्राकृतिक आधार प्रसवजन्य शारीरिक आवश्कताओं तथा परिस्थितियों में निहित था।

अब हम जातकर्म संस्कार के पहले की सावधानी या विधिविधान की चर्चा प्रसंगतः करते हैं।

परवर्ती ग्रन्थों से यह ज्ञात होता है कि प्रसव के लिए तैयारियाँ शिशु के जन्म के एक मास पूर्व ही आरम्भ हो जाती थीं। अर्थात् जिस मास में प्रसव आसन्न हो उसके पूर्व ही विशेष प्रबन्ध करना चाहिए। जैसा कि वीरमित्रोदय ग्रन्थ में लिखा है -

आसन्न प्रसवे मासि कुर्याच्चैव विशेषत:।

इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम-कार्य घर में उपयुक्त कमरे का चुनाव था, जिसे सूतिकागृह हमलोग कहते हैं।

सूतिकागृह

भारतीय संस्कृति में सूतिकागृह को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस घर में प्रसूतिका (स्त्री) एवं उसके बच्चे को रहना होता है। इसलिए यह अत्यन्त विचारणीय है कि, कुछ दिनों तक कौन सा घर प्रसूति का बनाया जाय, जहाँ किसी प्रकार की असुविधा न हो।

आचार्य वसिष्ठ तो सूतिकाभवन निर्माण में अपनी स्वेच्छा व्यक्त करते हैं। परन्तु अन्य आचार्य 'नैर्ऋत्यां सूतिकागृहम्' कहते हैं। अर्थात् शास्त्रों में पश्चित एवं दक्षिण के बीच में सूतिकागृह बनाने का निर्देश मिलता है।

वास्तुविशारदों के अनुसार तो समतलभवन पर निर्मितभवन का दरवाजा पूर्व या उत्तर दिशा की ओर होना चाहिए। यही पक्ष प्रायः आचरण में भी मिलते हैं।

आचार्य शंख के अनुसार सुमधुर वाद्यों की ध्वनि, शुभ सूचक मंत्रों के उच्चारण के साथ देवताओं, ब्राह्मणों एवं गौओं की पूजा करके एक दो दिन पूर्व प्रसूतिका को प्रसूतिकागृह में प्रवेश कराना चाहिए।

सुभूमौ निर्मितं रम्यं वास्तुविद्या विशारदैः।

प्राग्द्वारमुत्तरद्वारमथवा सुदृढं शुभम्।।

इसके साथ में अन्य स्त्रियों को भी साथ में रहने का निर्देश मिलता है, जो शिशुओं को जन्म दे चुकी हो और कठिनाईयों को सहन करने में सक्षम हो। घर में अग्नि, जल, यष्टि, दीपक, शस्त्र, दण्ड एवं सरसों के दाने (बीज) रखे जाते थे।

2.3.1 जातकर्म संस्कार का प्रयोजन

एक बात और यहाँ ध्यान देना चाहिए कि कुछ संस्कार बालक के जन्म से पहले होते हैं। जैसे-गर्भाधान, पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन। यह जातकर्म संस्कार जन्मोत्तर संस्कारों में प्रथम संस्कार है। अर्थात् यह बालक के जन्म के बाद सबसे पहला संस्कार है। इसे सोष्यन्तीकर्म की संज्ञा ऋषियों ने दी है। ऐसा प्रतीत होता है कि पारस्कर के मत से प्रसवशूल के समय से ही जातकर्म संस्कार का प्रारम्भ हो जाता है। क्योंकि सूत्रकार लिखते हैं - 'सोष्यन्तीमद्भिरभ्युक्षति एजतु दशमास्य इति प्राग्यस्यै त इति'।

यहाँ सोष्यन्ती का अर्थ प्रसव की पीड़ा से विकल स्त्री को कहा गया है। इस स्त्री को जल से 'एजतु दशमास्य' इस मन्त्र को पढ़कर पति अभ्युक्षण (जल से सिंचन) करता है।

शास्त्रों में प्रसव वेदना से मुक्ति हेतु अनेक प्रकार के यथोचित कर्मों का निरूपण भी किया गया है जो आवश्यक है। क्योंकि इसमें असावधानी गंभीर एवं भयानक परिणाम को देने वाली हो सकती है। इसीलिए सूत्रकार आचार्य पारस्कर यहीं से जातकर्म संस्कार का प्रारम्भ करते हैं। इसके आगे का विषय प्रयोग में आपको बताया जायेगा। अस्तु!

अब हम जातकर्म के प्रयोजन के सन्दर्भ एक दो बात आपको बताते हैं। इसके मुख्य उद्देश्य को बताते हुए महर्षि भृगु कहते हैं-

जातकर्म क्रियां कुर्यात् पुत्रायुः श्रीविवृद्धये
ग्रहदोष विनाषाय सूतिकाऽषुभविच्छिदे
कुमार ग्रहनाषाय पुंसां सत्वविवृद्धये।।

(1) (शहद**,** घी एवं स्वर्णभस्म चटाते हुए) जातकर्म संस्कार **(2)** नामकरण संस्कार

यहाँ स्पष्ट है कि जातकर्म संस्कार करने से पुत्र की आयु एवं श्री की वृद्धि होती है, ग्रहदोषों का विनाश होता है। तथा सूतिका स्त्री के लिए यह शुभ फल प्रदान करता है।

वस्तुतः जातकर्म संस्कार जच्चा-बच्चा को सुखी रखने का संस्कार है । महर्षि भृगु का विचार यही है कि पुत्र के आयु की वृद्धि इसी संस्कार से होती है। बात भी सही है क्योंकि प्रत्येक माता-पिता का ध्येय यही होता है कि अपने पुत्र की आयु एवं श्री बढ़े। अस्तु!

2.3.2 जातकर्म में होने वाले मुख्य कर्म -

मेधाजनन

जातकर्म संस्कार का यह प्रथम कृत्य है जिसमें घी एवं षहद बच्चे को खिलाने की परम्परा गृह्यसूत्रों में देखी जाती है। यह अत्यन्त प्राचीन परम्परा है। वस्तुतः कारण यह है कि जब बच्चा माँ के पेट में रहता है तो उसकी आँखों में एक प्रकार का मल जमा रहता है जिसे मैकोनियम कहते हैं। डाक्टर लोग उसको निकालने के लिए एरण्ड का तेल प्रयोग में लाते हैं लेकिन वह स्वाद में तीखा होने के कारण बच्चे द्वारा सुगमता से ग्रहण नहीं किया जाता वहाँ पर घी एवं मधु स्वाद में भी ग्राह्य होता है। चरकसंहिता में लिखा है कि घी एवं षहद के (विषम भाग) सेवन से मैकोनियम बाहर आ

जाता है। तथा बच्चा देखने लगता है। घी एवं षहद का सुवर्ण षलाका से भक्षण कराने का विधान षास्त्रों में आता है। आचार्य सुश्रुत इसके साथ सुवर्णभस्म भी मिलाकर खिलाने की बात करते हैं। जैसे-

'जातकर्मणि कृते मधुसर्पिः अनन्तचूर्णम् अंगुल्या अनामिकया लेहयेत्'

अर्थात् अनामिका अंगुली से मधु, घृत तथा सुवर्णभस्म बालक को मन्त्र पाठपूर्वक चटायें। वैसे ही सुवर्ण में बहुत सारे औषधीय गुण है फिर भी सुवर्णभस्म खाने से षरीर के समस्त विष अपने आप दूर हो जाते हैं। घी में भी निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं। मेधावृद्धि, मधुर, षिरोवेदना को दूर करनेवाला, ज्वरनाषक बुद्धि, प्रज्ञा, तेज, वीर्य एवं आयु का वर्धक होता है।

जातकर्म का दूसरा प्रधान कर्म आयुष्यवर्द्धन करना -

इस कर्म में पिता, जातक के आयुष्य (आयु) की वृद्धि के लिए यह कर्म करता है, जिसका विधान पारस्करगृह्यसूत्र में प्रथम काण्ड के 16वीं कण्डिका में है। 'अथाऽस्यायुष्यं करोति' इसकी विधि यह है कि पिता शिशु की नाभि या दाहिने कान के समीप जाकर मन्त्रपाठ करता हुआ आयुष्यवर्धन करता है। अग्नि दीर्घजीवी है, वह वृक्षों में दीर्घजीवी है। मैं इसकी दीर्घायु से तुम्हें दीर्घायु करता हूँ। इसी प्रकार सोम, ब्रह्म, ऋषि आदि 8 मन्त्रों से शिशु की आयुवृद्धि करता है। यह बात आपको प्रयोग में बताया जायेगा। यह मेधाजनन संस्कार एवं आयुष्यवर्द्धन कर्म नालछेदन के पहले पिता को करना चाहिए। जैसा कि लिखा है - 'जातस्य कुमारस्याच्छिन्नायां नाड्यां मेधाजननायुष्ये करोति'।

यहाँ एक दूसरी बात यह है कि बालक का पिता यदि चाहे कि सम्पूर्ण आयु का उपभोग बालक करे या अत्यन्त दीर्घायु हो मेरा बालक तो 'वात्सप्र' संज्ञक (मंत्र) अनुवाक से (पढ़ते हुए) इस बालक का स्पर्श करना चाहिए। वात्सप्र अनुवाक के मंत्रों को आगे बताया जायेगा। यहाँ मात्र अत्यन्त संक्षेप में एक परिचय दिया जा रहा है।

एक बात और यहाँ ध्यान देना चाहिए कि सामान्यतः सूतक दो प्रकार के होते हैं (क) जननाशौच एवं (ख) मरणाशौच। जननाशौच में भी दस दिन तक अशौच (सूतक) रहता है। फिर शास्त्रों में जन्म के समय गणेशपूजन पुण्याहवाचन आदि का विधान कैसे किया गया है ? उसके समाधान में कहा गया है कि जातकर्म संस्कार में सूतक या अशौच, नालछेदन के बाद ही लगता है अतः नालछेदन से पहले ही गणेशपूजन आदि कर लेना चाहिए।

जैसा कि महर्षि जैमिनि कहते हैं -

यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम्।

छिन्ने नाले ततः पश्चात् सूतकं तु विधीयते ।।

अब इस सामान्य परिचय के बाद आपको प्रयोग विधि बताया जा रहा है। जब तक प्रयोग अच्छी तरह नहीं जान पायेंगे तब तक केवल परिचय से या पारस्करगृह्य सूत्रों में वर्णित सूत्र एवं व्याख्यानों से अनुष्ठान संभव नहीं हो सकता है। अनुष्ठान के लिए शास्त्रीय समन्त्रक प्रयोग की आवश्यकता है। अब आप प्रयोगविधि देखें, जिसे अक्षरश: जानकर जातकर्म करा सकते हैं। कुछ बातें परिचय में जो शेष रह गई है वे भी इस प्रयोग में आ जायेगी। अस्तु

स्तनपान कराना

बच्चे की रक्षा हेतु उसके प्रथम आहार का संचार उसकी माँ से ही होता है। माँ के पहले दूध को कोलोस्ट्राम कहते हैं। यह बच्चे के पोषण के लिए अमृत के समान है। पारस्करगृह्यसूत्र में भी स्तनपान का विधान मन्त्र के साथ दिया गया है, जिसे अवश्य करना चाहिए। सर्वप्रथम स्तन को शुद्ध जल से धोकर माता शिशु को पहले दाहिने स्तन को बाद में बायें स्तन का दूध 'इमं स्तनं' मंत्र पढ़कर पिलायें। शास्त्रों में स्तनपान के लिए कुछ मुहूर्त भी बताये हैं जिनका संकेत आपसे प्रसंगतः कर देता हूँ।

तीनों उत्तरा, रोहिणी, रेवती, पुष्य, पुनर्वसु, अनुराधा, हस्त, चित्रा, मृगषिरा, धनिष्ठा, श्रवणा, शतभिषा इन नक्षत्रों में तथा शुभवारों में स्तनपान कराना चाहिए। विशेष स्तनपान की विधि आगे प्रयोग विधि में बताया जायेगा।

जातकर्म संस्कार प्रयोग

सर्वप्रथम सुखपूर्वक प्रसव (बच्चा उत्पन्न होने के लिए) सोष्यन्ती कर्म (प्रसववेदना से युक्त स्त्री के लिए) का विधान पारस्करगृह्यसूत्र में किया गया है। जिसमें अधोलिखित दोनों मन्त्रों को पढ़कर (होने वाले शिशु का) पिता अपनी पत्नी को जल से अभ्युक्षण करता है।

ऊँ एजतु दशमास्योगर्भोजरायुणा सह । यथाऽयंव्वायुरेजतियथासमुद्रऽएजति । एवाऽयन्दषमास्योऽअस्रज्जरायुणा सह।

ऊँ अवैतु पृष्नि शेवलँषुने जरायत्तवे। नैव मांसेन पीवरि। न कस्मिष्चनायतयव जरायुपद्यताम्। (इति मन्त्रं पठेत्)

पुत्र के उत्पन्न होने के बाद शीघ्र ही पिता सचैल (वस्त्र के साथ) नदी आदि में स्नान करें। जैसा कि आचार्य वसिष्ठ ने कहा है-

श्रुत्वा जातं पिता पुत्रं सचैलं स्नानमाचरेत्।

यह स्नान नैमित्तिक है। अतः रात में भी पुत्र के जन्म लेने पर स्नान, दान करना चाहिए।

लेकिन नालछेदन से पहले जैसा कि व्यास ने कहा है -

'रात्रौ स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषतः।

नैमित्तिके तु कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिषु॥

अतः पिता को पुत्र जन्म सुनकर वस्त्रसहित स्नान करके ब्राह्मणों को दान देना चाहिए। क्योंकि-

अच्छिन्ननाड्यां यद्दत्तं पुत्रे जाते द्विजोत्तमाः।

संस्कारेषु च पुत्रस्य त्वदक्षय्यं प्रकीर्तितम्॥

अर्थात् नालछेदन के पहले पुत्रजन्म (जातकर्म) के निमित्त दिया गया दान अक्षय्य (कभी भी नष्ट न होने वाला) होता है। लेने वाले को भी दोष नहीं होता है । श्रीरामचरितमानस में भी भगवान् श्रीराम के जन्म पर जातकर्म की झाँकी गोस्वामी तुलसीदास जी रखते हैं और उसमें अन्न, दान, पूजन आदि की चर्चा है-

नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह ।

हाटक धेनु वसन मनि नृप विप्रन्ह कह दीन्ह ।।

यहाँ दशरथ जी स्वर्ण से नान्दीश्राद्ध करते हैं तथा विप्रों को दान देते हैं।

दान देने के बाद संकल्प करें-

यहाँ संकल्प में विशेष सम्बद्धवाक्य ही कहा जायेगा, क्योंकि संकल्प आप अच्छी तरह जानते हैं । संकल्प - **पूर्वोच्चारित एवं ग्रहगुणविशेषण विषिष्टायाम् शुभपुण्यतिथौ गोत्रः अमुकोऽहं पुत्रजननिमित्तकं सचैलं स्नानं करिष्ये इति संकल्प्य स्नात्वा षुभे नवेधौतेवाससी परिधाय प्राङ्मुखोपविष्य दीपं प्रज्वलय्य स्वस्तिवाचनं षान्तिपाठं वा कृत्वा इष्टदेवेभ्यः पुष्पांजलिं समर्प्य नालच्छेदनात्पूर्वं गणेशाम्बिकयो पूजनं कुर्यात् । तत्रादौ पूजनसंकल्पः - अद्येहामुकोऽहं जातस्य दीर्घायुरारोग्यावाप्तये करिष्यमाण जातकर्मणि निर्विघ्नता सिद्धये पूर्वाङ्गत्वेन गणेशपूजनं करिष्ये ।**

गणेशपूजन, कलशपूजन, पुण्याहवाचन, षोडशमातृका, सप्तघृतमातृका, नान्दीश्राद्ध आदि करके प्रधान संकल्प करना चाहिये।

एक बात अवश्य यहाँ ध्यान देना चाहिए कि नान्दीश्राद्ध स्वर्ण से ही करना चाहिए कच्चे अन्न से या पके अन्न से नहीं। जैसा कि कहा गया है-

पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेम्नैव बुद्धिमान ।

न पक्वेन न चामेन कल्याणान्यभिकामयन् ।।

आमान्नस्याप्यभावे तु श्राद्धं कुर्वीत बुद्धिमान् ।

धान्याच्चतुर्गुणेनैव हिरण्येन सुरोचिषा ।।

प्रधानसंकल्प

अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकोऽहं अस्य कुमारस्य गर्भाम्बुपानजनितसकलदोष-निबर्हणायुर्मेधाभिवृद्धिद्वारा बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा च श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं जातकर्माख्यं संस्कारं करिष्ये ।

मेधाजननसंस्कार

पूर्वांग के रूप में कलशस्थापन, पुण्याहवाचन, मातृकापूजन सम्पन्न करके आभ्युदयिक श्राद्ध करें । उसके बाद चार ब्राह्मणों का पूजन करके स्वस्तिवाचन करावें । नवग्रहों का आवाहन पूजन करके स्वर्ण या चाँदी के पात्र में मधु, घृत (विषम मात्रा में लेकर) या केवल घृत लेकर अनामिका अंगुलि से एक बार बालक को प्राषन करायें । यह मेधाजनन संस्कार है । मन्त्र - ऊँ भूस्त्वयि दधामि, ऊँ भुवस्त्वयि दधामि, ऊँ स्वस्त्वयि दधामि । ऊँ भूर्भुवस्वः सर्वंस्त्वयि दधामि । इस मंत्र का उच्चारण करके प्राषन कराना चाहिए। इति मेधाजननकृत्यम् ।

आयुष्यवर्द्धन

अथास्यायुष्करणम् - जातस्य कुमारस्य नाभिसमीपे दक्षिणकर्णसमीपे वा पिता जपति । अग्निरायुष्मानित्यादीनामष्टानां मंत्राणां प्रजापतिर्ऋषिः गायत्रीच्छन्दः लिंगोक्ता देवताः आयुष्करणे विनियोगः । ऐसा कहकर जल भूमि पर छोड़े ।

इसका अर्थ आपको इसके पहले (परिचय) में बताया गया है। अब आयुष्करण के आठ मंत्रों को बताया जा रहा है। ये मंत्र पिता कहता है।

1. **ऊँ अग्निरायुष्मान्त्सव्वनसपतीभिरायुष्माँस्तेन त्वाऽयुषाऽयुष्मन्तं करोमि।**
2. **ऊँ सोमऽआयुष्मान्त्सौषधीभिरायुष्माँस्तेन त्वाऽयुषाऽस्युष्मन्तं करोमि।**
3. **ऊँ ब्रह्मायुष्मत्तद्ब्राह्मणैरायुष्मत्तस्तेन त्वाऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि।**
4. **ऊँ देवाऽआयुष्मन्तस्तेऽअमृतेनायुष्मन्तस्तेनत्वाऽयुषाऽयुष्मन्तं करोमि।**
5. **ऊँ ऋषयऽआयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेनत्वाऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि।**
6. **ऊँ पितरऽ आयुष्मन्तस्ते स्वधामिरायुष्मन्तस्तेन त्वाऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि।**
7. **ऊँ यज्ञऽआयुष्मान्त्सदक्षिणाभिरायुष्माँस्तेन त्वाऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि।**
8. **ऊँ समुद्रऽआयुष्मान्त्सस्रवन्तीभिरायुष्माँस्तेन त्वाऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि।**

(इति त्रिर्वा सकृद् वा जपति) इन मंत्रों को तीन बार या एक बार पढ़कर -

ऊँ त्र्यायुषं जमदग्नेः कस्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषन्तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् । इस मन्त्र का

पाठ करें।

यदि पिता बालक की सम्पूर्ण आयु (सौ वर्ष की) प्राप्ति की कामना करता है, तो इन अधोलिखित मंत्रों से शिशु के सभी अंगों का स्पर्ष करे। इन मंत्रों को 'वात्सप्रअनुवाक' से भी जाना जाता है। ये मंत्र है-

ऊँ दिवस्परि प्रथमं यज्ञेऽग्निरस्मद्द्वितीयं परिजातवेदाः।
तृतीयमप्सुनृमणांऽअजस्रमिन्धानऽएनंजरते स्वाधीः।।
विद्माते़ऽअग्ने त्रेधात्रयाणिव्विद्माते धामव्विभृतापुरुत्रा।
व्विद्माते नामपरमं गुहायद्विद्मातमुत्संयतऽआजगन्थ।।
समुद्रेत्वानृमणाऽअप्स्वन्तर्नृचक्षाऽईधेदिवोऽअग्नऽऊधन।
तृतीयेत्वारजसितस्थितवां समपामुपस्थेमहिषा अवर्द्धन।।
अक्रन्ददग्निस्तनयन्निवद्यौः क्षामारेरिहद्वीरुधः समंजन्।
सद्यो जद्यानो व्विहीमिद्धोऽअख्यदारोदसी भानुना भात्यन्तः।।
श्रीणामुदारो धरणी रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः।
व्वसुः सूनुः सहसोऽअप्सुराजाव्विभात्यग्रऽउषसामिधानः।।
व्विष्वस्य केतुर्भुवनस्यगर्भऽआरोदसीऽअपृणाजायमानः।
व्वीडुंचिदद्रिमभिनत्परायंजनाष्वदग्निमयजन्तपंच।।
उषिक्पावकोऽअरतिः सुमेधामर्त्येष्वग्निरमृतो निधायि।
इयर्तिधूममरुषम्भरिभ्रदुच्छुक्रेण षोचिषाद्यामिनक्षन्।।
दृषानोरुक्मउर्व्याव्यद्यौदुर्म्मर्षमायुः श्रियेरुचानः।
अग्निरमृतोऽअभवद्वयोभिर्यदेनन्द्यौरजनयत्सुरेताः।।
यस्तेऽअद्यकृणवद्भद्रषोचेऽपूपन्देवधृतवन्तमग्ने।
प्रतन्नयप्रतरम्व्वस्यो अच्छाभिसुम्नन्देवभक्तं यविष्ठ।।
आतम्भजसौश्रवसेष्वग्नऽउक्थऽउक्थऽआभजषस्यमाने।
प्रियः सूर्य्येप्रियोऽअग्नाभवात्युज्जातेनभिनददुज्जनित्वैः।।
त्वामग्ने यजमानाऽअनुद्यून्विष्वाव्वसुदधिरे वार्य्याणि।
त्वया सहद्रविणमिच्छमाना व्रजंगेमन्तमुषिजोव्विवव्रुः।।

इन एकादश ऋचाओं के पाठ करने के बाद पूर्व, पश्चिम आदि चारों दिशाओं में एवं मध्य में पाँच ब्राह्मणों को आसन देकर बिठावे तथा शिशु को अनुप्राणित करे। अनुप्राणित का मतलब यह है

कि पंच प्राण मनुष्य के शरीर में होते हैं उसी प्राणों को पाँचों ब्राह्मण उद्दीप्त करते हैं। पूर्व की ओर बैठे ब्राह्मण, बालक को लक्ष्य करके 'प्राण' ऐसा उच्च स्वर से बोले । अर्थात् हे कुमार तुम्हारा प्राण तुम्हारे हृदय में स्थित हो । उसी प्रकार दक्षिण में स्थित ब्राह्मण, शिशु को देखकर 'अपान' शब्द का उच्चारण, पश्चिम में स्थित ब्राह्मण 'व्यान' का उच्चारण, उत्तर में स्थित ब्राह्मण 'उदान' का तथा मध्य वाले ब्राह्मण 'समान' शब्द का उच्च स्वर से उच्चारण करे ।

इसका रहस्य यह भी है कि प्राणवायु हृदय में, व्यानवायु सभी शरीर में, अपानवायु गुदा में, उदान वायु कण्ठ में एवं नाभि में समानवायु का निवास रहता है । इसीलिए यहाँ पाँचों ब्राह्मण शिशु को अनुप्राणित अर्थात् पंचप्राणयुक्त करते हैं । जैसा कि पारस्करगृह्यसूत्र में कहा है - पूर्वो ब्रूयात् प्राणेति, व्यानेति दक्षिणः, अपानेत्यपरः, उदानेत्युत्तरः, समानेतिपंचमः, उपरिष्टादवेक्षमाणा ब्रूयात्। यदि ब्राह्मण न हो तो पिता स्वयं ही इन सभी वाक्यों को सभी दिशाओं में जाकर उच्चारित करें ।

इसके बाद बालक का जहाँ जन्म हुआ है वहाँ की भूमि का अनामिका अंगुली से स्पर्श करते हुए अधोलिखित मंत्र को पढ़ें -

ॐ व्वेद ते भूमि हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् ।

वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्पष्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणयाम शरदः शतम् ।

इति भूमिमभिमन्त्र्य कुमारस्य सर्वषरीरं स्पृषति। इसके बाद शिशु को देखते हुए अधोलिखित मंत्र का पाठ करें ।

ॐ अष्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तुतं भव ।

आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम् ।।

अर्थात् हे कुमार! तुम पाषाण की तरह दृढ और स्थिर हो जाओ, वज्र की तरह विपत्तिनाशक हो जाओ, शुद्ध सुवर्ण के समान तेजयुक्त रोगादिरहित हो जाओ, क्योंकि पुत्ररूप में तुम हमारी आत्मा हो। अतः तुम निश्चय ही सौ वर्ष तक जीओ (शरीर को स्थिर रखो)

इसके बाद बालक का पिता अपनी पत्नी की ओर देखकर इस मंत्र का पाठ करता है-

ॐ इडासि मैत्रावरुणी व्वीरे व्वीरमजीजनपाः ।

सा त्वं व्वीरवती भव याऽस्मान् वीरवतोऽकरत् ।।

अर्थात् हे वीरपुत्रवती तुम ईडा (मनु की पुत्री) हो मित्र और वरुण के अंश से उत्पन्न तुमने वीर बच्चे को जन्म दिया । जिस प्रकार ईडा ने पुरुरवा को उत्पन्न किया था । उसी प्रकार तुमने हमें वीरपुत्रों वाला बनाया है, वह तुम जीवित पति एवं पुत्रों वाली होओ ।

इसके बाद माता सबसे पहले दाहिने स्तन को धोकर बालक को अधोलिखित मंत्र से

पिलाती है- (अथमातुर्दक्षिणं स्तनं प्रक्षाल्य कुमाराय प्रयच्छति)

ॐ इमंस्तनमूर्ज्जस्वन्तन्धयापांप्रपीनमग्नेसरिरस्य मध्ये।

उत्संजुषस्व मधुमन्तमर्व्वन्त्समुद्रियंसदनमाविषस्व ।।

ततो वामहस्तं प्रक्षाल्य प्रयच्छति-

ॐ यस्तेस्तनः षषयो यो मयोभूर्य्योरत्नधाव्वसुविद्यः सुदत्रः।

येन व्विष्वा पुष्यसि वार्य्याणि सरस्वतितमिह धातवेऽकः।।

उपर्युक्त दोनों मंत्रों को पढ़ते हुए बालक को दूध पान कराना चाहिए।

इसके बाद सूतिका घर में बालक के माता के शिरःप्रदेश (सिरहाने) में भूमि पर जल से पूर्णकलश या घड़ा उसकी रक्षा के लिए रखा जाता है। वह दस दिन तक सूतिका घर में रहता है।

ॐ आपो देवेषु जाग्रथ यथा देवेषु जाग्रथ।

एवमस्यां सूतिकायां सुपुत्रिकायां जाग्रथ ।।

ततः सूतिकाद्वारदेषे वेदी कृत्वा पंचभूसंस्कारपूर्वकम् अग्निं स्थापयेत् । अत्र प्रणीता प्रणयनादयो न भवन्ति। परिसमूहनादयस्तु भवन्त्येव।

यहाँ सुतिकागृह के द्वार पर स्थण्डिल पर पंचभूसंस्कार करके ‘प्रगल्भ’ नामक अग्नि की स्थापना करे । (प्रगल्भो जातकर्मणि) प्रगल्भनामाग्नये नमः, पाद्यादिभिः सम्पूज्य होमं कुर्यात्। तण्डुलकणमिश्रान्सर्षपान्गृहीत्वेति।

अर्थात् अक्षत (चावल) मिले सरसों से सायं प्रातः हवन करे। दो दो आहुतियाँ देने का विधान है। मंत्र इस प्रकार है।

ॐ शण्डामर्काऽउपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः।

मलिम्लुचो द्रोणासष्च्यवनो नश्यता दितः स्वाहा ।।

इदमग्नेय न मम।

ॐ आलिखन्ननिमिषः किम्वदन्तऽउपश्रुतिः । हर्यक्षः कुम्भी शत्रुः पात्रपाणिर्नृमणिः । हन्त्रीमुखः सर्शपारुणश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा। इदमग्नये न मम।

यह अग्नि दस दिन तक बुझने न पावे। बराबर प्रज्वलित रहे। इसमें दो आहुति सायं एवं दो आहुति प्रातः होने से कुल आहुतिसंख्या 40 हो जायेगी 10 दिन में।

इसके बाद यदि शिशु ग्रहों से या रोग से अत्यन्त पीडित हो तो, पिता अपनी चादर से उसे ढककर शिशु को अपनी गोद में रखकर इन मंत्रों का पाठ करे।

ॐ कूर्क्कुरः सुकूर्क्कुरः कूर्क्कुरो बालबन्धनः।

चेचेच्छुनक सृज नमस्तेऽअस्तु सीसर लपेताह्वरः।।

ऊँ तत्सत्यं यत्ते देवाव्वरमददुः स त्वं कुमारमेव वाऽवृणीथाः।

चेच्चेच्छुनक सृज नमस्तेऽअस्तु सीसरो लपेतापह्वरः।।

तत्सत्यं यत्ते सरमा माता सीसरः पिता श्यामसबलौ भ्रातरौ।

चेच्चेच्छुनकसृजनमस्तेऽअस्तु सीसरो लपेतापह्वरः।।

(जपान्ते पिता बालकमभिमृषति)

न नामयति न रुदति न हृष्यति न ग्लायति।

यत्र व्वयं व्वदामो यत्र चाभिमृषामसि।।

इति मन्त्रेणाभिमृष्य दक्षिणासंकल्पं कुर्यात्।

संकल्पः - अद्येहामुकोऽहं जातस्य पुत्रस्य कृतैतत् जातकर्माख्यसंस्कारकर्मणाः सांगतासिध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं च इमां दक्षिणां नामानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो विभज्य दातुमहमुत्सृजे। ततो भूयसी संकल्प्य ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्। दषब्राह्मणान् वा यथाषक्तिब्राह्मणान् भोजयिष्ये इति संकल्प्य सूतकान्ते ब्राह्मणान् भोजयेत्।

इति जातकर्मप्रयोगविधिः

इसके बाद नालच्छेदन कराना चाहिए।

इसमें बहुत संस्कृत के शब्द आपको ज्ञात है इसलिए छोटे छोटे वाक्यों को संस्कृत में ही रख दिया है। आप स्वयं समझ जायेंगे।

इस प्रकार यहाँ जातकर्म संस्कार का संक्षिप्त परिचय एवं शास्त्रीय प्रयोग विधि आपको ज्ञात हो गया है। अब आप कुछ बताने के लिए उत्सुक दिखाई पड़ रहे हैं तो लीजिए आपके लिए कुछ प्रश्न नीचे दिये जा रहे जिनका उत्तर आपको देना है।

बोधप्रश्न

1. जन्म के पहले होने वाले संस्कार का एक नाम बतायें।
2. जन्मोत्तर संस्कारों में सर्वप्रथम संस्कार कौन सा है?
3. जातकर्म संस्कार का प्रयोजन क्या है?
4. मेधाजनन किस संस्कार से सम्बद्ध है?
5. जातकर्म का दूसरा प्रधान कर्म कौन सा है?
6. सम्पूर्ण आयु प्राप्ति के किस अनुवाक (मंत्र) का पाठ किया जाता है?
7. जननाशौच में कितने दिन तक सूतक रहता है?

8. सोष्यन्ती कर्म का तात्पर्य क्या है?

2.4 नामकरण संस्कार

यहाँ जातकर्म संस्कार के बाद नामकरण संस्कार के विषय में आपको बताया जा रहा है। सबसे पहले एक सामान्य परिचय, इसके बाद प्रयोगविधि।

संक्षिप्तपरिचय

नामाखिलस्य जगत व्यवहारहेतुः शुभावहं कर्मसु भाग्यहेतुः।
नाम्नैव कीर्तिं लभते मनुष्यस्ततः प्रशस्तं खलुनामकर्म ।।

अर्थात् नाम समस्त व्यवहार का कारण है। मंगल प्रदान करने वाला कर्मों में भाग्य का हेतु है। नाम से ही मनुष्य कीर्ति को प्राप्त करता है। इसलिए नामकरण अत्यन्त प्रशस्त (श्रेष्ठ) कर्म है।

हम जानते हैं कि जिस समय मनुष्य ने भाषा का विकास किया उसी समय से वह अपने जीवन में दैनिक व्यवहार की वस्तुओं के नामकरण के लिए प्रयत्नशील रहा है। सामाजिक चेतना के विकास के साथ मनुष्यों का नामकरण किया जाने लगा। क्योंकि व्यक्तियों के विशिष्ट तथा निश्चित नामों के बिना संस्कृत समाज के व्यवहार का संचालन असंभव था। लोगों ने अतिप्राचीन काल में ही व्यक्तिगत नामों के महत्त्व का अनुभव किया तथा नामकरण की प्रथा को धार्मिक संस्कार में परिणत कर दिया गया।

हमारे यहाँ शास्त्रों में दार्शनिकों ने ज्ञान को दो भागों में बाँटा है, (क) निर्विकल्पक ज्ञान एवं (ख) सविकल्पक ज्ञान। बिना नाम या बिना संज्ञा का ज्ञान निर्विकल्पक ज्ञान है, तथा नाम सहित एवं ससंज्ञ ज्ञान सविकल्पक ज्ञान है। अर्थात् निर्विकल्पक ज्ञान का आधार सविकल्पक ज्ञान है। समाधि में भी यही दशा है। सविकल्पक समाधि की अवस्था को प्राप्त कर ही योगी निर्विकल्पक अवस्था को प्राप्त करता है। जिससे आगे जाकर इसे मोक्ष होता है। उसी तरह संसार में रहने के लिए सविकल्पक ज्ञान का होना अत्यन्त अनिवार्य है। ताकि किसी के उस नाम के उच्चारण से तत्स्थानीय सभी लोगों को अधिगम हो सके। संज्ञा देने की इस प्रक्रिया को हम नामकरण कहते हैं। शास्त्रों में भी भगवान् की प्राप्ति में चार कारण माने गये हैं। नाम, रूप, लीला, धाम जिनमें नाम प्रथम है। भगवान् की प्राप्ति भी नाम जप के प्रभाव से ही संभव है। हम पहले परमात्मा के नाम का ही स्मरण करते हैं। तब जाकर रूप लीला धाम आदि का दर्शन होता है। संभवतः आज भी इसीलिए देवी-देवताओं की सहस्र नामावली प्रसिद्ध है। जैसे विष्णुसहस्रनाम, ललितासहस्रनाम आदि।

इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं-

रुप विषेष नाम बिनु जाने। करतलगत न परहि पहिचाने ।।

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी ।।

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू ।।

नहि कलि कल न भगति विबेकू। रामनाम अवलम्बन एकू ।।

अजामिल, गणिका, गजराज आदि भक्तों ने नाम के प्रभाव से ही भगवान् को प्राप्त किया। यह बात नाम प्रसंगों के कारण आपको बतायी गयी। अब हम विषय पर आते हैं।

इस प्रकार दैनिक जीवन में भी नाम का महत्त्व अधिक है नाम ज्ञात न होने के कारण कोई भी किसी से बात तक नहीं करेगा। इसीलिए लोगों का नामकरण संस्कार किया जाता है।

नामकरण की परम्परा की यदि बात करें तो यह अत्यन्त प्राचीन है जैसा कि मैं पूर्व में बता आया हूँ। शतपथब्राह्मण के अनुसार दो नामग्रहण (रखने) की परम्परा मिलती है। जिसमें एक नाम व्यवहार में (घर में) प्रयुक्त होता था, द्वितीय नाम मातृक या पैतृक होता था। आज भी आप देखेंगे एक घर में पुकारने का नाम, दूसरा राशि के अनुरूप नाम, जिसका प्रयोग विवाह आदि में करते हैं। पारस्करगृह्यसूत्र में नामग्रहण का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है।

2.4.1 नाम ग्रहण संस्कार के काल विचार

नामग्रहण काल पर अनेक ऋषियों ने अनेक मत प्रकट किये हैं, परन्तु यहाँ जो हमें ग्राह्य है वहीं बताने जा रहा हूँ। पारस्करगृह्यसूत्र में आचार्य कहते हैं-

'दशम्यामुत्थाप्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा पिता नाम करोति'।

अर्थात् प्रसव दिन से लेकर 10 दिन तक तो सूतक ही रहता है, जिसे आपको इसके पहले बताया जा चुका है। अतः दसरात्रि के बाद एकादश वें दिन बालक का नामकरण संस्कार करना चाहिए। इसी बात को आचार्य गदाधर स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं - **'प्रसवाद्दषम्यां रात्र्यामतीतायामेकादषेऽहनि सूतिकागृहात् सूतिकामुत्थाप्य नामकरणांगतया त्रीन् ब्राह्मणान् भोजयित्वा पिता कुमारस्य नाम (संज्ञा) सम्व्यवहारार्थं करोति।'**

मदनरत्ननामक ग्रन्थ में भी 'सूतकान्ते नाम कर्मविधेयं स्वकुलोचितम्' इस वचन से 11वें दिन ही नामकरण करना चाहिए। महर्षि याज्ञवल्क्य भी कहते हैं -

'अहन्येकादशे नाम'

यहाँ एक बात और ध्यान देना है कि अमावस्या, भद्रा, संक्रान्ति आदि उस दिन होने पर नामकरण नहीं करना चाहिए। जैसा कि लिखा है-

'अमा संक्रान्ति विष्ट्यादौ प्राप्तकालेऽपि नाचरेत्'

इसीलिए सारसंग्रह नामक ग्रन्थ में यह भी लिखा है कि -

एकादशेह्निविप्राणां क्षत्रियाणां त्रयोदषे।

वैश्यानां षोडशे नाम मासान्ते शूद्रजन्मनाम् ।।

अर्थात् ग्यारहवें दिन ब्राह्मणों का, तेरहवें दिन क्षत्रियों का, सोलहवें दिन वैश्यों का एवं एक मास में शूद्रों का नामकरण संस्कार करना चाहिए।

हमें शास्त्रों के विकल्प पक्षों को ध्यान नहीं देना है। अन्ततः निष्कर्ष यही है कि स्वकुलगोत्र परम्परा के अनुसार 11 वें दिन ब्राह्मण बालक का नामकरण संस्कार अवश्य कर देना चाहिए। ब्राह्मण का ही नहीं अपितु सभी वर्णों का, क्योंकि -

सूतिका सर्ववर्णानां दशाहेन विशुद्धयति।

ऋतौ च न पृथग्धर्मः सर्ववर्णेष्वयं विधिः ।।

इस वचन से प्रतीत होता है।

नामकरण किस समय करें -

इस पर विचार करते हुए शास्त्रों में कहा गया है कि-

पूर्वाह्ने श्रेष्ठ इत्युक्तो मध्याह्ने मध्यमः स्मृतः।

अपराह्णं च रात्रिं च वर्जयेन्नामकर्मणि।।

अर्थात् पूर्वाह्न (प्रातःकाल) में नामकरण श्रेष्ठ होता है, मध्याह्न में मध्यम होता है। अपराह्न एवं रात्रि में नामकरण नहीं करना चाहिए।

किस दिन नामकरण करें -

भास्करार्कजभौमानां वर्जयेदर्षकोदयौ।

धनकर्मसुतभ्रातृनवमस्थः शुभः शशी ।।

अर्थात् रवि, शनि, भौमवार एवं अमावस्या को छोड़कर धन, कर्म, सुत, भाई एवं नवमस्थ चन्द्रमा के रहने पर शुभ होता है।

2.4.2 नाम का स्वरूप

कर्मकाण्ड में चार प्रकार के नामों का उल्लेख मिलता है - (क) कुलदेवता के अनुरूप नाम, (ख) मासदेवतानुरूपनाम (ग) नक्षत्रानुरूपनाम, (घ) व्यवहारनाम।

कुलदेवता के अनुरूप नाम का तात्पर्य यह है कि अपने कुल देवता के अनुसार दास आदि नाम रखना। जैसे किसी के कुलदेवता हनुमान जी है, तो हनुमानदास या हनुमत्प्रसाद आदि नाम, बालक का रखना चाहिए।

वीरमित्रोदय नामक ग्रन्थ में भी इस बात का समर्थन मिलता है। कुलदेवता के आधार पर नाम रखने के पीछे माता-पिता की यह धारणा थी कि बालक को उन कुल देवताओं का संरक्षण प्राप्त हो।

दूसरा नाम मासदेवता का है। इसमें प्रत्येक महीनों के देवता बताये गये है। जातक का जन्म जिस मास में होगा उस मास के देवता उस जातक के मासदेवता कहलायेंगे, तथा उन्हीं के नाम पर जातक का नाम निर्धारण करना, मासदेवता के आधार पर नाम निर्धारण करना कहा जाता है। तथा कुछ मास के नाम भी भगवन्नाम के समान है अतः उसी आधार पर नामकरण होता था। महर्षि गर्ग के अनुसार मार्गशीर्ष से क्रमश: बारह मासों के नाम है-

कृष्णोऽनन्तोऽच्युतष्चक्री वैकुण्ठोऽथ जनार्दनः।

उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्तथा हरिः

योगीशः पुण्डरीकाक्षो मासनामान्यनुक्रमात्॥

अर्थात् कृष्ण, अनन्त, अच्युत, चक्री, वैकुण्ठ, जनार्दन, उपेन्द्र, यज्ञपुरुष, वासुदेव, हरि, योगीष तथा पुण्डरीकाक्ष।

आप देखे! ये कितने अच्छे नाम है, परन्तु आजकल जो लोग अपने बच्चों का नाम रखते हैं उनसे भी आप परिचित ही है।

नक्षत्र नाम -

जिस नक्षत्र में बालक का जन्म होता है, उस नक्षत्र के जो देवता होते हैं, वही नाम उस बालक का रखा जा जाता है। जैसे पुनर्वसु के देवता अदिति है। तो उस बच्चे का नाम आदित्य होगा। श्रवण नक्षत्र में उत्पन्न बच्चे का विष्णु, अष्विनी नक्षत्र में उत्पन्न बच्चे का नाम अश्विनी कुमार आदि।

सभी देवताओं के नाम लिखना यहाँ ठीक नही है विस्तार होगा उसके लिए आप दूसरे सम्बद्ध ग्रन्थों को भी देख सकते हैं।

ज्योतिष की दृष्टि में प्रत्येक नक्षत्र में चार चरण बताये गये हैं। उसमें जिन चरणों में जन्म हुआ हो उसके आधार पर रखा गया नाम राशिनाम कहलाता है। जिसे आप जानते ही हैं।

व्यवहारिक नाम -

चौथा नाम व्यवहार नाम होता है। इसी नाम का प्रायः लोगों के द्वारा व्यवहार किया जाता है। इसमें यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि उच्चारण में नाम सरल तथा सुनने में अच्छा होना चाहिए।

पुरुष प्रकृति से ही कठोर तथा सबाल होते हैं और नारी कोमल तथा सुन्दर होती है। अतः इसीके अनुरूप व्यवहार नाम रखा जाना चाहिए।

नाम में अक्षर विचार -

यहाँ नाम में कौन-कौन से अक्षर होने चाहिए यह भी शास्त्रों में विचार किया गया है। और शास्त्रानुकूल नाम रखने पर अवश्य ही उसका फल मिलता है । सर्वप्रथम पारस्करगृह्यसूत्र के अनुसार -

द्वयक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तस्थं दीर्घाभिनिष्ठानं कृतं कुर्यात् न तद्धितम्। अयुजाक्षरमाकारान्तं स्त्रियै तद्धितम्।

बालक का नाम दो या चार अक्षर का होना चाहिए । उसका पहला अक्षर घोषवर्ण वाला होना चाहिए । घोषवर्ण (ह य व र ल य म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द) है । नाम के बीच में कोई एक अन्तस्थ वर्ण (य र ल व) होना चाहिए । अन्त में दीर्घ या विसर्ग होना चाहिए । कृदन्त होना चाहिए तथा तद्धित भिन्न होना चाहिए । बालिकाओं का नाम विषम अक्षर (3,5,7) वर्ण वाले होना चाहिए । अन्त में आकार एवं तद्धितान्त होना चाहिए ।

इस प्रकार नामकरण में होने वाले कुछ विशेष बातों का परिचय कराने के बाद अब इस संस्कार की शास्त्रीय प्रयोगविधि बताया जा रहा है ।

अथ प्रयोगविधिः

नामकरण के दिन माता पिता बालक के साथ स्नान कर पूजन स्थल पर आकर दीप जलाकर स्वस्तिवाचनपूर्वक संकल्प करें।

संकल्प - देषकालौ संकीर्त्य अमुकगोत्रः अमुकराषिः अमुकशर्माऽहं अमुकराशे: अस्य पुत्रस्य अस्याः कन्यायाः वा करिष्यमाणनामकर्मणि गणेशाम्बिकयोः पूजन कलशस्थापनं, मातृकापूजनं, नान्दीश्राद्धम् आचार्यवरणानि च करिष्ये ।

इसके बाद गणेश पूजन से लेकर आचार्यवरण कर्म करने के बाद प्रधान संकल्प करें - पूर्वोच्चारित एवं ग्रहगुणविषेषणविषिष्टायां अमुकतिथौ गोत्रः षर्माऽहं अमुकराषेः अस्य बालकस्य आयुर्वृद्धिव्यवहारसिद्धि बीजगर्भसमुद्भवैनोनिर्बहणद्वाराश्रीपरमेष्वरप्रीतये नामकर्म संस्कारमहं करिष्ये।

तत्र वेदीं कृत्वा पंचसंस्कारपूर्वकमग्निं संस्थाप्य वेद्याः ईशानदिग्भागे कलशविधिना कलशं संस्थाप्य तत्र ब्रह्मवरुणसहितादित्यादिनवग्रहानावाह्य सम्पूज्य च रक्षासूत्रं स्वयमभिमन्त्र्य स्वयं होमकर्तृत्वे ब्रह्मणो वरणं कुर्यात्।

(नामकरणसंस्कार के निमित्त 3 ब्राह्मणों को भोजन एवं दक्षिणा से संतुष्ट कर कुशकण्डिका करें। इसके बाद होम, पान (पीने के लिए) एवं भू प्रोक्षण के लिए पंचगव्य का निर्माण करें।)

पंचगव्यनिर्माण विधि

पंचगव्य में गोमूत्र, गोमय, गौ का दूध, गौ की दधि, गौ घृत एवं कुशोदक रहता है। जिसमें मन्त्रपाठ पूर्वक तत् तत् पदार्थों को एक पात्र में बनाते हैं, जिससे प्रोक्षण आदि करते हैं। जैसा कि कहा गया है-

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुषोदकम्।
निर्दिष्टं पंचगव्यं च पवित्रं कायषोधनम्।।

मंत्र से निर्मित यह पंचगव्य षरीर में त्वचा एवं अस्थिगत समस्त पापों को षरीर से हटाकर पवित्र करता है। क्योंकि गोमूत्र में वरुण देवता, गोमय में हव्यवाट (अग्नि) गोदूध में चन्द्रमा, गोदधि में वायु, गोधृत में भानु एवं कुषा के जल में भगवान् हरि निवास करते हैं। जैसा कि कहा गया है-

गोमूत्रे वरुणो देवो हव्यवाहस्तु गोमये।
क्षीरे चन्द्रष्च भगवान् वायुर्दध्नि समाश्रितः।।
भानुराज्ये स्थितस्तद्वत् जले हरिरुदाहृतः।
दर्भे देवाः स्थिताः सर्वे पवित्रं तेन नित्यषः।।

'ऊँ भूर्भुवः स्वतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्' इति मन्त्रेण गोमुत्रं गृहीत्वा वरुणं ध्यायन् एकस्मिन् पात्रे स्थापयेत्।

ऊँ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईष्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।। इति मंत्रेण गोमयं संगृह्य अग्निं ध्यायन् पात्रे क्षिपेत्।
ऊँ आप्यायस्व समेतु ते व्विष्वतः सोमव्वृष्ण्यम्। भवाव्वाजस्य संगथे।
मन्त्रेणानेन दुग्धं संगृह्य सोमं ध्यायन् पात्रे क्षिपेत्।
ऊँ दधिक्राव्णोऽअकारिषंजिष्णोरष्वस्यव्वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्रणऽआयूँषितारिषत। इति मन्त्रेण दधि संगृह्य वायुं ध्यायन् पात्रे क्षिपेत्।
ऊँ तेजोऽसि षुक्रमस्यमृतमसिधामनामासिप्रियन्देवानामनापृष्टन्देव यजमनसि। इति घृतं संगृह्य रविं ध्यायन् पात्रे क्षिपेत् ।
ऊँ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽष्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णोहस्ताब्भ्याम्। इति कुषोदकं संगृह्य हरिं ध्यायन् पात्रे क्षिपेत्।
ऊँ आपो हिष्ठामयोभुवस्तानऽऊर्ज्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे।

यो वः शिवतमोरसस्तस्यभाजयते हनः । उशतीरिवमातरः। तस्माऽअरंगमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा चनः । इति मंत्रेण आलोड्य

इस प्रकार से निर्मित पंचगव्य के द्वारा पवित्र (समूल साग्र तीनों कुषों के द्वारा) हवन करना चाहिए। तत्रादौ **संकल्पः** - अद्येह पंचगव्यपानांगहोमकर्मणा अहं यक्ष्ये ।

ततः विधिनामानमग्निमावाहयेत। तत्र मन्त्रः - एतन्ते देवसवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे। तेन यज्ञमवतेन यज्ञपतिन्तेनमामव।

ॐ भूर्भुवः स्वः विधिनामाग्ने इहागच्छेहतिष्ठ सुप्रतिष्ठितो वरदो भव। ॐ तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ताऽआपः स प्रजापतिः। इति मंत्रेण अग्निं ध्यात्वा। पंचोपचारैः सम्पूज्य दक्षिणं जान्वाच्य ब्रह्मणान्वारब्धो जुहुयात्। (मनसा) प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय न मम। ॐ अग्नये स्वाहा। इदमग्नये न मम। ॐ सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय न मम। इत्याधारावाज्यभागौ च हुत्वा अन्वारम्भं त्यक्त्वा सप्तभिहरितदर्भतरुणैः पंचगव्य होमं कुर्यात्।

पंचगव्यहोममंत्राः

ॐ इरावती धेनुमतीहिभूतं सूयवसिनी मनवेदषस्या। व्यस्कम्नारोदसीव्विष्णवेते दाधर्थपृथिवीमभितोमयूखैः स्वाहा।

इदं विष्णवे न मम।

ॐ इदं विष्णुर्व्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्यपांसुरे स्वाहा।

इदं विष्णवे न मम।

ॐ मानस्तोकेतनयेमानऽआयुषिमानो गोषु मा नोऽअष्वेषु रीरिषः।

मानोव्वीरान्रुद्रभामिनोव्वधीर्हविष्मन्तः सदमित्वा हवामहे स्वाहा।

इदं रुद्राय न मम। उदकस्पर्षः।

ॐ शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये। षंय्योरभिस्रवन्तु नः स्वाहा।

इदमद्भ्यो नमः।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् स्वाहा। इदं सवित्रे न मम।

ॐ प्रजापतये न त्वदेतान्यन्योव्विष्वारुपाणि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तुव्वयं स्याम पतयोरयीणां स्वाहा।

इदं प्रजापतये न मम।

इति पंचगव्यहोमं विधाय ब्रह्मणान्वारब्धः आज्येन भूराद्यानवाहुतिर्हुत्वा पंचगव्यमिश्राज्येन स्विष्टकृद्होमं च कृत्वा संस्रवप्राषनादिपूर्णपात्रद्वनान्तं कर्म समापयेत्।

ततः अद्येह पंचगव्यपानांगहोमकर्मणः सांगतासिध्यर्थं इमां दक्षिणां पुरोहिताय ब्राह्मणाय दास्ये। ऊँ तत्सन्न मम। इति संकल्प्य दक्षिणां दद्यात्।

ततः हुतशेषं पंचगव्यं सूतिकायै दद्यात्। प्रसवगृहं च प्रोक्षेत्। सा च ब्रह्मतीर्थेन त्रिः प्राश्नाति अत्र आचारात् स्रुवं गन्धाक्षतपुष्पाद्रव्यादिभिः सम्पूज्य ब्रह्मा स्रुवेणान्वारम्भं कृत्वा सूतिकां भर्तुः समीपमानयति। सा च बालकमंके गृहीत्वा अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य 'भतुर्वामतः उपविशेत्। आवाहित देवेभ्यः पुष्पांजलिं समर्पयेत् ।

2.4.3 नामकरण प्रक्रिया

उपरोक्त कर्म को समाप्त कर नामकरण की विधि अब आपको बताया जायेगा। ऊपर की प्रक्रिया आप अच्छी तरह जानते हैं। इसीलिए इसकी हिन्दी मैंने नहीं दी। अस्तु

दैवज्ञ (ज्योतिषी) के द्वारा बताये गये सुन्दर लग्न में नवीत वस्त्र पर कुंकुम आदि से शिशु का नाम लिखकर प्रतिष्ठा मंत्र पढ़ें। 'एतन्ते' यह प्रतिष्ठा मंत्र है। इसे इसके पहले प्रकरण में लिख दिया गया है। अतः यहाँ पूरा मंत्र नहीं दिया गया है। ऊँ भूर्भुवः स्वः बालकनाम सुप्रतिष्ठितो भवतु इति प्रतिष्ठाप्य कहकर लग्नदान का संकल्प करें - अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकराशेरस्य बालकस्य नामकर्मलग्नाद्यकुत्रस्थाने स्थितानाम् आदित्यादिनवग्रहाणां शुभानां शुभफलाधिक्यप्राप्तये दुष्टानां दुष्टफलोपषान्त्यर्थं इमां सुवर्णनिष्क्रयिणीं दक्षिणां दैवज्ञाय तुभ्यमहं सम्प्रददे।

इस प्रकार संकल्प कर दक्षिणा देकर सुनवांश आने पर नये वस्त्र पर लिखे गये नामवाले कपड़े को शंख से आवेष्टित कर बालक के दक्षिण (दाहिने) कान में उसका नाम पाँच बार बोले। तथा च सुनवांसे समागते लिखित नामकमन्नव्यवस्त्रं सद्रव्यषंखे वेष्टयित्वा तेन बालस्य दक्षिणकर्णे पंचघोषपुरस्सरं अमुक शर्माऽसि दीर्घायुर्भव इति कथयेत्।

यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है ब्राह्मण बालक के लिए अन्त में शर्मा का उच्चारण करने चाहिए जैसे उपेन्द्र शर्मा। क्षत्रिय के लिए अन्त में वर्मा, वैश्य के लिए गुप्ता शूद्र के लिए दास कहना चाहिए।

जैसा कि कहा गया षर्मान्तं ब्राह्मणस्य, वर्मान्तं क्षत्रियस्य गुप्तान्तं वैष्यस्य, दासान्तं 'शूद्रस्य नाम कुर्यात्।

ततो नामकरणदक्षिणा संकल्प - अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकराशेर्बालकस्यास्य

नामकर्माख्यसंस्कारकर्मणः सांगतासिध्यर्थं तत्सम्पूर्णफलप्राप्त्यर्थं इमां सुवर्णदक्षिणाम् आचार्याय तुभ्यमहं सम्प्रददे। इति संकल्प्य नामकर्मदक्षिणां दद्यात्।

पुनः संकल्पः - अद्येहेत्यादि संकीर्त्य अमुकराशिरस्य बालकस्य बैजिकगार्भिकदुरितोपषान्तये व्यवहारसिद्धये च कृतस्य नामकरणकर्मणः न्यूनातिरिक्तदोष परिहारार्थं इमां भूयसीं दक्षिणां ब्राह्मणेभ्यो दास्ये । तथा कृतस्य नामकर्माख्यसंस्कारकर्मणः सादुण्यार्थं दश वा यथासंख्यकान् ब्राह्मणान् भोजयिष्ये। इति संकल्प्य अग्निं सम्पूज्य त्र्यायुषादि कृत्वा अग्निं विसर्जयेत्।

प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यतेताध्वरेषु यत्।

स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्याद्यथाश्रुतिः ।।

ॐ विष्णवे नमः ॐ विष्णवे नमः ॐ विष्णवे नमः।

इति नामकरणसंस्कारप्रयोगः

बोधप्रश्न

यहाँ अब आपसे कुछ प्रश्न पूछे जायेंगे जिनका उत्तर आपको देना है।

1. पंचगव्य में कौन-कौन से पदार्थ रहते हैं?
2. दूध में कौन देवता निवास करते हैं?
3. सर्पिः किसे कहते हैं?
4. संस्कार में अद्येहेत्यादि का क्या तात्पर्य है?
5. प्रजापति को स्वाहाकार कैसे दिया जाता है?
6. बिना नाम के ज्ञान को क्या कहते हैं?
7. बालक का नामकरण किस दिन होता है?

2.5 सारांश

इस इकाई में आपके सामने जातकर्म एवं नामकरण संस्कार की चर्चा की गयी है। सर्वप्रथम जातकर्म संस्कार का परिचय एवं उसके बाद शास्त्रीय प्रयोग विधि प्रयोग उसमें है। आज इन दोनों संस्कारों का अत्यन्त अभाव होता चला जाता है। दूसरी स्थिति अच्छे ग्रन्थों से खोजकर परिश्रमपूर्वक इसका सामान्य परिचय एवं सम्पन्न कराने की विधि को उसमें रखा गया है। जातकर्म संस्कार को उद्देष्य करके इसका उद्भव, सूतिकागृह का स्थान इस संस्कार का प्रयोजन, सोष्यन्तीकर्म, मेधाजनन, आयुष्यवर्धन, स्तनपान एवं सूतक की अवधि आदि के विषय में मतान्तरों को देते हुए निर्णीत एवं उचित पक्ष पर भी विचार किया गया है। इसी तरह नामकरण संस्कार में इसका संक्षिप्त

परिचय, नामकरणकाल, मुहूर्त, नाम रखने के प्रकार एवं प्रयोगविधि आदि की चर्चा की गई है जिसे आप स्वयं पढ़कर अनुभव करेंगे।

इस प्रकार ये दोनों संस्कार संक्षेप में सम्पन्न हुए। हाँ इसमें कहीं त्रुटि आदि समझ में आवे तो अवश्य ही हमें संकेत करेंगे यह मेरा आपसे निवदेन है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

प्राशयति = खिलाता है

अवर = जरायु (झिल्ली युक्त गर्भ)

अवेतु = नीचे की ओर गिरे

नाभ्याम् = नाभि के समीप

ब्रह्म = वेद

प्रतिदिशं = प्रत्येक दिशा में

शण्डग्रह = मारकग्रह

अपह्वर = टेढ़ा करने वाले

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रथम अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. गर्भाधान
2. जातकर्म
3. पुत्र की आयु एवं श्री की वृद्धि ही जातकर्म संस्कार का मुख्य प्रयोजन है।
4. मेधाजन जातकर्म संस्कार से सम्बद्ध है।
5. बालक के सम्पूर्ण आयु प्राप्ति के लिए वात्सप्रसंज्ञकमंत्र (अनुवाक) का पाठ किया जाता है।
6. जननाशौच में 10 दिन का सूतक रहता है।
7. प्रसव की पीडा से विकल स्त्री को, जिसे सुखपूर्वक प्रसव कराने की प्रक्रिया को सोष्यन्ती कर्म कहते हैं।

द्वितीय अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. पंचगव्य में गो दूध, गो दधि, गो घृत, गो मूत्र, गोमय एवं कुषोदक होते हैं।
2. गो के दूध में चन्द्रमा निवास करते हैं।

3. सर्पिः घी (गोघृत) को कहते हैं।

4. संकल्प में अद्येहेत्यादि का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक संकल्प का पूर्वार्द्ध ऊँ विष्णुः से लेकर गोत्रः तक बोलना है।

5. प्रजापति को बोलकर (वाणी से) स्वाहाकार नहीं किया जाता है, अपितु मन से (मन में ध्यान कर) इसीलिए मनसा कहा गया है।

6. बिना नाम के ज्ञान को निर्विकल्पक ज्ञान कहते हैं।

7. बालक का नामकरण 11वें दिन होता है।

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. संस्कारदीपक - महामहोपाध्याय श्रीनित्यानन्द पर्वतीय

2. पारस्करगृह्यसूत्र - आचार्य पारस्कर (गदाधर भाष्य)

3. हिन्दूसंस्कारविधिः - डा. राजबली पाण्डेय

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जातकर्म संस्कार का परिचय प्रस्तुत करें।

2. नामकरण संस्कार के महत्त्व पर प्रकाश डालें।

3. पंचगव्य होम की विधि लिखें।

4. पंचगव्य निर्माण मंत्रों को लिखें।

इकाई 3 – अन्नप्राशन संस्कार

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 जातकर्म संस्कार

3.3.1 जातकर्म संस्कार का प्रयोजन

3.3.2 जातकर्म में होने वाले मुख्य कर्म

3.4 नामकरण संस्कार

3.4.1 नाम ग्रहण संस्कार के काल विचार

3.4.2 नाम का स्वरूप

3.4.3 नामकरण प्रक्रिया

3.5 सारांशः

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAKA(N)-202 के प्रथम खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है। इससे पूर्व आपने नामकरण एवं मुण्डन संस्कार आदि के बारे में जान लिया है। अब आप अन्नप्राशन संस्कार के बारे में जानने जा रहे है।

अन्नप्राशन का अर्थ है – नवजात शिशु को प्रथम बार अन्न का प्राशन कराना अर्थात् खिलाना। कर्मकाण्ड विधि के अन्तर्गत अन्नप्राशन हेतु भी मुहूर्त्त निर्धारित किया गया है। किस कालखण्ड में अन्नप्राशन शुभ होता है। उसकी विधि क्या है। आदि इत्यादि समस्त विषयों का प्रतिपादन इस इकाई में आपके ज्ञानार्थ किया जा रहा है।

अन्नप्राशन से जुड़े अनेक अंशों को भी आपके सामने रखा जा रहा है जिससे यह विधि पूर्ण हो जाय तथा इसे समाज के समक्ष प्रस्तुत कर भारतीय संस्कृति के अभ्युदय में आप की भी सहभागिता सिद्ध होगी।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेगें कि –

- अन्नप्राशन संस्कार क्या है।
- अन्नप्राशन का महत्व क्या है।
- किस कालखण्ड में अन्नप्राशन शुभ होता है।
- अन्नप्राशन का शुभाशुभ मुहूर्त्त क्या है।

3.3 अन्नप्राशन संस्कार का परिचय एवं महत्व

शिशु को छठे महीने में माँ के दूध से अलग कर देना चाहिए। और उसे सुपाच्य, मुलायम, पेय आदि अन्न पर निर्भर कराना चाहिए। जन्म से सर्वप्रथम मनुष्य को अन्न खिलाने की विधि ही अन्नप्राशन संस्कार है। अन्न का अर्थ तो आप समझते ही हैं। प्राशन में प्र उपसर्ग है अशन का अर्थ भोजन है, जिसे संस्कृत में अश्नाति भी बोलते हैं। आशन या अशन का साधन ही संक्षिप्त रूप से अन्न है। उपनिषदों में अन्न को ब्रह्म माना गया है। ''अन्नं वै ब्रह्म''। इसी अन्न का प्राशन अर्थात् प्रथमबार

खिलाने को अन्नप्राशन कहते हैं। इसको भारतीय-संस्कृति में 'अन्नप्राशन संस्कार' नाम से विभूषित किया गया है। महर्षिपारस्कर द्वारा विरचित पारस्करगृह्यसूत्र (कल्प सूत्र) जो सम्पूर्ण उत्तरभारत की 'शुक्लयजुर्वेदीय शाखा की, इसमें भी आचार्यपारस्कर कहते हैं कि 'षष्ठे मासि अन्नप्राशनम्' इसका तात्पर्य है छठे महीने में अन्न का प्राशन अर्थात्, जन्म से पहली बार छठें मास में प्रथम बार अन्न बालक को खिलाना। बात यह है कि शिशु का जब जन्म होता है, तब उसे दाँत नहीं होते हैं। दाँतों का प्रादुर्भाव बाद में होता है। तथा वे दाँत कुछ समय के बाद निकल जाते हैं तथा फिर से नये दाँत उत्पन्न होते हैं जो चिरस्थायी होते हैं। यह प्रभु की ही लीला है। इसे दूध का दाँत भी लोग गाँवों में कहते हैं। शिशु के जन्म के पहले ही माँ के स्तनों में दूध आ जाता है जन्म बाद में होता है, यह प्रकृति की लीला है। जन्म के समय शिशु के अंग प्रत्यंग अत्यन्त छोटे छोटे होते हैं उसी के अनुरूप पाचनव्यवस्था भी होती है। अतः उसे जन्म से कुछ काल के बाद शरीर पुष्ट होने के लिए आहार की आवश्यकता होती है। आप देखें जन्म के समय शिशु को पेयएवंपुष्ट तथा मुलायम पदार्थ की आवश्यकता होती है, जिसे प्रकृति या ईश्वर स्वयं माँ के दूध के रूप में उसको प्रकट करते हैं। जन्म के समय से ही बच्चे की आहार की व्यवस्था प्रभु कर देते हैं। उसे आगे की चिन्ता करने की जरुरत नहीं होती है। जब जन्म के समय में ही प्रभु ने आहार की व्यवस्था की तो आगे भी अवश्य करेंगे ऐसा विश्वास करना चाहिए। परन्तु ऐसे प्रभु पर पर आज लोग विश्वास नहीं करते इसीलिए दुःखी रहते हैं। बच्चे के लिए माँ का दूध अमृत के समान होता है। आज -भी इसे अच्छी तरह कल के वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। बालक के शरीर के समस्त आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति मॉ के दूध से हो जाती है। उसे किसी दूसरे आहार की आवश्यकता नहीं होती है।

जब तक शिशु के दॉत नहीं आते तब तक मॉ का दूध ही उसका आहार होता है परन्तु जब शिशु को दाँत आ जाते हैं, एवं शिशु जब चलने का प्रयास करने लगे, तो उसे दूध के अलावा परिश्रम के अनुकूल अन्य तत्त्वों की भी आवश्यकता होती है। दूध में मुख्यरूप से कैल्सियम नामक तत्त्व पाया जाता है। अधिक काल तक दूध पिलाने से माता का शरीर भी कमजोर होने लगता है, तथा कैल्सियम की कमी होने लगती है, जिसका दुष्परिणाम शरीर में होने लगता है। अंग प्रत्यंग स्वयं प्रभावित होने लगते हैं परिणाम स्वरूप माता का शरीर क्षीण होने लगता है। जिसके लिए प्रत्येक माता अपने बच्चे को तभी तक दूध पिलाती है जब तक कि उस बच्चे का अन्नप्राशन संस्कार नहीं हो जाता है। यह संस्कार होते ही बालक अन्न के प्रति धीरे-धीरे अनुरक्त होने लगता है तथा माँ का दूध उससे छूट जाता है तथा अन्य आहार लेकर वह सबल एवं पुष्ट होने लगता है।

अन्नप्राशन का शिशु पर प्रभाव

नवजात शिशु जन्म के समय अविकसित ही रहता है। उसके पास दाँत नहीं होते हैं। इसलिए भारी अन्न जैसे रोटी, चावल आदि को वह नहीं खा सकता। शिशु के शरीर को विकसित करने के लिए माता का दूध अमृत के समान है। यह हम पहले भी आपको बता चुके हैं। परन्तु जैसे जैसे बालक के शरीर का विकास होता है उसको और पोषक तत्त्वों की आवश्यकता होती है। इसीलिए की शिशु के दाँत भी उत्पन्न हो जाते हैं जिससे यह लक्षित होता है कि अब उसे न केवल दूध की आवश्यकता है अपितु उसे अब अन्न भी चाहिए। इस प्रकार अन्नप्राशन संस्कार जन्म से छठे महीने में कर देना चाहिए। यही शास्त्र की विधि है। इसमें कारण यह भी है कि बच्चे की पाचन शक्ति तब तक विकसित हो जाती है एवं आहार लेने के लिए दाँत भी निकल आते हैं।

दन्तजनन प्रभाव दुष्प्रभाव एवं शान्ति के उपाय

मुहूर्त्तचिन्तामणि ग्रन्थ के अनुसार यदि प्रथम मास में ही शिशु के दॉत निकल आवे तो शिशु स्वयं नष्ट हो जाता है। द्वितीय मास में अनुज की हानि की आशंका रहती है, तृतीय मास में भगिनी की हानि, चौथे महीने में माता के लिए कष्टकारी होता है। पॉचवें में अग्रज की हानि होती है। छठवें महीने में अत्यन्त सुख, सातवें महीने में पिता से सुख, आठवें में पुष्टि, नवें महीने में धनवान,

दसवें महीने में अत्यन्त सुखी होता है। दॉत सहित जो बालक का जन्म होता है वह अपने माता – पिता के लिए हानिकारक होता है। यथा गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म के साथ ही दॉत निकलने के कारण उनके जन्मोपरान्त ही उनके माता – पिता का निधन हो चुका था। इसके लिए श्री चण्डेश्वर आचार्य के निम्नश्लोकों का अवलोकन करना चाहिए।

प्रथमे दन्तजननात् स्वयमेव विनश्यति।
द्वितीये भ्रातरं हन्ति तृतीये भगिनीं तथा ।।
चतुर्थे मातरं हन्ति पंचमे स्वात्मनोग्रजम्।
षष्ठे च मन्त्रजीवी स्यात् सप्तमे पितृसौख्यद ।।
अष्टमे पुष्टिजनको नवमे लभते धनम्।
लभते दशमे मासि सौख्यमेकादशेऽपि वा ।।
द्वादशे धनसम्पत्तिः दन्तानां जनने फलम्।

पद्मपुराण विष्णुधर्मोत्तर में परशुराम के प्रति पुष्कर ने भी कहा है-

दन्तजन्मनि बालानां लक्षणं तन्निबोध मे।
उपरि प्रथमं यस्य जायन्ते च शिशोर्द्विजा ।।
तैर्वा सह च यस्य स्यात् जन्मभार्गव सत्तम।
मातरं पितरं चाथ खादेतात्मानमेव वा ।।

इस प्रकार यहां दन्तजनन का फल विशेष बतलाया है। इसके शान्ति को दन्तजनन शान्ति के नाम से जाना जाता है। अवसर आने पर इस शान्ति को कराना चाहिए।

अन्नप्राशन संस्कार का समय -

अब यहॉ अन्नप्राशन संस्कार की चर्चा करते हैं , क्योंकि अन्नप्राश्न समय का ज्ञान होना भी अत्यावश्यक है।

गृह्यसूत्रों के अनुसार यह संस्कार शिशु के जन्म के पश्चात् छठे मास में किया जाता है। मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृतियों का भी यही मत है। किन्तु आचार्य लौगाक्षि संस्कार की गणितीय गणना के आधार पर निश्चित काल से सहमत नहीं है, तथा ये व्यक्तिगत परीक्षा निर्धारित करते हैं। इनके अनुसार पाचनशक्ति के विकसित हो जाने पर अथवा दाँतों के निकलने पर ही अन्नप्राशन संस्कार करना चाहिए। जैसे -''**षष्ठे अन्नप्राशनं जातदन्तेषु वा**'' । अर्थात् दाँत उत्पन्न होने पर ही यह संस्कार करना चाहिए। कभी कभी दाँत एक वर्ष तक भी नहीं आते हैं अतः यह पक्ष लौगाक्षि का सर्वसम्मत नहीं मालूम पड़ता है। दाँत, शिशु में ठोस अन्नग्रहण करने की क्षमता के विकसित होने के प्रत्यक्ष

चिह्न थे। पहले चार मास के पूर्व शिशु को अन्न देना कठोरतापूर्वक निषिद्ध था। दुर्बल शिशु के लिए यह अवधि बढ़ायी जा सकती है। यह भी वचन प्राप्त होता है जो भी हो, इन सभी विकल्पों में गृह्यसूत्र ही स्पष्ट रूप से प्रमाण है। इसी के अनुसार कार्य करना चाहिए।

अन्नप्राशन संस्कार जन्म से छठे सौर मास में अथवा किसी कारणवश स्थगित होने पर आठवें, नवें, दसवें मास में भी करना चाहिए। किन्तु कुछ आचार्यों के मत में बारहवें मास में अथवा एक वर्ष पूर्ण हो जाने पर भी करना चाहिए। जैसा कि -

जन्मतो मासि षष्ठे वा सौरेणोत्तममन्नदम् ।

तदभावेऽष्टमे मासे नवमे दशमेऽपि वा ।।

इस प्रकार इसकी अंतिम सीमा एक वर्ष थी जिसके आगे यह संस्कार स्थगित नहीं हो सकता था क्योंकि इसका और भी अधिक रुकना माता के स्वास्थ्य एवं शिशु की पाचनशक्ति के विकास के लिए हानिकारक होगा।

इन सभी बातों पर समीक्षा करते हुए निष्कर्ष यही है कि मत-मतामन्तर भिन्न होते है, परन्तु लोकाचार एवं शास्त्रीय विधि को देखते हुए आचार्यपारस्कर एवं मनु का मत अवश्य ही ग्राह्य है। अर्थात् बच्चे का अन्नप्राशन छठे मास में ही करना श्रेयस्कर होगा। यह मत प्रत्येक दृष्टि से अच्छा है।

3.4 अन्नप्राशन मुहूर्त विचार

अन्नप्राशन संस्कार के समय ज्ञान के पश्चात् उसके शुभाशुभ मुहूर्त्त का ज्ञान भी आवश्यक है । अत: यहॉ अब सम्बन्धित मुहूर्त्त की चर्चा करते हैं -

सर्वप्रथम आचार्यो ने दुर्बल शिशुओं के लिये छ: मास के भीतर ही अन्नप्राशन करने की सलाह दी हैं। सबल बच्चों का अन्नप्राशन छ: मास के पश्चात् ही करना चाहिए ।

भारतीय मुहूर्त्त ग्रन्थों में चन्द्रमा, पूर्ण चन्द्रमा, गुरु बुध भौम सूर्य शनि शुक्र ये यदि लग्न से 5,12,1,5,7,8,स्थानों में से किसी एक में हो तो दीर्घजीवी, ज्ञानी, पित्तरोगी, कुष्ठी, अन्नाभाव से दुःखी वातरोगी एवं भोगों को भोगने वाला होता है। अर्थात् उक्त स्थानों में से किसी स्थान में क्षीण चन्द्रमा हो तो भिक्षा माँगकर खाने वाला, पूर्णचन्द्र हो तो यज्ञ करने वाला होता है। इसी प्रकार रिक्ता, नन्दा, अष्टमी, अमावश्या, द्वादशी इन तिथियों को शनि, भौम, रवि इन दिवसों में, छठे मास में, सम मासों में बालकों का और पाँचवें से विषम मासों में कन्याओं का मृदु, लघु, चर और स्थिर संज्ञक नक्षत्रों में अन्नप्राशन करना उत्तम होता है।

अन्नप्राशन के विशेष मुहूर्त

संस्कार में इस प्रकार लग्नों का विचार करना – आचार्य कश्यप के अनुसार अन्नप्राशन जानना चाहिए।

गोश्वकुम्भतुलाकन्यासिंहकर्कनृयुग्मकाः।
शुभदा राशयः चैते न मेषझषवृश्चिकाः।।

अर्थात् वृष, धनु, कुंभ, तुला, कन्या, सिंह, कर्क एवं मिथनु लग्न में अन्नप्राशन करना अत्यन्त उत्तम माना जाता है। मेष मीन एवं वृश्चिक लग्नों का निषेध है।

जैसा कि वसिष्ठ जी ने कहा-

युग्मेषु मासेषु च षष्ठमासात् संवत्सरे वा नियतं शिशूनाम्।
अयुग्ममासेषु च कन्यकानां नवान्नसम्प्राशनमिष्टमेतत्।।

अर्थात् बालकों को छठे मास से युग्म मासों में तथा कन्याओं का पाँचवें मास से विषम मास में अन्नप्राशन कराना चाहिए।

एक बात और यहाँ ध्यान देने योग्य है कि प्रायः जन्मनक्षत्र अन्य कर्मों में अशुभ मानी गई है परन्तु कुछ ऐसे भी कर्म है जिन्हें जन्मनक्षत्र में करने का आदेश शास्त्र से प्राप्त होता है। जैसे नारद जी का वचन है-

पट्टबन्धनचौलान्नप्राशने चोपनायते।
शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि।।

अर्थात् पट्टबन्धन पट्टाभिषेक या राज्याभिषेक में, मुण्डन में, अन्नप्राशन में एवं उपनयन में जन्म की नक्षत्र उत्तम मानी गई है। तथा अन्य कर्मों में वह अशुभ मानी जाती है। इस प्रकार अन्नप्राशन जन्मनक्षत्र में भी किया जा सकता है।

भोजन के प्रकार

अन्नप्राशन में सर्वप्रथम बच्चे को क्या खिलावे यह सबसे बड़ा प्रश्न है। इस पर अवश्य ही हमें विचार करना चाहिए। प्राचीनकाल में भोजन के प्रकार भी धर्मशास्त्रों द्वारा निर्णीत थे। साधारण नियम यह था कि शिशु को समस्त प्रकार का भोजन और विभिन्न स्वादों का मिश्रण कर खिलाना चाहिए। जैसा कि पारस्करगृह्यसूत्र में कहा गया है -'प्राशनान्ते सर्वान् सर्वमन्नमेकत उद्धृत्याथैनं प्राशयेत्' अर्थात् संस्रव प्राशन के पश्चात् मधुर आदि सभी रसों और भक्ष्य, भोज्य, लेह्य चोष्य प्रभृति सभी अन्नों को एक पात्र से उठाकर मुलायम करके शिशु को चटाना चाहिए। या जो लोकाचार पक्ष

हो पहले उसे करना चाहिए। अर्थात् जिससे शिशु को जिसे खाने में कष्ट न हो। उसे खिलाना चाहिए। कतिपय धर्मशास्त्री दही, मधु और घी के मिश्रण का विधान करते हैं।

विविध गृह्यसुत्रों में कामना भेद से मांस खाने का विधान भी दिया गया है। परन्तु यह क्षत्रिय इत्यादि वर्णों के लिये है, जो इसका सेवन करते हैं, ब्राह्मणों के लिए नहीं है। उदाहरण के लिए एक दो नाम आपके सामने रखता हूँ।

'भारद्वाज्यामांसेन वाक्प्रसादकामस्य' अर्थात् पिता अपने पुत्र को उत्तम वक्ता बनाना चाहता हो तो भारद्वाजी पक्षिणी का माँस शिशु को चटावे। शीघ्रगामी होने की कामना से मछली का रस उसे चटाया जाना चाहिए। इस प्रकार बहुत सारी कामनाओं के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजन है लेकिन ये समर्थ व्यक्तियों अर्थात् खाने में समर्थ लोगों के लिए ही है न कि सभी के लिए। जो इसका सेवन नहीं करते हैं उनके लिए यह नहीं है। उनके लिए तो देवताओं की आराधना या गायत्री का जप ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है जिससे कि सारी कामनायें पूर्ण हो जाती है।

उसी प्रकार तीक्ष्ण बुद्धि के लिए घी, भात, दृढ इन्द्रियों के लिए दही, भात और पितायदि शिशु में उक्त सभी गुणों को चाहता है तो सभी पदार्थो से उसे भोजन कराना चाहिए।

मार्कण्डेय पुराण के अनुसार शिशु को मधु और घी के साथ खीर खीलाने का विधान है। यही पक्ष सर्वमान्य भी है। आजकल लोग खीर या हलवा ही खिलाते हैं जो उत्तम है तथा खाने लायक भी शिशु के लिए है। 'मध्वाज्यकनकोपेतं प्राशयेत् पायसन्तुतम्।'

भोजन किसी भी प्रकार का क्योंकि न हो यह बात सदा ध्यान में रहे कि भोजन लघु तथा शिशु के लिए स्वास्थ्यवर्धक हो। इसीलिए आचार्य सुश्रुत कहते हैं कि अन्नप्राशन में शिशु को लघु एवं हितकर अन्न खिलाना चाहिए।

'षण्मासं चैतमन्नं प्राशयेल्लघु हितं च'

इस संस्कार के कर्मकाण्ड तथा उसका महत्त्व-

भोजन के पदार्थ अवसरोचित- वैदिककाल में अन्नप्राशन संस्कार के दिन सर्वप्रथम यज्ञीय मन्त्रों के साथ स्वच्छ वैदिक किये और पकाये जाते थे। भोजन तैयार हो जाने पर वाग्देवता को इन शब्दों के साथ एक आहुति दी जाती थी। देवताओं ने वाग् देवी को उत्पन्न किया है। यह मधुर ध्वनि वाली, अति प्रशंसित वाणी हमारे पास आये। द्वितीय-आहुति उर्जा प्राप्ति के निमित्त दी जाती है। आज हम उर्जा को प्राप्त करें। उपर्युक्त यज्ञों की समापन पर निम्नलिखित शब्दों के साथ चार आहुतियाँ और दी जाती है। जो आगे प्रयोग में आपको अवगत कराया जायेगा।

शिशु की समस्त इन्द्रियों की सन्तुष्टि पुष्टि के लिए प्रार्थना की जाती थी, जिससे वह सुखी एवं सन्तुष्ट जीवन व्यतीत कर सके, किन्तु एक बात ध्यान में अवश्य रखी जानी चाहिए कि सन्तुष्टि एवं तृप्ति की खोज में स्वास्थ्य एवं नैतिकता के नियमों का उल्लंघन नही करना चाहिए उससे मनुष्य के यश का क्षय होता है। आहुति के अन्त में पिता बालक को खिलाने के लिए सभी प्रकार के भोजन तथा स्वाद को पृथक् पृथक् रखता है और मौनपूर्वक अथवा हन्त शब्द का उच्चारण करके शिशु को भोजन कराता है।

3.4 अन्नप्राशन प्रयोग

क्रिय: शुचि: अथान्नप्राशनदिने कर्ता कृतनित्य, शुक्लवासाः बद्धशिखः कृतचन्दनः स्वासने उपविश्य दीपं प्रज्ज्वलय्य आचम्य प्राणानायम्य स्वस्तिवाचनं पूजा संकल्पं कृत्वा ऊॅ. विष्णुर्विष्णुविष्णु: अमुकगोत्र: अमुकराशि: अमुकशर्माहं .... श्रीमद्भगवतो महापुरूषस्य पुत्रस्य करिष्यमाण अन्नप्राशनसंस्कार कर्मणि निर्विघ्नतासिद्धये गणेशाम्बिकयो: अमुकराशे: ममास्य यथोपलब्धोपचारै: पूजनं अहं करिष्ये। तत: षोडशोपचारै: गणेशाम्बिकयो: पूजनं कुर्यात्।

अन्नप्राशन संस्कार करने के पश्चात् यजमान अपनी नित्यक्रिया पूर्ण करके पवित्र वस्त्र को धारण कर होकर नये व सुन्दर कम्बल के आसन पर बैठकर शिखा में ग्रन्थि लगाकर, माथे पर तिलक करके, आचमन, प्राणायाम करने के बाद उसे संकल्प करना चाहिए। संकल्प के बाद षोडशोपचार से गणेशाम्बिका का पूजन करें। इसके बाद प्रधान संकल्प करे।

प्रधानसंकल्पः —ग्रहगुणगणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकवासरे पूर्वोच्चारित एवं अमुकशर्माहं मम अमुकराशे: अस्य बालकस्य मातृगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं अन्नप्राशनाख्यं कर्म करष्यि। तत्पूर्वाहंगत्वेन गणपतिसहितगौर्यादि षोडशमातृकाणां पूजनं नान्दीश्राद्धं पुण्याहवाचनं च करिष्ये।

यहाँ प्रधान संकल्प करने के बाद कलशपूजन, पुण्याहवाचन, षोडशमातृका एवं सप्तमातृकाओं का पूजन करके नान्दीश्राद्ध करना चाहिए। कहीं कहीं लोकाचारवश स्थान भिन्न होने के कारण पूजन के क्रम में आगे पीछे भी देखा जाता है, जैसे नान्दीश्राद्ध करने के बाद कहीं पर पुण्याहवाचन होता है, जो ठीक नहीं है। क्रम जिस प्रकार आपको बताया गया है ठीक उसी प्रकार यहाँ भी पंचांग पूजन करने के बाद पंचभूसंस्कार करे एवं इसके बाद अग्नि स्थापन करके आचार्य का वरण करें।

यहाँ यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि अन्नप्राशन के अग्नि का नाम शुचि है। क्योंकि प्रत्येक संस्कारों की अग्नियाँ भिन्न- भिन्न होती है। अत: शुचि नामक अग्नि की स्थपना करें। अग्नि स्थापना के पहले ही कुशकंडिका कर लेनी चाहिऐ। आज अच्छे-अच्छे विद्वानों को कुशकंडिका नहीं आती। अतः कुशकंडिका यहाँ संक्षेप में आपको बताया जा रहा है। ''अग्नेर्दक्षिणतः त्रिभिः कुशैः ब्रह्मणे आसनं दत्वा तत्राग्नेः पूर्वमार्गेण ब्रह्माणमुपवेश्य अग्नेरुत्तरतः आसनद्वयं कल्पयित्वा प्रणीतापात्रं वामहस्ते कृत्वा उदकेन पूरयित्वा दर्भैराच्छाद्य ब्रह्मणोमुखमवलोक्य पश्चिमासने निधाय आलभ्य पूर्वासने निदध्यात्। ततः पूर्वपश्चिमयोरुत्तराग्रैः दक्षिणोत्तरयोः पूर्वाग्रैः कुशैः परिस्तरणं कृत्वा त्रीणिकुशतरुणानि द्वे पवित्रे प्रोक्षणीपात्रम्, आज्यस्थालीम्, चरुस्थालीम्, सम्मार्जनकुशान् उपयमनकुशान्, समिधः स्रुवम्, आज्यम्, तण्डुलान्, पूर्णपात्रम्, दक्षिणाम् एतानि वस्तूनि प्राक्संस्थानि उदगग्राणि अग्नेरुत्तरतः संस्थापयेत्।

द्वयोरूपरि त्रीणि निधाय ततस्त्रिभि: कुशै: द्वे प्रविच्छिद्य प्राक्षीणपात्रं प्रणीतात: उत्तरतो निधाय तत्र प्रणीतोदकमासिच्यपवित्राभ्यामुत्पूय पवित्रे प्रोक्षण्यां निधाय, तत्पात्रं वामे कृत्वा तदुदकं दक्षिणेनोच्छाल्य प्रणीतोदकेन प्रोक्ष्य प्रोक्षण्युदकेन आज्यस्थाल्यादीनि दक्षिणान्तानि प्रत्येकं प्रोक्षेत्। ततः आज्यस्थाल्याम् आज्यं प्रक्षिप्य चरुस्थाल्यां प्रणीतोदकमासिच्य त्रिः प्रक्षालितांस्तण्डुलांस्तत्र प्रक्षिप्य युगपदवाग्नौ आरोपयेत् आज्यं, ब्रह्मा, चरुं, स्वयमाचार्यो वा आज्योत्तरतः ज्वलदुल्मुकं उभयोः समन्तात् भ्रामयेत् उदकस्पर्शः। स्रुवमधोमुखं प्रतप्य उदकं स्पृष्ट्वा कुशाग्रैर्मूलतोऽग्रपर्यन्तं कुशमूलैरग्रतो मूलपर्यन्तं सम्मार्ज्य अभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य उदकं स्पृष्ट्वा दक्षिणतः कुशेषु निदध्यात्। आज्यमुत्थाप्य चरोः पूर्वेण नीत्वा उत्तरतः संस्थाप्य आज्यमग्नेः पश्चादानीय चरुं चानीय आज्यस्योत्तरतो निधाय पवित्राभ्यामाज्यमुत्पूय प्रोक्षणीं च उत्पूय उपयमनकुशान् वामकरे कृत्वा तिष्ठन् घृताक्ताः समिधः तूष्णीमग्नौ प्रक्षिप्य प्रोक्षण्युदकेन ईशानाद्युत्तरपर्यन्तं पर्युक्ष्य पवित्रे प्रणीतायां निधाय प्रोक्षणीपात्रं संस्रवधारणार्थं प्रणीताग्न्योर्मध्ये द्रव्यदेवताभिध्यानं कुर्यात्।

आपको हिन्दी में संक्षेपपूर्वक आपकी सरलता के लिए यहाँ विधि भी बतायी जा रही है, क्योंकि संस्कृत के पारिभाषिक शब्दों का यह प्रयोग कुछ कठिन सा प्रतीत होता है, अतः उसे समझकर हिन्दी में आपके सामने संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

ब्रह्मा के आसन पर ब्रह्मा को बिठाये। यजमान कहें —जब तक कर्म की समाप्ति न हो तब आज्ञा से प्रणीता पात्र को जल से मैं रहूंगा। इसके बाद ब्रह्मा की – तक आप ब्रह्मा बने रहें। ब्रह्मा कहे – भर दें, तथा प्रथमरख आसन पर ब्रह्मा के मुख को देखकर दूसरे आसन पर उस प्रणीता को रखें। इसके बाद अग्निकोण से ईशानकोण पर्यन्त परिस्तरण करें। बर्हि इक्यासी कुशा या मुट्ठी तुर्थभाग को

अपने बायें हाथ में लेकर अग्रभाग भर कुशा को बर्हि संज्ञा से हम जानते हैं। इसके च वाली कुशाओं से दाहिने हाथ से उत्तर की ओर अग्निकोण से ईशानकोण तक पूर्व की ओर अग्रभाग वाली कुशाओं से अग्निकुण्ड से प्रणीतापात्र तक कुशा बिछावे। पुनः हाथ में जल लेकर उलटा घुमावें। इसके बाद पात्रासादन करे। एक जगह तीन कुशा, दो कुशा, प्रोक्षणीपात्र, आज्यस्थाली, चरुस्थाली, सम्मार्जनकुशा पाँच, उपयमनकुशा सात तीन समिधा स्रुव, घी, चावल पूर्णपात्र वृषमूल्य दक्षिणा आदि रखें।

पवित्र निर्माण के लिए दो कुशाओं के उपर तीन कुशा को रखें और दो कुश के मूल भाग से दो बार अनामिका अंगूठे से पकड़कर तीन कुशाओं को तोड़ दें। अर्था प्रदक्षिण घुमाकर सभी को इनमें दो का ग्रहण करके तीन का त्याग करना है। हाथ में उन कुशाओं को लेकर प्रणीता के जल को तीन बार प्रोक्षणी के जल को प्रादेशमात्र उछालें। पुनः प्रोक्षणीपात्र को बायें हाथ में लेकर दाहिने हाथ से प्रोक्षणी जल को ऊँचा उठावे। प्रणीता पात्र के जल से प्रोक्षणी के जल का प्रोक्षण करें प्रोक्षणी के जल को ऊँचा उठावे। प्रणीता पात्र के जल से प्रोक्षणी के जल का प्रोक्षण करे प्रोक्षणी के जल से आज्यस्थाली, चरुस्थाली, सम्मार्जनकुशा-, उपयमनकुशा-, समिधा, स्रुवा, आज्य, तण्डुल, पूर्णपात्र तथा वहाँ रखे हुए सभी पदार्थों का प्रोक्षण करें। पुनः अग्नि और प्रणीता के मध्य में उस प्रोक्षणीपात्र को रखें। इसके बाद घृतपात्र में घी को भरें। अग्नि के पश्चिम पवित्र सहित चरुपात्र में प्रणीता जल से आसेचन पूर्वक चावल छोड़ें। ब्रह्मा के दक्षिणभाग में उस घृतपात्र को रखें। घृतपात्र के उत्तर से चरुपात्र अग्नि पर रखें। जलती हुई लकड़ी लेकर उसे घी के कटोरे के चारों तरफ सीधा घुमावें। पुनः उसी तरह उसे उल्टा घुमायें। इसके बाद जल का स्पर्श करें। इसे ही इतरथावृत्ति कहते हैं। चरु के आधे पक जाने पर स्रुवा के अग्रभाग से स्रुवा के अर्धमुख का सम्मार्जन एव (झाड़ना)ं अन्दर तथा मूल एवं स्रुवा के बाहरी भाग का सम्मार्जन कर प्रणीता के जल से स्रुवा का अभ्युक्षण करें। सम्मार्जन कुशाओं को अग्नि में छोड़ दें। स्रुवा को अग्नि में तपाकर अपने दाहिनी ओर रखे। घृतपात्र को अग्नि से उतारकर चरु के पूर्वदिशा से ले आकर अग्नि के उत्तर तरफ स्थापित कर दें। पुनः चरु को अग्नि पर से उतारकर अग्नि के उत्तर तरफ से ही घृतपात्र की प्रदक्षिणा कर घी के उत्तर भाग की ओर चरु को रखें। पुनः कुशा से घृत को ऊपर की ओर उछाले। घी को अच्छी तरह देखे तथा उसमें पड़े अपद्रव्य आदि को बाहर कर दें। पुनः प्रोक्षणी (तृण) का जल छिड़के। उपयमनसंज्ञक सात कुशाओं को बायें हाथ में लेकर खड़े होकर दाहिने हाथ में घृताक्त तीन समिधाओं को लेकर अग्नि में छोड़ दें। इसके बाद पवित्र धरण किये हुए हाथ से प्रोक्षणी के जल से ईशानकोण से लेकर ईशान कोण, पर्यन्त अग्नि का प्रदक्षिण क्रम से पर्युक्षण करें। पुनः अप्रदक्षिण क्रम से ईशान कोण पर्यन्त अपने दाहिने हाथ को

घुमा दें। इसीको इतरथावृत्ति कहते हैं। इसके बाद उन दोनों कुशाओं को प्रोक्षणीपात्र में रखकर अपने दाहिने घुटने को मोड़कर ब्रह्मा से कुशाओं द्वारा अन्वारब्ध करें अर्थात् कुशा से ब्रह्मा का स्पर्श करते हुए प्रदीप्त अग्नि में घी की आहुति करें।

अग्नि के उत्तर भाग में 'ऊँ प्रजापतये स्वाहा' कहकर आहुति दें। 'इदं प्रजापतये न मम' से आहुति से शेष इसी तरह अग्नि के दक्षिणभाग में हुए स्रुवा के घी को प्रोक्षणी पात्र में छोड़े। ऊँ इन्द्राय स्वाहा' से आहुति दें। तथा 'इदमिन्द्राय न मम' कहकर प्रोक्षणी पात्र में छोड़ दें। इसके बाद सूर्यादिग्रह, अधिदेवता, प्रत्यधिदेवता, गणपत्यादि पंचलोकपाल, वास्तोष्पति, क्षेत्रपाल एवं इन्द्रादि दशदिक्पाल देवताओं को भी समिधा, तिल, चावल, यवादि के मिश्रित हवनीय द्रव्य से आठ या 28 बार आहुति प्रदान करें। फिर हाथ में जल लेकर'या या यक्ष्यमयाणदेवताः ताभ्यस्ताभ्यः मया परित्यक्तं न मम यथा दैवतानि सन्तु' कहे। इसके साथ ही यहाँ कुशकण्डिका प्रयोग पूर्ण हो गया।

इति कुशकण्डिकाप्रयोग:

अन्नप्राशन संस्कार की प्रधान आहुतियाँ

इसके बाद दो आहुति अधोलिखित मन्त्र से घी की दें-

ऊँ देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्ज्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतै तु स्वाहा।।

इदं वाचे न मम।

ऊँ देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्ज्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतै तु स्वाहा।।

इदं वाचे न मम।

ऊँ वाजो नो अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँऽऋतुभिः कल्पयति।
वाजो हिमा सर्व्ववीरं जजानव्विश्वाऽआशाव्वाजपतिर्जयेयम्।।

(इदं वाचे वाजाय च न मम)

रूमभिधार्य आज्युतत: स्रवेण चप्लुतेन स्थालीपाकेन चतस्रः आहुतयो जुहोति(

ऊँ प्राणेनान्नमशीय स्वाहा। इदं प्राणाय न मम।

ऊँ अपानेन गन्धानशीय स्वाहा। इदमपानाय न मम।

ऊँ चक्षुषा रूपाण्यशीय स्वाहा। इदं चक्षुषे न मम।

ऊँ श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा। इदं श्रोत्राय न मम।

चरुशेषेण स्विष्टकृत्। ततः आज्यचरुभ्यां ब्रह्मणान्वारब्धो जुहुयात्।

ऊँ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते न मम।

ततः आज्येन अन्वारब्ध एव भूराद्यानवाहुतीर्जुहुयात्।

ऊँ भूः स्वाहा। इदमग्नये न मम।

ऊँ भुवः स्वाहा। इदं वायवे न मम।

ऊँ स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय न मम।

ऊँ त्वन्नोअग्ने वरुणाय विद्वान् देवस्य हेडोऽअवसासिसीष्ठाः।

यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो व्विश्वाद्वेषासि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा।

ति शेष घृत को प्रोक्षणी पात्र में छोड़ें।कहकर आहु (इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम)

ऊँ सत्वन्नोऽअग्नेऽवमो भवोतीनेदिष्ठोऽअस्याऽउषसो व्युष्ठौ।

अवयवक्ष्वनो वरुणं रराणो व्वीहिमृडीकं सुहवोनऽएधि स्वाहा।

(इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम)

ऊँ अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्चसत्यमित्वमयाऽअसि।

अयानो यज्ञं वहास्ययानो धेहि भेषजं स्वाहा।

(इदमग्नये न मम)

ऊँ ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः

तेभिर्न्नोऽअद्य सवितोतविष्णुर्विश्वे मुंचन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा।

(इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम)

ऊँ उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं व्विमध्यमं श्रथाय।

अथा व्वयमादित्य व्रतेतवानागसो आदितये स्याम स्वाहा।

(इदं वरुणाय न मम)

ऊँ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। ततः संस्रवप्राशनम्। पवित्रप्रतिपत्तिः, प्रणीता विमोकः। ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानम्। तत्र संकल्पः णगणविशेषेण विशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ पूर्वोच्चरित एवं ग्रहगु - गोत्रः शर्माऽहं अमुकराशेः मम पुत्रस्य अन्नप्राशनांगहोमकर्मणः स ादगुण्यार्थं तत्सम्पूर्णफलं प्राप्त्यर्थं च इदं पूर्णपात्रं सद्रव्यं ब्रह्मणे तुभ्यं अहं सम्प्रददे। ब्रह्मा गृहीत्वा अक्रन्कर्मेति मन्त्राशिषं दद्यात्। पूरा मन्त्र अधोलिखित है।

अक्रन्कर्म कर्मकृतः सहव्वाचा मयो भुवा।

देवेभ्यः कर्मकृत्वास्तम्प्रेतसचाभुवः।।

ततः सुलग्ने समागते लग्नदानसंकल्पः अद्य पूर्वोच्चारित एवं ग्रहगुणगणविशेषेण विशिष्टायां - यत्र कुत्रस्थितानाम् शुभपुण्यतिथौ गोत्रः शर्माऽहं अमुकराशेः मम पुत्रस्यान्नप्राशनलग्नात् आदित्यादिनवग्रहाणां दुष्टानां दुष्टफलोपशान्त्यर्थं शुभानां शुभफलाधिक्य प्राप्ृतये इदं सुवर्ण तन्निष्क्रयदक्षिणां वा ज्योतिर्विदे ब्राह्मणाय दास्ये। दक्षिणान्दत्वा सर्वान् रसान् सर्वमन्नं मध्वाज्यसहितम् एकस्मिन् सुवर्णादिपात्रे कृत्वा सुवर्णान्तर्हितयाऽनामिकया मातुः स्वस्य वा उत्संगे स्थितं स्वलंकृतं प्राङ्मुखं बालकं देवतापुरतो हन्तेति मन्त्रेण प्राशयेत्। ''हन्तकारं मनुष्येति श्रुतेः। ततस्तूष्णीं पंचवारं प्राशयेत्। समन्त्रकं प्राशनं विधाय पंचकृत्वः तूष्णीं प्राशयेत् इति जयन्तस्मरणात्। कन्यां तु तूष्णीमेव प्राशयेत्। ततो मत्स्याधारजलाशयोद्धृतजलेन त्रिवारं मुखं शोधयेत्। ततो माता बालकं पुस्तकादिवस्तुमध्ये स्वांकादुत्सृजेत्। तदा स बालको वस्त्रशस्त्र, लेखनी, पुस्तकादिषु यत् प्रथमं गृह्णाति तेन तस्य जीविका भवेदिति ज्ञातव्यम्। ततो दक्षिणा संकल्पः अद्य पूर्वोच्चरित - ग्रहगुणगणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकशर्माऽहं अमुकराशेः मम पुत्रस्य अनृनप्राशनकर्मणः सांगतासिध्यर्थं तत्सम्पूर्णफल्प्राप्त्यर्थं च इमां दक्षिणाम् आचार्याय अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यः अन्येभ्यो नटनर्तकगायकादीनानाथेभ्यश्च विभज्य दास्ये। तथा च यशोपपन्नेनान्नेन दश- यथासंख्यकान् वा ब्राह्मणाँश्च तर्पयिष्ये। दक्षिणां दत्वा अग्न्यादीन्सम्पूज्य विसृज्य रक्षाबन्धनं तिलकाशीर्वादं दिकं च कारयित्वा कर्मेदम् ईश्वरार्पणं कुर्यात्। हस्ते जलमादाय अनेन कर्मांगदेवताः प्रीयन्तां न मम। इस प्रकार यहाँ अन्नप्राशन की विधि पूर्ण हो रही है।

3.5 बोधप्रश्न

क . जन्म से कितने महीने पश्चात् शिशु का अन्नप्राशन होना चाहिए।

ख . स्तन्य शब्द का क्या अर्थ है?

ग आचार्य श्रुत के अनुसार शिशु का आहार कैसा होना चाहिए।

घ. किस शब्द का उच्चारण कर शिशु को भोजन कराया जाता है ?

ङ . तीक्ष्ण बुद्धि के लिए शिशु को क्या खिलाया जाता है?

च. शिशु की वाणी में प्रवाह के लिए गृह्यसूत्र में किस पक्षी का मांस खिलाने का विधान है।

छ. दही चावल किस कामना विशेष के लिए खिलाया जाता है।

ज .उपयमन कुशाओं की संख्या कितनी है?

3.6 सारांश

इस प्रकरण में यहाँ अन्नप्राशन संस्कार का परिचय एवं प्रयोगविधि का ज्ञान आपको कराया गया। प्राचीन काल में अन्नप्राशन संस्कार का महत्व यह था कि शिशु उचित समय पर अपनी से पृथक् कर दिये जाते थे। वे माता पिता के स्वेच्छा (दूध) माता के स्तनचारिता पर नहीं छोड़ दिये गये थे जो प्रायः उनकी पाचन की क्षमता पर बिना ध्यान दिये अतिभोजन द्वारा उनके शरीर विकास में बाधा पहुँचाती है। अन्नप्राशन संस्कार माता को भी यह चेतावनी देता है कि एक निश्चित समय पर शिशु को दूध पिलाना बन्द कर देना चाहिए। अनाड़ी शिशु के प्रति स्नेह के कारण उसे एक वर्ष या उससे भी अधिक समय तक अपना दूध पिलाना बच्चे के एवं माता के स्वास्थ्य के प्रति घोर अन्याय है। माता अपने भी स्वास्थ्य की तथा बच्चे के स्वास्थ्य की भी रक्षा नहीं कर पाती। जिससे शिशु का यथार्थ कल्याण न कर अपनी शक्ति का निरर्थक क्षय करती है। शिशु और माता दोनों के हित के लिए इस संस्कार द्वारा सामयिक चेतावनी दी जाती थी, जो नितान्त उपयोगी थी। इस संस्कार में अन्नप्राशन संस्कार के महत्त्व, कालमुहूर्त, भोजन, कुशकण्डिका एवं उसकी हिन्दी व्याख्या आदि का विधान शास्त्रीय रीति से कराया गया है। इसे मनोयोग पूर्वक देखें।

3.7 शब्दावली

स्थालीपाक - पके हुए चरुरूप द्रव्य

पूर्वाधार संज्ञक आहुति - प्रजापतये स्व, इन्द्राय स्वाहा

आज्य संज्ञक आहुति - अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा

मन्द्रा - माधुर्यपूर्ण

प्राशनान्ते - संस्रव प्राशन के अन्त में

प्राशयेत् - खिलाना चाहिये

उर्ज्जम् - रस

अशीय – प्राप्त करें।

उपैतु - हमें प्राप्त हो।

श्रोत्रेण यशोऽशीय - कानों से यश का आनन्द प्राप्त करूँ।

बोध प्रश्नों के उत्तर

क . शन होना चाहिए। जन्म से छठे मास में

ख. स्तन्य शब्द का अर्थ मॉ का दूध है ।

ग. लघु और सुपाच्य

घ .'हन्त' शब्द का उच्चारण करके शिशु को अन्नप्राशन कराना चाहिए।

ङ. घी और चावल

च. शिशु की वाणी प्रावाह की कामना से भारद्वजी पक्षी के मांस खिलाने का विधान गृह्यसूत्रों में है।

छ. शिशु के दृढ इन्द्रियों की कामना से दही भात खिलाना चाहिये।

ज. 7

3.8 सन्दर्भग्रन्थसूची

ग्रन्थनाम	लेखक	प्रकाशन
हिन्दू संस्कार	डॉ. राजबली पाण्डेय	चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
पारस्करगृह्यसूत्र	आचार्य पारस्कर	चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
वीरमित्रोदय	आचार्य मित्र	चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
मनुस्मृति	आचार्य मनु	श्रीकृष्णदास मुम्बई
भगवन्त भास्कर	श्रीनीलकण्ठ	श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ, नई दिल्ली
मुहूर्तचिन्तामणि	श्रीरामदैवज्ञ	

3.9 दीर्घोत्तरीय प्रश्न

क. कुशकण्डिका विधि का परिचय दीजिये।

ख . अन्नप्राशन के महत्व पर प्रकाश डालिये।

ग. अन्नप्राशन पर निबन्ध लिखिये।

इकाई 4 – चूड़ाकरण संस्कार

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 चूड़ाकरण संस्कार : परिचय एवं प्रयोजन

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में अन्नप्राशन संस्कार के विषय में जानकारी दी गई है, प्रस्तुत इकाई में आप चूड़ाकरण संस्कार की जानकारी प्राप्त करेंगे।

चूड़ाकरण को ही मुण्डन संस्कार भी कहते है । इस संस्कार के अन्तर्गत प्रथम बार शिशु के सिर से केशों को मुण्डन कर हटाया जाता है, इसलिए इसका नाम मुण्डन संस्कार हैं।

प्रमुख षोडश संस्कारों में चूडाकरण संस्कार का भी स्थान आता है। सम्प्रति इस संस्कार को किया जाता हैं। आइए इस इकाई में चूड़ाकरण के विविध रूपों से हम रू – बरू होते हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप चूड़ाकरण संस्कार के विविध रूपों को समझेंगे, एवं आवश्यकतानुरूप दूसरों को भी समझायेंगे। इसके साथ ही अनुष्ठान की विधि भी आपको बताई जायेगी, जिससे इस संस्कार को आप कहीं भी करने एवं कराने में पूर्णरूप से प्रवीण हो जायेंगे।

4.3 चूडाकरण संस्कार : परिचय एवं प्रयोजन

चूड़ाकरण संस्कार को प्रायः लोक में मुण्डन संस्कार के रूप में हम जानते हैं। गृह्यसूत्रों तथा धर्मशास्त्रों के ''अनुसार आयुषे वपामि स्वस्तये'' अर्थात् व्यक्ति के दीर्घायु सौन्दर्य एवं सर्वविध कल्याण प्राप्ति के लिये ही चूडाकरण संस्कार करने का विधान बताया गया है। जैसा कि आपस्तम्बगृह्यसूत्र में भी लिखा है-

तेन ते आयुषे वपामि सुश्लोकाय स्वस्तये।

अर्थात् चूड़ाकरण संस्कार न करने से आयु का ह्रास होता है। अतः प्रत्येक दशा में यह संस्कार करना ही चाहिए। आयुर्वेदिक ग्रन्थों से भी चूडाकरण के इस धर्मशास्त्रोक्त प्रयोजन की पुष्टि होती है। आचार्य सुश्रुत के अनुसार केश नख तथा रोम के अपमार्जन या छेदन से हर्ष, लाघव, सौभाग्य, उत्साह की वृद्धि एवं पाप का उपशमन होता है। जैसा कि -

पापोपशमनं केशनखरोमापमार्जनम्।
हर्षलाघवसौभाग्यकरमुत्साहवर्धनम्।।

आचार्य चरक कहते है कि केश, श्मश्रु, नख आदि काटने से पौष्टिकता, बल, आयुष्य, शुचिता एवं सौन्दर्य की वृद्धि होती है। जैसा कि-

पौष्टिकं वृष्यमायुष्यं शुचिरूपं विराजनम्।
केशश्मश्रुनखादीनां कर्तनं सम्प्रसाधनम्।।

इस प्रकार चूड़ाकरण संस्कार के मूल में स्वास्थ्य तथा सौन्दर्य की भावना ही मुख्य थी। किन्तु कतिपय मानवशास्त्रियों के मत में, मूलतः इस संस्कार का प्रयोजन बलि था, अर्थात् केश काटकर किसी देवता को अर्पित कर दिये जाते थे। परन्तु चूडाकरण संस्कार सम्बन्धित यह अनुमान असत्य है। उपरोक्त बलिरूप प्रयोजन गृह्यसूत्रों एवं स्मृतिग्रन्थों में नहीं देखा जाता है। निःसन्देह आजकल यदा कदा चूडाकरण संस्कार किसी देवता के मन्दिर में सम्पन्न किया जाता है, किन्तु यह बात केवल चूडाकरण संस्कार के ही विषय में नहीं है, अपितु उपनयन आदि संस्कार भी कभी कभी देवालयों में या प्रसिद्ध तीर्थो में सम्पन्न होते हैं। फिर भी केवल उन्हीं शिशुओं का संस्कार किसी देवायतन में किया जाता है, जिनका जन्म दीर्घ निराशा अथवा पूर्वसन्तान की मृत्यु के पश्चात् होता है। अतिरिक्त यह प्रथा अधिक व्यापक भी नहीं है।

संस्कार तथा उसका किसी देवता के लिए अर्पण,इस प्रकार यह चूड़ाकरण, इन दोनों में कोई सहज सम्बन्ध नहीं है। ना ही इस प्रकार के कोई वचन गृह्यसूत्रों में उपलब्ध होते हैं।

मन्त्र इस संस्कार के अवसरपर गृह्यसूत्रों में व्यवहृत सभी, वैदिक साहित्य में उपलब्ध होते हैं। तथा उनसे यह सूचित होता है कि उनका प्रयोजन केशच्छेदन के लिए ही है। मुण्डन के लिए शिर के भिगोने का उल्लेख अथर्ववेद में भी है मुण्डन में व्यवहृत छूरे की स्तुति भी वहॉ की गई है- जैसे-

शिवोनामासिस्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मामाहिं सीः।

निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्यायप्रजननाय रापस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय।।

अर्थात् हे असि क्षुर, तुम्हार नाम शिव है। स्वधिति तेरे पिता है। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। आयुतुम इस शिशु की हिंसा मत करना। अर्थात् इसकी कोई क्षति मत करना, प्रजनन, ऐश्वर्य, धन, पुष्टि, सुसन्तति तथा बलवीर्य की प्राप्ति के लिए इसका चूडाकरण कराया जा रहा है। केशच्छेदन विषयक अन्य अनेक पौराणिक संकेत भी वेदों में मिलते हैं। इस प्रकार यह पूर्णत: संस्कार था। स्पष्ट है कि वैदिक काल में भी चूड़ाकरण एक धार्मिक कृत्य था, जिसमें शिर का भिगोना छूरे की स्तुति, नापित को निमन्त्रण, वैदिक मन्त्रों के साथ केशच्छेदन तथा दीर्घायुष्य के लिए भी कामना की जाती थी।

चूडाकरण संस्कार का समय

हमारे वैदिक गृह्यसूत्रों के अनुसार जन्म के पश्चात् प्रथमवर्ष के अन्त में अथवा तृतीय वर्ष की समाप्ति के पूर्व यह संस्कार सम्पन्न होता है। जैसा कि पारस्करगृह्यसूत्र में भी लिखा है –

सांवत्सरिकस्य चूडाकरणम्। तृतीये वा अप्रतिहते।

प्राचीनतम स्मृतिकार मनु भी यही विधान कहते है।

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः।

प्रथमेब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्।।

परवर्ती लेखक इस काल को पंचम तथा सप्तम वर्ष तक बढ़ा देते है। कतिपय आचार्यो का यथाकुलं च किया जा सकता है।

इसी प्रकार आश्वलायन स्मृति में भी -

तृतीये वत्सरे चौलं कुर्वीतास्योत्तरायणे।

शुक्लपक्षे शुभर्क्षे तु कृत्वाभ्युदयिकं तथा ।।

कुछ आचार्यों के मत में तीन वर्ष, पाँच वर्ष या सात वर्ष के बाद भी यह संस्कार सम्पन्न हो सकता है।

तृतीये पंचमे वाब्दे चौलकर्म प्रशस्यते।

प्राग्वा समे सप्तमे वा सहोपनयनेन वा ।।

संस्कार को सम्पन्न करने के लिए अधिक आयु के विधान की प्रवृत्ति काकारण यह था कि त्रिकाल के पश्चात् उसका प्रयोजन वास्तविक की जगह केवल औपचारिक ही रह गया। व्यवहार में बहुत पहले ही शिशु के केश काट दिये जाते थे, किन्तु इसका सांस्कारिक अनुष्ठान उपनयन तक स्थगित कर दिया जाता था, जबकि यह धर्मशास्त्रों में विहित विधि के अनुसार उपनयन के कुछ क्षण पूर्व सम्पन्न होता था। आजकल साधारणतः इसी प्रथा का अनुसरण किया जाता है। किन्तु धर्मशास्त्र इसकी अपेक्षा कम आयु को प्राथमिकता देते हैं। तथा उसे अधिक पुण्यदायी मानते हैं। महर्षि अत्रि के अनुसार प्रथमवर्ष में चौल संस्कार करने से दीर्घायुष्य तथा ब्रह्मवर्चस् की प्राप्ति होती है। ब्रह्मतेज तृतीय वर्ष में करने से समस्त कामनाओं की पूर्ति होती है। पशु की कामना करने वालो को पॉचवें वर्ष में यह संस्कार करना चाहिए। किन्तु युग्म अथवा सम वर्षों में नहीं करना चाहिए।

तृतीये वर्षे चौले सर्वकामार्थसाधनम्।

संवत्सरे तु चौलेन, आयुष्यं ब्रह्मवर्चसम्।

पंचमे पशुकामस्य युग्मे वर्षे तु गर्हितम्।।

तृतीय वर्ष में सम्पन्न चूडाकरण को सर्वोत्तम कहा गया है। छठे, सातवें में, यह साधारण है। किन्तु दशवें, ग्यारहवें वर्ष में निकृष्टतम कहा गया है।

जन्मतस्तु तृतीयेब्दे श्रेष्ठमिच्छन्ति पण्डिताः।
पंचमे सप्तमे वाऽपि जन्मतो मध्यमं भवेत्।
अधमं गर्भतः स्यात्तु नवमैकादशेपि वा।।

चूडाकरण संस्कार का मुहूर्त

चूड़ाकरण संस्कार- गर्भाधान या जन्म से प्रथम वर्ष या तीसरे वर्ष के पूर्ण होने से पहले विषम वर्ष में दिन को छोड़कर शेष तिथियों को तथा पर्व 16/9/4/12/8/15 में चैत्रमास को छोड़कर उत्तरायण के महीनों में बुध, चन्द्र, शुक्र और गुरु इत्यादि दिनों में लग्न एवं नवमांश, लग्न को छोड़कर शेष लग्नों में मृदुसंज्ञक में अपनी जन्मराशि से या लग्न से अष्टम, चर संज्ञक, लघुसंज्ञक नक्षत्रों में, लग्न से स 3/6/11 में पापग्रह न हो, तो मुण्डन कराना उत्तम होता है। लग्न से केन्द्र में क्षीण चन्द्रमा हो तो मृत्यु, मंगल हो तो शस्त्र से चोट, शनि हो तो पंगु, सूर्य हो तो ज्वर होता है। यदि बुध गुरु और शुक्र केन्द्र में हो तो शुभ होता है।

गर्भवतीमाता के पुत्र का मुण्डन संस्कार

यदि बालक की माता को पाँच मास से अधकि का गर्भ हो तो बालक का मुण्डन शुभ नहीं होता है। यदि बालक 5 वर्ष से अधिक का हो तो माता के गर्भिणी होने पर भी मुण्डन हो सकता है।

धर्मशास्त्रीय मत

स्त्री के पुत्र का मुण्डन तथा उपनयन रजस्वला स्त्री को नहीं करें। ज्येष्ठ लड़के का ज्येष्ठ मास में मुण्डन नहीं करना चाहिए। शनि, भौम, रविवारों को तथा जिस दिन क्षौर कर्म कराये हो उस दिन से नवाँ दिन, सन्ध्या के समय, पर्व तिथि, इन सब में छोड़कर शुभ मुहूर्त में क्षौर)मुण्डन (कराना चाहिये।

शिखा का विधान

चूड़ाकरण का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग शिखा रखना है। जैसा कि स्वयं संस्कार के नाम से सूचित होता है। कुछ आचार्यों के मत में कुल की परम्परा के अनुसार शिखा रखने की व्यवस्था शास्त्रों में विहित है। जैसा कि यथामंगलं हि सर्वेषाम्। यह आचार्य पारस्कर का वचन है। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में 'यथा कुलधर्मं केशवेशान् कारयेत्'।

कुछ शास्त्रत्रों में शिखाओं की संख्या प्रवरों की संख्या पर निर्धारित है। जो तीन या पाँच हो सकती है। जैसे वसिष्ठ के वंशज शिर के मध्यभाग में, केवल एक ही शिखा रखते हैं। अत्रि तथा कश्यप के वंशज, दोनों ओर दो शिखाओं को रखते थे। भृगु के वंशज मुण्डित रहते हैं। अंगिरा के वंशज पाँच शिखाओं को रखते हैं। जैसा कि दक्षिणतः कम्बुजानां वशिष्ठानाम्। उभयतः - अत्रिकश्यपानां, मुंडा भृगवः। पंचचूडा अंगिरसो। वाजसनेयिनामेके मंगलार्थं शिखिनोऽन्ये यथाकुलधर्मम्।

इस प्रकार इन सभी सिद्धान्तों से एक निर्णय अवश्य ग्रहण करना चाहिए कि मुण्डन संस्कार में शिखा अवश्य रखनी चाहिए। (चूडाकरण)

तथा यज्ञोपवीत शिखा अपने विकास के क्रम में हिन्दूओं का एक अनिवार्य चिह्न है। शिखा द्विजों के अनिवार्य चिन्ह हैं। शिखा तथा यज्ञोपवीत न ध (जनेऊ)ारण करने वाला व्यक्ति धार्मिक संस्कारों का पुण्य प्राप्त नहीं कर पाता है अर्थात् उसे धार्मिक कृत्य करने का अधिकार नहीं है। अज्ञातरूप में भी शिखा काटने वाले व्यक्ति को प्रायश्चित का विधान शास्त्रों में बताया गया है।

शिखां छिन्दन्ति यो मोहात् द्वेषादज्ञानतोऽपि वा।

तप्त कृच्छ्रेण शुध्यन्ति त्रयोवर्णा द्विजातयः।।

आधुनिक काल में शिखा रखने की प्रथा महान संकट काल से गुजर रही है। अंग्रेजी शिक्षा के कारण इस विधा का त्याग किया जा रहा है। कुछ सीमित लोग ही अब इस परिपाटी का पालन करते है।

दीर्घायुष्य के साथ शिखा का सम्बन्ध

दीर्घ जीवन और चूडाकरण के मध्य कोई सम्बन्ध है? इस पर आचार्य सुश्रुत इन दोनों के सम्बन्ध को बताने में हमारी सहायता करते हैं। इनके मत में मस्तक के भीतर ऊपर की ओर शिरा तथा सन्धि का सन्निपात है। वही रोमावर्त के अधिपति है। इस अंग को किसी भी प्रकार का आघात लगने पर तत्काल ही मृत्यु हो जाती है। अतः इस महत्त्वपूर्ण अंग की सुरक्षा आवश्यक मानी जाती थी तथा उसी अंग पर शिखा रखने से इस प्रयोजन की पूर्ति होती है। 'मस्तकाभ्यन्तरोपरिष्टात् शिरा सम्बन्ध सन्निपातो रोमावर्तोऽधिपतिस्तत्रापि ताडनेन सद्योमरणम्, गर्भस्थानत्वात्' । चीनी तथा तिब्बती लोग इस समय भी अपने शिर पर केशों के गुच्छे रखते हैं।

संस्कार की संक्षिप्त विधि

यहां संक्षेप में यह विधि दी जा रही है, इसके बाद शास्त्रीय प्रयोग दिया जायेगा। यह विधि मात्र सामान्य ज्ञान की दृष्टि से यहाँ प्रस्तुत है।

चूड़ाकरण संस्कार के लिए एक शुभ दिन एवं मुहूर्त, आचार्य से निश्चित कराने के बाद प्रारम्भ में स्वस्तिवाचन पूर्वक संकल्प करके पंचांग पूजन करना चाहिए। इसके बाद ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इसके पश्चात् शिशु को लेकर माता उसे स्नान कराती है। उसे एक ऐसे वस्त्र से ढकती है जो अहत हो अर्थात् कभी प्रयोग में न लिया गया हो। इसके साथ ही उसे अपनी गोद में बिठाकर यज्ञीय अग्नि के पश्चिम की ओर बैठ जाती है। उसे पकड़ते हुए पिता घी की आहुतियाँ प्रदान करता है। दो प्रकार के जल गर्म एवं ठण्ढा, जिसमें उष्ण जल को ठंढे जल में छोड़ता है। यहाँ (गर्म) का पाठ होता है। मन्त मन्त्रों्र का भावार्थ यह है कि हे वायुहे अदिति !, उष्ण जल के साथ यहाँ आओ तथा केशों का छेदन करो। वह मक्खन या दही का कुछ भाग पानी के साथ मिलाकर (पिता) शिशु के दाहिने कान की ओर के केशों को इन शब्दों के साथ भिगोता है। सविता की प्रेरणा से यह दिव्य जल तेरी देह को शुद्धकरें, जिससे तू दीर्घायुष्य तथा तेज को प्राप्त करो। शाही के उस काँटे से जिस पर दो सफेद बिन्दू होते हैं, केशों को विकीर्ण करके उसमें तीन कुशपंक्तियों को रखकर कहता है। हे कुशशिशु की रक्षा करो !, उसे पीड़ा न पहुचाओ। इस वचन के साथ कुशाओं को रखता है। इसके बाद पिता क्षुर की प्रार्थना करता है तुम नाम से शिव हो -, स्वधिति तेरा पिता है, तुम्हे मैं नमस्कार करता हूँ। तू इस शिशु की हिंसा न करो। इस मन्त्र के साथ अपने हाथ में एक लोहे का उस्तरा उठाता है और मैं आयुष्य प्रजनन धन एवं पुष्टि के लिए केशों को काटता (संततिवृद्धि)हूँ। इस मन्त्र के साथ केशों का छेदन करता है। वह क्षुर जिससे विद्वान्सोम तथा वरुण का -सविता ने राजा- क्षौर किया था, हे ब्रह्मन्दीर्घायुष्य तथा वृद्धावस्था की प्राप्ति के लिए छुरे से इसका मुण्डन करो। !

केशों के साथ ही कुश की पत्तियों का भी छेदन कर वह उन्हेंबैल के गोबर के पिण्ड पर छोड़ देता है, जो अग्नि के उत्तर में रखा रहता है। इसी प्रकार केशों की दो अन्य लटें भी मौनपूर्वक काट दी जाती है। इसके पश्चात् प्रार्थना के मन्त्र बोले जाते हैं जिसमें कि तू बलवान हो, स्वर्ग को प्राप्त करो, दीर्घकाल तक सूर्य का दर्शन करो। आयुष्य, सत्ता, दीप्ति, कल्याण के लिए मैं तेरा मुण्डन करता हूँ। इस मन्त्र के साथ बायीं ओर के केशों का छेदन करता है।

जब नापित सुन्दर आकृति वाले छुरे से शिशु के शिर का मुण्डन करता है उस समय, कहता है कि इसके शिर को शुद्ध करो, किन्तु इसके जीवन को नष्ट मत करो, इस मंत्र के साथ पिता बायीं से दाहिनी ओर तक तीन बार बिना आघात पहुँचाये उसका मुण्डन कर, इन शब्दों के साथ क्षुर (छुरा) नापित को दे देता है। शिर के ऊपर केशों के अवशिष्ट गुच्छे कुलपरम्परा के अनुसार कहीं कहीं व्यवस्थित किया जाता है। अन्त में केशों के साथ ही वह गोमय पिण्ड भी गोशाला में मिट्टी खोदकर जमीन के नीचे स्थापित कर दिया जाता है या किसी छोटे तालाब आदि में बहा दिया जाता है। आचार्य एवं नापित को दक्षिणा आदि देकर यह संस्कार पूर्ण किया जाता है।

चूडाकरण प्रयोगविधि में कुछ आवश्यक नियम

चूडाकर्म के दिन बालक का पिता प्रातःकाल उठकर अपना नित्यकर्म समाप्त कर गीतवाद्य सहित पश्चिम द्वार के मण्डप में प्रवेश करें। वहाँ नवग्रहयाग की सिद्धि के लिए आसन पर बैठकर - आचमन तथा प्राणायाम करें। इसके बाद प्रधान संकल्प करें। यहाँ यह अवश्य ध्यान देना चाहिए इसके पहले ही पंचांग पूजन आदि कर लेना चाहिए । दूसरी बात, यह है कि यह कर्म उपनयन के समय में भी होता है। अतः जहाँ जैसी व्यवस्था या कुलधर्म हो वहाँ उस तरह से आचार्य को सम्पन्न कराना चाहिए । एक उदाहरण के लिए किसी स्थान विशेष में कुलाचार के अनुसार दो पोटली बनाकर एक छूरे में तथा एक शाहिल के काँटे में बाँध दे। फिर बोले ऊँ भूर्भुवः स्वः चूडाकर्मजूटिकाः सुप्रतिष्ठिताः वरदाः भवन्तु। इस मन्त्र को पढकर ताम्रपात्र या कांस्यपात्र में स्थापित करें। बैल का गोमय नवनीत घृत, दधि ताम्रपात्र, छुरा, तीन वेणी वाला शाही का काँटा, तीन कुशाओं की पवित्री, त्रिगुणित कच्चा सूत, नव कुशा। यह पहले दिन का कृत्य है। यदि आचार्य उचित समझे तो करें अन्यथा एकदिवसीय ही करें।

- अव संकल्प के अवसर पर मुख्यरूप से यही अंश जोड़ा जायेगा''करिष्यमाण चूडाकरण कर्मणि निर्विघ्नता प्राप्तये पूर्वांगत्वेन पंचांग पूजनं करिष्ये''। पंचांग पूजन का तात्पर्य गणेशपूजन से लेकर आचार्यवरण तक का कृत्य। इसके बाद तीन ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा देना चाहिए। उसके बाद आचार्य चूडाकरण वेदी के ऊपर पंचभूसंस्कार पूर्वक अग्निस्थापन करें। इस अवसर पर

माता कुमार को मंगल द्रव्यों से स्नान कराकर, वस्त्र पहनाकर स्वयं नवीन वस्त्र धारणकर कुमार को गोद में लेकर मंगलगीत पूर्वक पश्चिमद्वार से मण्डप में प्रवेश करें। अग्नि के पश्चिम में पति के वाम भाग में बैठे। पिता कुशकण्डिका सम्पन्न कर चूडाकरण के लिए आवश्यक सामग्रियों का आसादन करें। एक पात्र में शीतल जल, एक पात्र में उष्णजल, नवनीत पिण्ड, घृत पिण्ड दधि पिण्ड, शाहिल के काँटे, तीन तीन सूत्रों में आवेष्टित करें। छुर ताम्रमय कुशाओं को 27, बैल का गोबर, और नापित सभ्य नामक अग्नि का पूजन कर आधाराज्यभाग का हवन करें। आवश्यक होम के बाद स्विष्टकृत् होम करें। शीतल जल में गर्म जल मिलाकर 'उष्णेन वाय उदकेनेह्यदिते केशान् वप' इस मंत्र को पढ़कर उस जल में नवनीत या दधिपिण्ड डाले। इसके बाद दाहिने भाग के बालों को सर्वप्रथम सिंचित कर -''ॐ प्रसूता दैत्या आप उन्दन्तु ते तनुम्। दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे' इसका उच्चारण कर शाहिल के काँटों से केशों को अलग कर दें। उन केशों में कुशों को लगावें। 'स्वधिते मैनं हिंसीः' इस मन्त्र से तरुणकुशसहित केशों को पकड़कर दाहिने हाथ से छुरा लेकर ''ॐ शिवोनामासिस्वधितिस्ते पिता नमस्ते ऽ अस्तु मामाहिंसीः'' इस मंत्र से केशों को काटे एवं एक जगह काटकर रखें। 'निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननायरायस्पोषाय सप्रजास्त्वायसुवीर्याय' इस मन्त्र से केशों का छेदन करे। छेदन कर उत्तर की ओर रखे हुए बैल के गोबर पर रखते हैं। कहीं कहीं लोकाचार बस बुआ आदि में अपने आँचल में रखती है। पिता पहले माता को देता है, फिर माता गोबर पर रख देती है। उसी प्रकार 'त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपश्य' इत्यादि मंत्र को पढ़कर दो बार और छुरे से केशवपन करते हैं। तीन बार छुरे से शिर की प्रदक्षिणा करते हैं। एक बार मंत्र से दो बार मौन होकर 'ॐ यत्क्षुरेण मज्जयता सुपेशसा .....'। शेष जल से समस्त शिर को गीला कर अच्छी तरह केशों का वपन करते हैं। 'ॐ अक्षुण्णं परिवप'- ऐसा कहने पर नापित बोलता है परिवपामि। शिखा रहित ही वपन करना चाहिए। केशों को नदी के तट पर या गौशाला में भूमि के नीचे गाड़ देना चाहिए। बालक को स्नान कराकर पुष्पमाला से अलंकृत करके आचार्य के समीप लाते हैं। अग्नि के पश्चिम तरफ उसे बिठाकर आचार्य होने के लिए वचन देता है।

स्कार सम्पन्न करना चाहिए। यहाँ पर कुछ हिन्दी एवं संस्कृत होने इस प्रकार चूडाकरण सं तथा पूरे मन्त्र न होने से कुछ असुविधा आपको हो रही है इसे देखते हुए शुद्ध संस्कृत में प्रयोग विधि आपकी सुविधा के लिए यहाँ प्रस्तुत है। जिसमें हिन्दी नहीं है साथ ही सारे मन्त्र एवं विधि एक ही जगह है जिसे करने कराने में आपको सहायता मिलेगी।

आचम्य प्राणानायम्य मंगलमन्त्रादि पठित्वा हस्ते जलमादाय संकल्पं कुर्यात् आचमन प्राणायाम) -
(करके मंगल मन्त्रों का पाठ कर हाथ में जल लेकर संकल्प करें

संकल्पः जल) -, अक्षत, सोपाड़ी, द्रव्य लेकर संकल्प करें(-

ऊँ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणोह्नि द्वितीये परार्द्धे श्रीश्वेतवराहकल्पे वैवश्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तरगते क्षेत्रो आनन्दवने गौरीमुखे त्रिकण्टकः अविमुक्तवाराणसी) विराजिते भागीरथ्याः उत्तरे पश्चिमे तीरेइन्द्रप्रस्थ क्षेत्रे देहलीनगरे यमुनानद्याः तटे विक्रमशके (बौद्धावतारे अमुकनामसंवत्सरे श्रीसूर्ये अमुकायने अमुकऋतौ महामांगल्यप्रदमासोत्तमे मासे सरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवा अमुकराशिस्थिते श्रीचन्द्रे अमुकराशिस्थिते श्रीसूर्ये अमुकराशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथायथा - राशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुणगण विशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रः अमुकशर्माहं रस्य नियतकालातिक्रमदोषप्रत्यवायपरिहारार्थं अर्धकृच्छरूपं मम अमुकशर्मणः सुतस्य चौलसंस्का प्रायश्चित्तं रजतप्रत्याम्नायद्वाराऽहमाचरिष्ये।

अनेन अर्धकृच्छरूपप्रायश्चित्तकृतेन मम, अमुकशर्मणः सुतस्य चौलकर्मनियतकालातिक्रमदोषनिवृत्तिपूर्वकं चौलसंस्कारकर्मण्यधिकारसिद्धिरस्तु।

मम अस्य शिशोः चौलसंस्कार कर्मण्यधिकारार्थे सूत्रोक्तान् ......अद्येत्यादि त्रिभ्योऽधिकान् ब्राह्मणान् यथाकाले यथासम्पन्नेनाहं भोजयिष्ये।

मम सुतस्य बीजगर्भसमु ....अद्येत्यादिद्भवैनोनिबर्हणेन बलायुर्वर्च्चाभिवृद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वर प्रीत्यर्थं चौलसंस्काराख्यं कर्म करिष्ये।

तदंगत्वेन पंचांगपूजनं करिष्ये। महागणपतये नमः इति मंत्रेण षोडशोपचारैः पूजनं कुर्यात्।

ऊँ गणानान्त्वा इति मन्त्रेण सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि इति पूजनम्। ततः वाससी परिधाप्यांके स्थण्डिले पंचभूसंस्कारपूर्वकं सभ्यनामाग्नेः स्थापनं कुर्यात्। माता कुमारं आदाय माता कुमार को नवीन) आधाय पश्चादग्नेरुपविशति। वस्त्र पहनाकर अपने गोद में लेकर अग्नि के पश्चिम में बैठे(

ततो दक्षिणतो ब्रह्मासनादि चरुवर्जं पात्रासादनान्तं कुर्यात्। उपकल्पनीयानि द्रव्याणि शीतोदकम्। - ण्डो वा। त्र्येणी शलली। साग्राणिसप्तविंशतिकुशतरुणानि। उष्णोदकम्। नवनीतपिण्डो घृतपिण्डो दधिपि ताम्रपरिष्कृतआयसः क्षुरः। आनडुहगोमयपिण्डः। नापितः। वरश्चेति। पवित्रीकरणादि पवित्रयोः - ऊँ) प्रणीतासु निधानम्। दक्षिणं जान्वाच्यं ब्रह्मान्वारब्धः आघारावाज्यभागौ स्रुवेण होमं कुर्यात्। तूष्णीं त्यागः। इदं प्रजापतये न मम। ऊँ इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्र (स्वाहा प्रजापतयोय न मम। ऊँ अग्नये स्वाहा। इदमग्नये न मम। ऊँ सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय न मम। हस्ते अक्षतान् गृहीत्वा अग्ने नय

सुपथा रायेक्षतपुष्पाणि इति मंत्रं पठित्वा। ऊँ सभ्य नामाग्नये वैश्वानराय नमः सर्वोपचारार्थे गंधा . समर्पयामि। ऊँ भूः स्वाहा। इदमग्नये मम। ऊँ भुवः स्वाहा। इदं वायवे न मम।। ऊँ स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय न मम। ऊँ त्वन्नो ऽ अग्ने व्वरुणस्यव्विद्वान् देवस्य हेडोऽअवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठोव्वन्हितमः शोशुचानोविश्वाद्वेषां सि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा। इदमग्नीवरुणाभ्यां न मम। ऊँ अयाश्चाग्नेस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्वमया ऽअसि। अयानो यज्ञं वहास्ययानोधेहि भेषजं स्वाहा। इदमग्नये अयसे न मम। ऊँ ये ते शतं वरुणं ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। ते भिर्न्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वेमुंचन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यश्च न मम। ऊँ उदुत्तमं व्वरुणपाशमस्मदवाधमं व्विमध्यंश्रथाय। अथाव्वयमादित्यव्रते त्वानागसोऽअदितये स्याम स्वाहा। इदं वरुणायादित्यायादितये न मम। ऊँ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते न मम। संस्रवप्राशनम्। आचमनम्। पवित्राभ्यां मार्जनम्। ऊँ सुमित्रिया नऽआप ओषधयः सन्तु। इति मन्त्रेण पवित्रे गृहीत्वा प्रणीताजलेन शिरः सम्मृज्य। अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः। ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानम्।

वरः। प्रतिगृह्यताम्। पश्चिमे प्रणीता विमोकः। आपः शिवाः। ततो अद्य ब्रह्मन् अयं तेेत्यादि . अस्य कुमारस्य चूडाकर्मकर्तुमधिकारार्थं दक्षिणगोदानं मुण्डनं च करिष्ये। ततो एकस्मिन् पात्रे ऊँ उष्णेन वाय (एक पात्र में शीतल एवं उष्ण जल मिलावें) शीतास्वप्सूष्णाऽअप आसिंचति। दिते केशान्वप।उदकेनेह्य

पिण्डं घृतपिण्डं दधिपिण्डं वा प्राश्य-अथात्र नवीतति। ततः उदकमादाय दक्षिणगोदानमुदन्ति ऊँ सवित्राप्रसूतादेव्या ऽआपऽउन्दन्तुतेतनूम्। दीर्घायुत्वायबलायवर्चसे। -

त्रीणि (तीनों काटों से केशों का विनयन करें) ततस्त्रेय्ण्या शलल्या केशान् विनीय ऊँ (इस मन्त्र से लोहे का क्षुरा लें) तरुणान्यतर्दधातिकुश शिवोनामेतिलोहक्षुरमादधातिस्तेपितानामस्तेऽअस्तुमामाहिं सीः। निवर्तयामीति मन्त्रेण केश कुश क्षुरसंलग्नीकरणम् (इस मन्त्र से केश कुश और क्षुरे को एकत्रित करें) ऊँ - छेदनमंत्रः - यसुप्प्रजास्त्वायसुवीर्याय। ततः छेदनम्निवर्त्तयाम्यायुषेन्नाद्यायप्प्रजननायरायस्पोषा येनावपत्सविताक्षुरेणसोमस्यराज्ञोव्वरुणस्यव्विद्वान्। तेन ब्रह्मणो वपते दमस्यायुष्यंजरदष्टिर्यथासम्। अनेन सकेशानि कुशतरुणानि प्रच्छिद्यानडुहे गोमयपिण्डे प्राश्यत्यग्नेरुत्तरतो ध्रियमाणे। एवं द्विरपरं तूष्णीं तद्यथा उन्दनम्। विनयनम्। त्रिकुशतरुणान्तर्धानम्। क्षुरग्रहणम्। संलग्नीकरणम्। छेदनम्। आनडुहेगोमयपिण्डे प्राशनम्। पुनः उन्दनम्। विनयनम्। त्रिकुशतरुणान्तर्धानम्। क्षुरग्रहणम्। त्रिकुशतरुणान्तर्धानम्। क्षुरग्रहणम्। संलग्नीकरणम्। छेदनम्। आनडुहेहगोमयपिण्डे प्राशनम्। पुनः

उन्दनम्। विनयनम्। त्रिकुशतरुणान्तर्धानम्। क्षुरग्रहणम्। संलग्नीकरणम्। छेदनम्। आनडुहेगोमयपिण्डे प्राशनम्। इति दक्षिणगोदानम्। पुनर्जलमादाय अस्य कुमारस्य चुडाकर्मकर्तुमधिकारार्थमुत्तरगोदानं -मुण्डनं च करिष्ये। उन्‍्दनम् प्रसूतादैव्याऽआपऽउदन -तनूम् दीर्घायुत्वायबलायवर्चसे।

त्रीणि (तीनों काटों से केशों का विनयन करें) ततस्त्रयेण्या शलल्या केशान् विनीय इस मन्त्र से) कुशतरुणान्यंतदर्धाति। ओषधेत्रायस्वस्वधिते मैनं हि सीः शिवोनामेतिलोहक्षुरमादधाति। ऽअस्तुमामाहि सीः। इति ऊँ शिवोनामाशिस्वधितिस्तेपिनमस्ते (लोहे का क्षुरा लें लौहक्षुरमादायनिवर्त्तयाम्यायुषेन्नाद्यायप्प्रजननायरायस्पोषायसुप्प्रजास्त्वायसुवीर्याय। इति लौहक्षुरं केशानामुपरि निधाय केश छेदनेमन्त्रविशेषः। ऊँ त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्श्यस्यत्र्यायुषम्। यद्देवेषुत्र्यायुषन्तन्नोऽअस्तुत्र्यायुषम्। एवं तूष्णीं वारद्वयम्। यथा उन्दनम्। त्रिकुशतरुणान्तर्धानम्। क्षुरग्रहणम्। संलग्नीकरणम् छेदनम्। आनडुहेगोमयपिण्डे निधानम्। पुनः इति पश्चिमगोदानम्। पुनर्जलमादाय अस्य कुमारस्य चूडाकर्मकर्तुमधिकारार्थमुत्तरगोदानं मुण्डनं च करिष्ये। उन्दनम् -न्दन्तुतेतनूम् दीर्घायुत्वायबलायवर्चसे।प्रसूतादैव्याऽआपऽउ

ततस्त्र्येण्या शलल्या केशान् विनीय त्रीणि (तीनों काटों से केशों का विनयन करें) कुशतरुणान्यंतदर्धाति। ओषधेत्रायस्वस्वधिते मैन हि सीः। शिवोनामशिस्वाधितिस्तेपितानमस्ते ऽअस्तुमामहि सीः। इति लौहक्षुरमादाय षेन्नाद्यायप्प्रजननायरायस्पोषायसुप्प्रजास्त्वायसुवीर्याय। इति लनिवर्त्तयाम्यायुौहक्षुरं केशानामुपरि निधाय केश छेदनेमन्त्रविशेषः। ऊँ येनभूरिश्चरादिवंज्योक्चपश्चाद्धिसूर्यम्। तेन ते वपामिब्रह्मणाजीवातेजीवनायसुश्लोकायस्वस्तये। इति छेदनम्। गोमयपिण्डेप्राशनम्। एवं तूष्णीं द्विरपरम्। यथा उन्दनम्। विनयनम्। त्रिकुशतरुणान्तर्धानम्। क्षुरग्र -हणम्। संलग्नीकरणम्। छेदनम्। आनडुहेगोमयपिण्डे प्राशनम्। इति उत्तरगोदानम्। ततस्त्रिः क्षुरेण शिरः प्रदक्षिणं परिहरति। ऊँ यत्क्षुरेणमज्यजासुपेशसावप्तावपति केशांछिन्धिशिरोमास्यायुः प्रमोषीः। इति सकृन्मन्त्रेण द्विस्तूष्णीम्। ततस्तेनैवोदकेन सर्वं शिरं आर्द्रं कृत्वा क्षुरं नापिताय प्रयच्छति। अक्षण्वन्परिवप। वपामीति नापितो ब्रूयात्। नापितः उदंगमुखस्थितस्य कुमारस्य प्राक्संस्थं प्रांगमुखस्थितस्योदक्संस्थं केशवपनं कुर्यात्। कुलव्यवस्थया शिखास्थापनं केशशेषं करोति। ततः सर्वान् केशान् गोमयपिण्डे वस्त्रादिनावेष्ट्य अनुगुप्तं कृत्वा गवां गोष्ठे स्थापयेत् अथवा तडागे जलमध्ये वा क्षिपेत्। ततः कुमारं स्नापयित्वा मस्तके स्वस्तिकं तथा च ललाटे तिलकं कुर्यात् कुल व्यवस्था के अनुसार शिखा स्थापित करना चाहिए।) द सभी केशों को गोमय पिण्ड में रखकर वस्त्र से आवेष्टित करके गोशालाउसके बा तडाग या जल के बीच में रखना चाहिए। उसके बाद कुमार को स्नान करवाकर उसके मस्तक या ललाट में तिलक

लगाना चाहिएकृतस्य चौलाख्यस्य (हाथ में जल लेकर) आचार्याय वरं ददाति। हस्ते जलमादाय (दध्यर्थं स्मुत्युक्तान् दशसंख्याकान् ब्राह्मान् भोजयिष्ये। तेनकर्मणः सांगतासिश्रीकर्मांगदेवताः प्रीयन्ताम्। लम्बोदर नमस्तुभ्यं। यथा शक्त्या चौलसंस्कारविधेः परिपूर्णताऽस्तु। अस्तु परिपूर्णः। हस्ते . जलमादाय, अनेन चौलाख्येन कर्मणा कर्माङ्गदेवता प्रीयताम्, न मम।

बोधप्रश्न

क. पारस्करगृह्सूत्र के अनुसार केशान्त संस्कार कब होता है।

ख. चूडाकरण में कितने ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये।

ग. नित्य आहुतियों की संख्या कितनी है?

घ. चूड़ाकरण संस्कार का प्रयोजन क्या है।

ङ. तीसरे वर्ष में चौलकर्म का क्या फल है।

च. चौल एंव चूड़ाकरण में क्या अन्तर है ।

4.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में चूड़ाकरण संस्कार या चौलसंस्कार का व्यवस्थित परिचय आपके सामने रखा गया। इस क्रम में सबसे पहले चूडाकरण का प्रयोजन एवं आयुर्वेद आदि के दृष्टि से भी इस संस्कार का फल क्या है? इस पर विचार रखा गया। इसके बाद इस संस्कार का काल, मुहूर्त, निषेध आदि विषयों पर भी धर्मशास्त्रीय मत के अनुसार प्रकाश डाला गया। दीर्घायुष्य के साथ शिखा का सम्बन्ध कैसे है, इस पर भी विचार किया गया। इसके साथ ही इसकी प्रयोग विधि हिन्दी अनुवाद के साथ एवं स्वतन्त्ररूप से भी प्रयोग कराने की दृष्टि से इसमें प्रस्तुत किया गया है। इसी के साथ यह चूडाकरण संस्कार सम्पन्न होता है।

4.5 शब्दावली

शीतास्वप्सु – जल में ठण्ढे

निधाय - रखकर

गोष्ठे – गोशाला में

परिधाप्य - धारण कर

वपेत् - क्षौर कर्म करें।

नवनीत पिण्ड - मक्खन का गोला

भोजयित्वा - भोजन कराकर

उत्संगे - गोद में

स्नापयित्वा - स्नान कराकर

आयसः -क्षुर

उन्दति - गीला करता है।

आनडुह – बैल

4.6 बोध प्रश्न के उत्तर

क. 16 वें वर्ष में किशोर का केशान्त संस्कार किया जाता है।

ख. चूड़ाकरण में तीन ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है ।

ग. नित्य आहुतियों की संख्या 16 है ।

घ. चूड़ाकरण संस्कार का प्रयोजन कुमार का दीर्घायु, सौन्दर्य एवं कल्याण की प्राप्ति है।

ङ. तीसरे वर्ष में बालक का चूड़ाकरण करने से सभी कार्यों की सिद्धि हो जाती है।

च. चौल एवं चूड़ाकरण में कोई भेद नहीं है – चूड़ाकरण को ही चौल कहते हैं।

4.7 सन्दर्भग्रन्थ सूची

पारस्कर गृह्यसूत्र - द्वितीय काण्ड

संस्कारदीपक – श्री नित्यानन्द पर्वतीय

हिन्दू संस्कार - डॉ . राजबली पाण्डेय

कर्मसमुच्चय - रामजीलाल शास्त्री

4.8 दीर्घोत्तरीय प्रश्न

क. चूड़ाकरण संस्कार विधि लिखिए।

ख. चूड़ाकरण मुहूर्त्त को समझाते हुए उसके महत्व का निरूपण कीजिये।

ग. कर्मकाण्ड में चौल संस्कार की उपयोगिता पर प्रकाश डालें।

घ. आधुनिक युग में चौल संस्कार की क्या आवश्यकता है।

खण्ड – 2
संस्कार विधान (ख)

इकाई – 1 अक्षराम्भ संस्कार

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 अक्षराम्भ संस्कार

बोध प्रश्न

1.4 सारांश

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAKA(N)- 202 के द्वितीय खण्ड की पहली इकाई 'अक्षराम्भ संस्कार' से सम्बन्धित है। इस इकाई से पूर्व की इकाई में आपने विभिन्न संस्कारों के अन्तर्गत अन्नप्राशन एवं चूड़ाकरण संस्कार का ज्ञान कर लिया है। उसी क्रम में प्रस्तुत इकाई में आप अक्षराम्भ संस्कार का ज्ञान करेंगे।

अक्षराम्भ संस्कार से तात्पर्य है - शिशु को विद्यारम्भ करने से पूर्व उसे अक्षराम्भ संस्कार कराया जाता है। अक्षरों का ज्ञान कर ही वह विद्यारम्भ की ओर अग्रसर होता है।

प्रस्तुत इकाई में अक्षराम्भ से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन आप करेंगे जो कि वर्तमान समाज के लोगों के लिए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- अक्षराम्भ को समझा सकेंगे।
- अक्षराम्भ को परिभाषित कर सकेंगे।
- अक्षराम्भ मुहूर्त्त की जानकारी प्राप्त कर लेंगे।
- अक्षराम्भ संस्कार के महत्व निरूपण कर सकेंगे।
- अक्षराम्भ के आवश्यक तत्वों को समझ लेंगे।

1.3 अक्षराम्भ संस्कार

संस्कारों के क्रम में अन्नप्राशन एवं चूड़ाकरण के पश्चात् विद्यारम्भ करने हेतु प्रथमतया अक्षराम्भ संस्कार करने की परम्परा है। इस संस्कार में बालक को प्रथमतया अक्षर से परिचित कराया जाता हैं, इसीलिए इसका नामकरण आचार्यों ने अक्षराम्भ संस्कार किया।

आचार्य रामदैवज्ञ जी लिखते है कि –

गणेश – विष्णु वाग्रमा: प्रपूज्य पंचमाब्दके।
तिथौ शिवार्कदिग्द्विषटशरत्रिके रवावुदक्।।
लघुश्रवोऽनिलान्त्यभादितीशतक्षमित्रभे।
चरोनसत्तनौ शिशोर्लिपिग्रह: सतां दिने।।

अर्थात् गणेश, विष्णु, सरस्वती और लक्ष्मी का विधिवत् पूजन कर पॉचवें वर्ष में, एकादशी, द्वादशी,

दशमी, द्वितीया, षष्ठी, पंचमी एवं तृतीया तिथियों में सूर्य के उत्तरायण रहने पर, लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्) , श्रवण, स्वाती, रेवती, पुनर्वसु, आर्द्रा, चित्रा तथा अनुराधा नक्षत्रों में चर लग्नों (१,४,७,१०) को छोड़कर , शुभग्रहों के लग्नों में २,३,४,६,७,९,१२ में शुभ ग्रहों के सोमवार, बुधवार गुरूवार और शुक्रवारों में बालकों को अक्षराम्भ कराना चाहिये।

इस प्रकार शास्त्रोक्त मुहूर्त्त में श्रीगणेश, विष्णु, सरस्वती तथा लक्ष्मी जी की पूजा करके बालक का अक्षराम्भ कराना चाहिये। इनके मत में अक्षराम्भ के लिये निम्नलिखित वर्ष, मास, तिथि, वार दिन, नक्षत्र एवं लग्न प्रशस्त माने गये हैं।

प्रशस्त वर्ष – जन्म से अथवा गर्भाधान से पॉचवॉ वर्ष अक्षराम्भ के लिए प्रशस्त माना गया है।

प्रशस्त मास - उत्तरायण सूर्य में, अर्थात् चैत्र को छोड़कर माघ आदि छ: (माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़) इन पॉच मासों के अन्दर अक्षराम्भ प्रशस्त माना गया है।

चूड़ाकरण संस्कार की भॉति सौरमास के अनुसार ही मास गणना करनी चाहिये , न कि चान्द्र मास के अनुसार। आषाढ़शुक्ल एकादशी के बाद कार्तिक शुक्ल एकादशी पर्यन्त हरिशयन होने के कारण चूड़ाकरण की भॉति अक्षराम्म्भ - विद्यारम्भ का भी मुहूर्त्त निकालना चाहिए ।

शुभ पक्ष - अक्षराम्भ शुक्ल पक्ष में शुभ माना जाना है। कृष्ण पक्ष में यदि करना हो तो प्रतिपदा से पंचमी तिथि तक यह श्रेयस्कर माना जाता है।

शुभ तिथियॉ - द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी,एकादशी एवं द्वादशी (2,3,5,6,7,10,11,12) तिथियों को अक्षराम्भ में प्रशस्त माना गया है।

शुभ नक्षत्र - अश्विनी, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण एवं रेती इन 10 नक्षत्रों में अक्षराम्भ प्रशस्त माना गया है।

शुभ वार - सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र वारों में अक्षराम्भ प्रशस्त माना गया है।

प्रशस्त लग्न एवं नवांश- वृष मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन 2,3,6,9,12 इन पॉच लग्नों में या इनके नवमांश में अक्षराम्भ प्रशस्त माना गया है।

त्याज्य समय - हरिशयन, संक्रान्ति, मासान्त, गुरू – शुक्र के अस्त, बाल,वृद्ध, गुरू के अतिचार, सिंह मकराश्यंसस्थ गुरू, गुर्वादित्ययोग इन समयों में अक्षराम्भ नहीं करना चाहिये।

अक्षराम्भ संस्कार को अच्छी तरह से समझने के लिए आप निम्न सारिणी का भी प्रयोग कर सकते हैं –

वर्ष	पॉचवॉ
मास	माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़

पक्ष	शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष में प्रतिपदा से पंचमी तिथि पर्यन्त
तिथियॉ	2, 3, 5, 6, 7, 10, 11, 12
वार	सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र
नक्षत्र	अश्विनी, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण एवं रेवती
लग्न	वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन
अन्य त्याज्य समय	हरिशयन, संक्रान्ति, मासान्त, गुरू – शुकास्त, बाल, वृद्ध के अतिचार, सिंह मकराश्यंशस्थ गुरू, गुर्वादित्य योग

उपर्युक्त सारिणी के आधार पर आप अक्षराम्भ संस्कार कर्म कर सकते हैं। स्मरण करने हेतु भी यह चार्ट आपके लिए सुविधाजनक होगा।

विद्यारम्भ –

अक्षराम्भ के साथ विद्यारम्भ को भी जानना चाहिए। आचार्य रामदैवज्ञ जी संस्कार प्रकरण में विद्यारम्भ मुहूर्त्त को बताते हुए कहा है कि –

मृगात्कराच्छुतेस्त्रयेऽश्विमूलपूर्विकात्रये ।
गुरूद्वयेऽर्कजीववित्सितेऽह्नि षट्शरत्रिके॥
शिवार्कदिगद्विके तिथौ ध्रुवान्त्यमित्रभे परै:।
शुभैरधीतिरूत्तमा त्रिकोणकेन्द्रगै: स्मृता॥

अर्थात् मृगशिरा, हस्त और श्रवण से तीन – तीन नक्षत्र अर्थात् मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, मूल, तीनों पूर्वा, पुष्य से दो अर्थात् पुष्य, आश्लेषा, नक्षत्रों में, रवि, गुरू, बुध और शुक्र वासरों में षष्ठी, पंचमी, तृतीया, एकादशी, द्वादशी, दशमी एवं द्वितीया तिथियों में, शुभग्रहों के केन्द्र और त्रिकोण (१,४,५,७,९,१०) भावों में स्थित रहने पर, अन्य मतानुसार ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा और रोहिणी), रेवती और अनुराधा नक्षत्रों में भी विद्याध्ययन का आरम्भ शुभ होता है।

विद्यारम्भ हेतु शास्त्रोक्त शुभ मुहूर्त्त में श्रीगणेश, विष्णु, सरस्वती, तथा लक्ष्मी की पूजा करने के पश्चात् बालक का विद्यारम्भ निम्नलिखित मास, तिथि, वार, दिन एवं नक्षत्र में करना चाहिये।

प्रशस्त मास - सूर्य जब उत्तरायण में हो अर्थात चैत्र को छोड़कर माघ आदि छ: (माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़) इन पॉच मासों में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया है।

शुभ पक्ष- शुक्लपक्ष एवं कृष्ण पक्ष के प्रतिपदा से पंचमी तिथि तक केवल।

शुभ तिथियॉ - द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी एवं द्वादशी (2,3,5,6,10,11,12) तिथियों को विद्यारम्भ में प्रशस्त माना गया है।

शुभ नक्षत्र - अश्विनी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, पूर्वाषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा एवं पूर्वाभाद्रपद इन 16 नक्षत्रों में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया है।

शुभ वार - रवि, बुध, गुरू एवं शुक्र वारों में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया है।

प्रशस्त लग्न एवं नवमांश - वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन 2,3,6,9,12 इन पॉच लग्नों में या इनके नवमांश में विद्यारम्भ प्रशस्त माना गया है।

मास	माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़
पक्ष	शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष में प्रतिपदा से पंचमी तिथि पर्यन्त
तिथियॉ	2, 3, 5, 6, 10, 11, 12
वार	रवि, बुध, गुरू एवं शुक्र
नक्षत्र	अश्विनी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी , हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, पूर्वाषाढ, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, एवं पूर्वाभाद्रपद
लग्न	वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन
अन्य त्याज्य समय	हरिशयन, संक्रान्ति, मासान्त, गुरू – शुकास्त, बाल, वृद्ध के अतिचार, सिंह मकराश्यंशस्थ गुरू, गुर्वादित्य योग

इस प्रकार आप अक्षराम्भ एवं विद्यारम्भ मुहूर्त्त का ज्ञान कर सकते हैं।

बोधप्रश्न

1. अक्षराम्भ संस्कार किस वर्ष कराया जाता है।
2. अक्षराम्भ संस्कार के समय सूर्य किस अयन में शुभ होता है।
3. अक्षराम्भ संस्कार मुहूर्त्त में मास गणना किसके अनुसार होती है।
4. अक्षराम्भ संस्कार हेतु शुभ लग्न कौन – कौन सा है।
5. अक्षराम्भ संस्कार हेतु शुभ वार कौन है।
6. विद्यारम्भ संस्कार हेतु शुभ मास होते है।

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि गणेश, विष्णु, सरस्वती और लक्ष्मी का विधिवत् पूजन कर पॉचवें वर्ष में, एकादशी, द्वादशी, दशमी, द्वितीया, षष्ठी, पंचमी एवं तृतीया तिथियों में सूर्य के उत्तरायण रहने पर, लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्) , श्रवण, स्वाती, रेवती, पुनर्वसु, आर्द्रा, चित्रा तथा अनुराधा नक्षत्रों में चर लग्नों (१,४,७,१०) को छोड़कर , शुभग्रहों के लग्नों में २,३,४,६,७,९,१२ में शुभ ग्रहों के सोमवार, बुधवार गुरूवार और शुक्रवारों में बालकों को अक्षराम्भ कराना चाहिये। इस प्रकार शास्त्रोक्त मुहूर्त्त में श्रीगणेश, विष्णु, सरस्वती तथा लक्ष्मी जी की पूजा करके बालक का अक्षराम्भ कराना चाहिये।

1.5 शब्दावली

प्रथमतया – सबसे पहले

अक्षराम्भ – अक्षर का आरम्भ

अब्द – वर्ष

लघुसंज्ञक – हस्त, अश्विनी, पुष्य एवं अभिजित नक्षत्र

कर – हस्त नक्षत्र

मृग – मृगशीर्ष

पूर्वात्रय – तीनों पूर्वा नक्षत्र पूर्वाफाल्गुनि, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद

उत्तरात्रय – तीनों उत्तरा नक्षत्र उत्तराफाल्गुनि, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद

षट् – छ:

त्रिकोण – 5 एवं 9 स्थान

1.6 बोध प्रश्न के उत्तर

1. पॉचवें वर्ष में
2. उत्तर अयन में
3. सौर मास के अनुसार
4. वृष, मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन
5. सोम, बुध, गुरू एवं शुक्र
6. माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़

1.7 सन्दर्भग्रन्थ सूची

सनातन संस्कार विधि – आचार्य गंगा प्रसाद शास्त्री

संस्कारदीपक - श्री नित्यानन्द पर्वतीय

मुहूर्त्तचिन्तामणि – रामदैवज्ञ

कर्मसमुच्चय - रामजी लाल शास्त्री

1.8 दीर्घोत्तरीय प्रश्न

क. अक्षराम्भ संस्कार विधि का लेखन कीजिये।

ख. विद्यारम्भ मुहूर्त्त का लेखन करते हुए उसका वर्णन कीजिये।

इकाई – 2 उपनयन, आवश्यकता एवं महत्व

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 उपनयन परिचय

2.4 उपनयन : आवश्यकता एवं महत्व

बोध प्रश्न

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAKA(N)-202 के दूसरे खण्ड की दूसरी इकाई 'उपनयन, आवश्यकता एवं महत्व' से सम्बन्धित है। इस इकाई से पूर्व की इकाई में आपने अक्षराम्भ संस्कार का अध्ययन कर लिया हैं। अब यहाँ इस इकाई में आप उपनयन संस्कार का अध्ययन करेंगे।

भारतीय सनातन परम्परा में उपनयन एक महत्वपूर्ण संस्कार हैं। जिसको धारण करके मनुष्य तेजस्वी, ब्रह्मचारी, विद्याध्ययन में प्रवृत्त तथा ब्रह्म तत्व को समझने वाला होता था।

प्रस्तुत इकाई में आपके ज्ञानार्थ व अध्ययनार्थ उपनयन सम्बन्धित विषयों का उल्लेख किया जा रहा है, जिसे पढ़कर आप उसे भली – भॉति समझ सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ❖ उपनयन को परिभाषित कर सकेंगे।
- ❖ उपनयन की आवश्यकता को समझा सकेंगे।
- ❖ उपनयन में प्रमुख तत्वों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- ❖ उपनयन के महत्व को समझा सकेंगे।

2.3 उपनयन परिचय

उपनयन' का अर्थ है "पास या सन्निकट ले जाना ।" किन्तु किसके पास ले जाना? सम्भवत: आरम्भ में इसका तात्पर्य था "आचार्य के पास (शिक्षण के लिए) ले जाना।" हो सकता है; इसका तात्पर्य रहा हो नवशिष्य को विद्यार्थीपन की अवस्था तक पहुँचा देना। कुछ गृह्यसूत्रों से ऐसा आभास मिल जाता है, यथा हिरण्यकेशि के अनुसार; तब गुरु बच्चे से यह कहलवाता है "मैं ब्रह्मसूत्रों को प्राप्त हो गया हूँ। मुझे इसके पास ले चलिए। सविता देवता द्वारा प्रेरित मुझे ब्रह्मचारी होने दीजिए।" मानवगृह्यसूत्र एवं काठक. ने 'उपनयन' के स्थान पर 'उपायन' शब्द का प्रयोग किया है। काठक के टीकाकार आदित्यदर्शन ने कहा है कि उपानय, उपनयन, मौञ्चीबन्धन, बटुकरण, व्रतबन्ध समानार्थक हैं।

उद्गम एवं विकास

इस संस्कार के उद्गम एवं विकास के विषय में कुछ चर्चा हो जाना आवश्यक है, क्योंकि यह संस्कार सब संस्कारों में अति महत्त्वपूर्ण माना गया है। उपनयन संस्कार का मूल भारतीय एवं ईरानी है, क्योंकि प्राचीन ज़ोरॉस्ट्रिएन (पारसी) शास्त्रों के अनुसार पवित्र मेखला अधोवसन (लुंगी) का सम्बन्ध आधुनिक पारसियों से भी है। किन्तु इस विषय में हम प्रवेश नहीं करेंगे। हम अपने को भारतीय

साहित्य तक ही सीमित रखेंगे। ऋग्वेद में 'ब्रह्मचारी' शब्द आया है। 'उपनयन' शब्द दो प्रकार से समझाया जा सकता है।

1. बच्चे को आचार्य के सन्निकट ले जाना,

2. वह संस्कार या कृत्य जिसके द्वारा बालक आचार्य के पास ले जाया जाता है। पहला अर्थ आरम्भिक है, किन्तु कालान्तर में जब विस्तारपूर्वक यह कृत्य किया जाने लगा तो दूसरा अर्थ भी प्रयुक्त हो गया। आपस्तम्बधर्मसूत्र ने दूसरा अर्थ लिया है। उसके अनुसार उपनयन एक संस्कार है जो उसके लिए किया जाता है, जो विद्या सीखना चाहता है; "यह ऐसा संस्कार है जो विद्या सीखने वाले को गायत्री मन्त्र सिखाकर किया जाता है।" स्पष्ट है, उपनयन प्रमुखतया गायत्री-उपदेश (पवित्र गायत्री मन्त्र का उपदेश) है। इस विषय में जैमिनीय भी द्रष्टव्य है।

उपनयन मुहूर्त्त –

विप्राणां व्रतबन्धनं निगदितं गर्भाज्जनेर्वाऽष्टमे।
वर्षे वाप्यथ पंचमे क्षितिभुजां षष्ठे तथैकादशे।।
वैश्यानां पुनरष्टमेऽप्यथ पुनः स्याद् द्वादशे वत्सरे ।
कालेऽथ द्विगुणे गते निगदिते गौणं तदाहुर्बुधाः।।

गर्भाधान काल से अथवा जन्म काल से आठवें वर्ष में या पॉचवें वर्ष में ब्राह्मणों का यज्ञोपवीत संस्कार, छठें तथा ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रियों का, तथा आठवें और बारहवें वर्ष में वैश्यों का यज्ञोपवीत संस्कार होता है। उक्त बताये गये काल से द्विगुणित समय व्यतीत हो जाने पर जो यज्ञोपवीत संस्कार होता है उसे विद्वानों ने गौण सामान्य यज्ञोपवीत कहा है।

विमर्श –

विहित काल से दूगने समय तक भी व्रतबन्ध किया जा सकता है, परन्तु मुख्य काल और गौण काल व्यतीत हो जाने पर भी व्रतबन्ध न होने से मनुष्य को गायत्री का अधिकार समाप्त हो जाता है तथा वह संस्कारच्युत होता है । आचार्य मनु ने भी कहा है कि –

आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।
आद्वाविंशाद् ब्रह्मवन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः।।
अत उर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यपि गर्हिताः।।

अपि च –

क्षिप्रध्रुवाहिचरमूलमृदुत्रिपूर्वारौद्रेऽर्कविदुरूसितेन्दुदिने व्रतं सत्।

द्वित्रीषुरूद्ररविदिक्प्रमिते तिथौ च कृष्णादिमत्रिलवकेऽपि न चापराह्ने ।।

क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य) , ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी),आश्लेषा, चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष), मूल, मृदुसंज्ञक मृगशिरा, रेवती, चित्रा, तीनों पूर्वा आर्द्रा नक्षत्रों में रवि, बुध, गुरू, शुक्र और सोमवासरों में २,३,५,१११२,१० तिथियों में शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष में प्रथम त्रिमास में प्रतिपदा से पंचमी तक उपनयन शुभ होता है । अपराह्ण दोपहर के पश्चात् उपनयन नहीं करना चाहिये ।

उपनयन संस्कार के लक्षण

ऋग्वेद से पता चलता है कि गृह्यसूत्रों में वर्णित उपनयन संस्कार के कुछ लक्षण उस समय भी विदित थे। वहाँ एक युवक के समान यूप (बलि-स्तम्भ) की प्रशंसा की गयी है;.."यहाँ युवक आ रहा है, वह भली भाँति सज्जित है (युवक मेखला द्वारा तथा यूप रशन द्वारा); वह, जब उत्पन्न हुआ, महत्ता प्राप्त करता है; हे चतुर ऋषियों, आप अपने हृदयों में देवों के प्रति श्रद्धा रखते हैं और स्वस्थ विचार वाले हैं, इसे ऊपर उठाइए।" यहाँ "उन्नयन्ति" में वही धातु है, जो उपनयन में है। बहुत-से गृह्यसूत्रों ने इस मन्त्र को उद्धृत किया है, यथा- आश्वलायन., पारस्कर.। तैत्तिरीय संहिता में तीन ऋणों के वर्णन में 'ब्रह्मचारी' एवं 'ब्रह्मचर्य' शब्द आये हैं- 'ब्राह्मण जब जन्म लेता है तो तीन वर्गों के व्यक्तियों का ऋणी होता है; ब्रह्मचर्य में ऋषियों के प्रति (ऋणी होता है), यज्ञ में देवों के प्रति तथा सन्तति में पितरों के प्रति; जिसको पुत्र होता है, जो यज्ञ करता है और जो ब्रह्मचारी रूप में गुरु के पास रहता है, वह अनृणी हो जाता है।" उपनयन एवं ब्रह्मचर्य के लक्षणों पर प्रकाश वेदों एवं ब्राह्मण साहित्य में उपलब्ध हो जाता है। अथर्ववेद का एक पूरा सूक्त ब्रह्मचारी (वैदिक छात्र) एवं ब्रह्मचर्य के विषय में अतिशयोक्ति की प्रशंसा से पूर्ण है।

यज्ञोपवीत का प्रयोजन –

आचार्य गृह में जाने पर, बालक को अपना शिष्य बनाते समय आचार्य यज्ञोपवीत धारण कराता है। यह जहॉ, आचार्य के शिष्य वर्ग में प्रवेश का एक चिन्ह हैं वहॉ यह अन्य भी कई महत्वपूर्ण कर्तव्यों का प्रतीक है ।

यज्ञोपवीत संस्कार अथवा मौञ्जी – बन्धन को बालक का दूसरा जन्म बताया गया है । यह उसके ब्रह्मचर्यव्रत एवं विद्याध्ययन का प्रतीक है ।

तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है –

जायमानो वै ब्राह्मण: त्रिभि: ऋणै: ऋणव जायते। ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्य:, यज्ञेन देवेभ्य:, प्रजया पितृभ्य: । एष वै अनृणो य: पुत्री यज्वा, ब्रह्मचारिवासी ।

अभिप्राय यह है कि मनुष्य पर तीन ऋणों का भार होता है वह ब्रह्मचर्य का पालन कर ऋषि ऋण को उतारता है, गृहस्थ धर्म के पालन पूर्वक सन्तानोत्पत्ति से पितृ ऋण और यजन द्वारा देवऋण से उर्ऋण होता है।

इन तीन ऋणों की स्मृति यज्ञोपवीत के तीन सूत्रों से होती रहती है ।

अथवा एक ब्रह्मग्रन्थि में जोड़े गये यज्ञोपवीत के तीन तार ज्ञान, कर्म और उपासना-इन त्रिविध कर्तव्यों के साथ – साथ पालन के प्रतीक हैं। एक सूत्र के टूट जाने पर ही यज्ञसूत्र खण्डित माना जाता है। इसी प्रकार ज्ञान – कर्म उपासना में से एक को भी भूल जाना व्रत को खण्डित कर देना है प्राचीन समय में विद्यार्थी इस विद्या – चिन्ह को अपने वस्रों के उपर ही धारण करते थे। महाभारत में एक स्थल पर वर्णन हैं –

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लयज्ञोपवीतवान् ।
शुक्लकेशः सितश्मश्रु शुक्लमाल्यानुलेपनः ।।

अर्थात् वृद्ध द्रोणाचार्य श्वेत वस्त्रों पर श्वेत यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे।

विधि- उपवास तथा व्रत –

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार –

पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः।

शतपथ ब्राह्मण के वचनानुसार जिस दिन बालक का उपनयन संस्कार कराना हो उससे तीन अथवा एक दिन पहले तीन अथवा एक व्रत बालक को करावे। इस समय ब्राह्मण बालक को दुग्ध पर, क्षत्रिय बालक को यवार्गू (जौ का दलिया) पर और वैश्य बालक को श्रीखण्ड पर रखे।

गायत्री जप

आचार्य के समीप उपनयन के नियत शुभदिन से एक दिन पूर्व यजमान पत्नी और उपनेय बालक सहित मंगल स्नान कर, शुद्ध वस्र धारण कर अग्निहोत्रशाला से भिन्न मण्डप में पूर्वाभिमुख शुभासन पर बैठ, दक्षिण में पत्नी और उसके दक्षिण में बालक को बैठा उपनयन कराने के अपने अधिकार की सिद्धि के लिए तथा बालक के अब तक के यथेष्ठाचारण के दोष निवृत्ति के लिए इस प्रकार संकल्प करें –

यजमान - कृच्छ्रत्रयात्मकप्रायश्चितप्रत्याम्नाय गोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतद्रव्य दानपूर्वकं द्वादश सहस्रं द्वादशाधिकसहसंवागायत्रीजपमहं ब्राह्मणद्वारा कारयिष्ये ।

कुमारः - मम कामचारकामवादकामभक्षणादिदोषपरिहारार्थं
कृच्छ्रत्रयात्मकप्रायश्चितप्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतद्रव्यदानपूर्वकं द्वादशसहस्रं

द्वादशाधिकसहस्रं वा ब्राह्मणद्वारा गायत्री जपं कारयिष्ये ।

संकल्प करके गोदान करावें और १२००० अथवा १०१२ गायत्री का जप करावें।

गणपति पूजनादि

पश्चात् बालक के उपनयन संस्कार का संकल्प कर, संकल्प पूर्वक गणपतिपूजन, स्वस्ति, पुण्याहवाचन, मातृकापूजन एवं आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिए।

मुंडनादि –

संस्कार के दिन संकल्प पूर्वक कुमार का संस्कारांगभूत मुंडन कराकर क्रम से ३ ब्राह्मणों और कुमार को भोजन कराकर बाहर शाला में पंचभू संस्कार एवं अग्नि की स्थापना कर आचार्य के समीप ले आवे । इस समय बालक शुद्ध वस्त्रादि पहने हो ।

आचार्य द्वारा वस्त्रादि धारण कराना -

संस्कार्य कुमार को आचार्य के दाहिने ओर, अग्नि के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठाकर विप्रजन आर्शीवाद दें । तब आचार्य बालक से ये वाक्य कहलावें –

बालक – ब्रह्मचर्यमागाम्, ब्रह्माचार्यसानि।

अब आचार्य निम्नलिखित मंत्र पढ़कर ब्रह्मचारी को कटिसूत्र तथा कौपीन आदि वस्त्र देवे और आचमन करावे -

ऊँ येनेन्द्राय वृहस्पतिर्वास: पर्यदधादमृतम् । तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे

ब्रह्मचर्य-जीवन

तैत्तिरीय ब्राह्मण में भारद्वाज के विषय में एक गाथा है, जिसमें कहा गया है कि भरद्वाज अपनी आयु के तीन भागों (75 वर्षों) तक ब्रह्मचारी रहे। उनसे इन्द्र ने कहा था कि उन्होंने इतने वर्षों तक वेदों के बहुत ही कम अंश (3 पर्वतों की ढेरी में से 3 मुट्ठियाँ) सीखे हैं, क्योंकि वेद तो असीम हैं। मनु के पुत्र नाभानेदिष्ठ की गाथा से पता चलता है कि वे अपने गुरु के यहाँ ब्रह्मचारी रूप से रहते थे, तभी उन्हें पिता की सम्पत्ति का कोई भाग नहीं मिला। गृह्मसूत्रों में वर्णित ब्रह्मचर्य-जीवन के विषय में शतपथ-ब्राह्मण में भी बहुत-कुछ प्राप्त होता हैं, जो बहुत ही संक्षेप में यों है- बालक कहता है- 'मैं ब्रह्मचर्य के लिए आया हूँ' और मुझे ब्रह्मचारी हो जाने दीजिए।' गुरु पूछता है- 'तुम्हारा नाम क्या है?' तब गुरु (आचार्य) उसे पास में ले लेता है,(उप नयति)। तब गुरु बच्चे का हाथ पकड़ लेता है और कहता है- 'तुम इन्द्र के ब्रह्मचारी हो, अग्नि तुम्हारे गुरु हैं, मैं तुम्हारा गुरु हूँ" (यहाँ पर गुरु उसका नाम लेकर सम्बोधित करता है)। 'तब वह बालक को भूतों को दे देता हैं, अर्थात् भौतिक तत्त्वों में नियोजित कर देता है। गुरु शिक्षा देता है 'जल पिओ, काम करो (गुरु के घर में), अग्नि में समिधा डालो, (दिन में) न

सोओ।' वह सावित्री मन्त्र दुहराता है। पहले बच्चे के आने के एक वर्ष उपरान्त सावित्री का पाठ होता था, फिर 6 मासों, 24 दिनों, 12 दिनों, 3 दिनों के उपरान्त। किन्तु ब्राह्मण बच्चे के लिए उपनयन के दिन ही पाठ किया जाता था, पहले प्रत्येक पाद अलग-अलग फिर आधा और तब पूरा मन्त्र दुहराया जाता था। ब्रह्मचारी हो जाने पर मधु खाना वर्जित हो जाता था।

शतपथ ब्राह्मण एवं तैत्तिरीयोपनिषद में 'अन्तेवासी' शब्द आया है। शतपथब्राह्मण का कथन है "जो ब्रह्मचर्य ग्रहण् करता है, वह लम्बे समय की यज्ञावधि ग्रहण करता है।" गोपथ ब्राह्मण, बौधायनधर्मसूत्र आदि में भी ब्रह्मचर्य-जीवन की ओर संकेत मिलता है। पारिक्षित जनमेजय हंसों (आहवनीय एवं दक्षिण नामक अग्नियों) से पूछतें हैं- पवित्र क्या है ? तो वे दोनों उत्तर देते हैं- ब्रह्मचर्य (पवित्र) है। गोपथ ब्राह्मण के अनुसार सभी वेदों के पूर्ण पाण्डित्य के लिए 48 वर्ष का छात्र-जीवन आवश्यक है। अत: प्रत्येक वेद के लिए 12 वर्ष की अवधि निश्चित सी थी। ब्रह्मचारी की भिक्षा-वृत्ति, उसके सरल जीवन आदि पर गोपथब्राह्मण प्रभूत प्रकाश डालता है। उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि आरम्भिक काल में उपनयन अपेक्षाकृत पर्याप्त सरल था। भावी विद्यार्थी समिधा काष्ठ के साथ (हाथ में लिये हुए) गुरु के पास आता था और उनसे अपनी अभिकांक्षा प्रकट कर ब्रह्मचारी रूप में उनके साथ ही रहने देने की प्रार्थना करता था। गृह्यसूत्रों में वर्णित किया-संस्कार पहले नहीं प्रचलित थे। कठोपनिषद, मुण्डकोपनिषद, छान्दोग्य उपनिषद एवं अन्य उपनिषदों में ब्रह्मचर्य शब्द का प्रयोग हुआ है। छान्दोग्य एवं बृहदारण्यकोपनिषद सम्भवत: सबसे प्राचीन उपनिषद हैं। ये दोनों मूल्यवान वृत्तान्त उपस्थित करती है। उपनिषदों के काल में ही कुछ कृत्य अवश्य प्रचलित थे, जैसा कि छान्दोग्य उपनिषद से ज्ञात होता है। जब प्राचीनशाल औपमन्यव एवं अन्य चार विद्यार्थी अपने हाथों में समिधा लेकर अश्वपति केकय के पास पहुँचे तो वे (अश्वपति) उनसे बिना उनयन की क्रियाएँ किये ही बातें करने लगे। जब सत्यकाम जाबाल ने अपने गोत्र का सच्चा परिचय दे दिया तो गौतम हारिद्रुमत ने कहा-"हे प्यारे बच्चे, जाओ समिधा ले आओ, मैं तुम्हें दीक्षित करूँगा। तुम सत्य से हटे नहीं"।

ब्रह्मचर्य आश्रम

अति प्राचीन काल में सम्भवत: पिता ही अपने पुत्र को पढ़ाता था। किन्तु तैत्तिरीयसंहिता एवं ब्राह्मणों के कालों से पता चलता है कि छात्र साधारणत: गुरु के पास जाते थे और उसके यहाँ रहते थे। उद्दालक आरुणि ने, जो स्वयं ब्रह्मचारी एवं पहुँचे हुए दार्शनिक थे, अपने पुत्र श्वेतकेतु को ब्रह्मचारी रूप से वेदाध्ययन के लिए गुरु के पास जाने को प्रेरित किया। छान्दोग्योपनिषद में ब्रह्मचर्याश्रम का भी वर्णन हुआ है, जहाँ पर विद्यार्थी (ब्रह्मचारी) अपने अन्तिम दिन तक गुरुगेह में रहकर शरीर को सुखाता रहा है, यहाँ पर नैष्ठिक ब्रह्मचारी की ओर संकेत है। इस उपनिषद में गोत्र-नाम, भिक्षा-वृत्ति, अग्नि-रक्षा, पशु-पालन का भी वर्णन है। उपनयन करने की अवस्था पर औपनिषदिक प्रकाश नहीं प्राप्त होता, यद्यपि हमें यह ज्ञात है कि श्वेतकेतु ने जब ब्रह्मचर्य धारण किया तो उनकी अवस्था 12

वर्ष की थी। साधारणत: विद्यार्थी-जीवन 12 वर्ष का था, यद्यपि इन्द्र के ब्रह्मचर्य की अवधि 101 वर्ष की थी। एक स्थान पर छान्दोग्योपनिषद ने जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य की चर्चा की है।

अब हम सूत्रों एवं स्मृतियों में वर्णित उपनयनसंस्कार का वर्णन करेंगे। इस विषय में एक बात स्मरणीय है कि इस संस्कार से सम्बन्धित सभी बातें सभी स्मृतियों में नहीं पायी जातीं और न उनमें विविध विषयों का एक अनुक्रम में वर्णन ही पाया जाता है। इतना ही नहीं, वैदिक मन्त्रों के प्रयोग के विषय में सभी सूत्र एकमत नहीं हैं। अब हम क्रम से उपनयन संस्कार के विविध रूपों पर प्रकाश डालेंगे।

आश्वंलायनगृह्यसूत्र के मत से ब्राह्मणकुमार का उपनयन गर्भाधान या जन्म से लेकर आठवें वर्ष में, क्षत्रिय का 11 वें वर्ष में एवं वैश्य का 12 वें वर्ष में होना चाहिए; यही नहीं, क्रम से 16 वें, 22 वें एवं 24 वें वर्ष तक भी उपनयन का समय बना रहता है। आपस्तम्ब, शांखायन, बौधायन, भारद्वाज एवं गोभिल गृह्यसूत्र तथा याज्ञवल्क्य, आपस्तम्बधर्मसूत्र स्पष्ट कहते हैं कि वर्षों की गणना गर्भाधान से होनी चाहिए। यही बात महाभाष्य में भी है। पारस्करगृह्यसूत्र के मत से उपनयन गर्भाधान या जन्म से आठवें वर्ष में होना चाहिए, किन्तु इस विषय में कुलधर्म का पालन भी करना चाहिए। याज्ञवल्क्य ने भी कुलधर्म की बात चलायी है। शांखायनगृह्यसूत्र ने गर्भाधान से 8 वाँ या 10 वाँ वर्ष, मानव ने 7 वाँ या 9 वाँ वर्ष, काठक ने तीनों वर्णों के लिए क्रम से 7 वाँ, 9 वाँ एवं 11 वाँ वर्ष स्वीकृत किया है; किन्तु यह छूट केवल क्रम से आध्यात्मिक, सैनिक एवं धन-संग्रह की महत्ता के लिए ही दी गयी है। आध्यात्मिकता, लम्बी आय एवं धन की अभिकांक्षा वाले ब्राह्मण पिता के लिए पुत्र का उपनयन गर्भाधान से 5 वें, 8 वें एवं 9 वें वर्ष में भी किया जा सकता है। आपस्तम्बधर्मसूत्र एवं बौधायन गृह्यसूत्र' ने आध्यात्मिक महत्ता, लम्बी आयु, दीप्ति, पर्याप्त भोजन, शारीरिक बल एवं पशु के लिए क्रम से 7 वाँ, 8 वाँ, 9 वाँ, 10 वाँ, 11 वाँ एवं 12 वाँ वर्ष स्वीकृत किया है। अत: जन्म से 8 वाँ, 11 वाँ एवं 12 वाँ वर्ष क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए प्रमुख समय माना जाता रहा है। 5 वें वर्ष से 11 वें वर्ष तक ब्राह्मणों के लिए गौण, 9 वें वर्ष से 16 वर्ष तक क्षत्रियों के लिए गौण माना जाता रहा है। ब्राह्मणों के लिए 12 वें से 16 वें तक गौणतर काल तथा 16 वें के उपरान्त गौंणतम काल माना गया है। आपस्तम्बगृह्यसूत्र एवं आपस्तम्बधर्मसूत्र, हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र एवं वैखानस के मत से तीनों वर्णों के लिए क्रम से शुभ मुहूर्त पड़ते हैं वसन्त, ग्रीष्म एवं शरद् के दिन। भारद्वाज के अनुसार वसन्त ब्राह्मण के लिए, ग्रीष्म या हेमन्त क्षत्रिय के लिए, शरद् वैश्य के लिए, वर्षा बढ़ई के लिए या शिशिर सभी के लिए मान्य है। भारद्वाज ने वहीं यह भी कहा है कि उपनयन मास के शुक्लपक्ष में किसी शुभ नक्षत्र में, भरसक पुरुष नक्षत्र में करना चाहिए। कालान्तर के धर्मशास्त्रकारों ने उपनयन के लिए मासों, तिथियों एवं दिनों के विषय में ज्योतिष-सम्बन्धी विधान बड़े विस्तार के साथ दिये हैं, जिन पर लिखना यहाँ उचित एवं आवश्यक नहीं जान पड़तां किन्तु थोड़ा-बहुत लिख देना आवश्यक है, क्योंकि आजकल ये ही विधान मान्य हैं। वृद्धगार्ग्य ने लिखा है कि माघ से लेकर छ: मास उपनयन के लिए उपयुक्त हैं, किन्तु अन्य लोगों ने माघ से लेकर पाँच मास ही उपयुक्त ठहराये हैं। प्रथम, चौथी,

सातवीं, आठवीं, नवीं, तेरहवीं, चौदहवीं, पूर्णमासी एवं अमावस की तिथियाँ बहुधा छोड़ दी जाती हैं। जब शुक्र सूर्य के बहुत पास हो और देखा न जा सके, जब सूर्य राशि के प्रथम अंश में हो, अनध्याय के दिनों में तथा गलग्रह में उपनयन नहीं करना चाहिए। बृहस्पति, शुक्र, मंगल एवं बुध क्रम से ऋग्वेद एवं अन्य वेदों के देवता माने जाते हैं। अत: इन वेदों के अध्ययनकर्ताओं का उनके देवों के वारों में ही उपनयन होना चाहिए। सप्ताह में बुध, बृहस्पति एवं शुक्र सर्वोत्तम दिन हैं, रविवार मध्यम तथा सोमवार बहुत कम योग्य है। किन्तु मंगल एवं शनिवार निषिद्ध माने जाते हैं (सामवेद के छात्रों एवं क्षत्रियों के लिए मंगल मान्य है)। नक्षत्रों में हस्त, चित्रा, स्वाति, पुष्य, घनिष्ठा, अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, श्रवण एवं रवती अच्छे माने जाते हैं विशिष्ट वेद वालों के लिए नक्षत्र-सम्बन्धी अन्य नियमों की चर्चा यहाँ नहीं की जा रही है। एक नियम यह है कि भरणी, कृत्तिका, मघा, विशाखा, ज्येष्ठा, शततारका को छोड़कर सभी अन्य नक्षत्र सबके लिए अच्छे हैं। लड़के की कुण्डली के लिए चन्द्र एवं बृहस्पति ज्योतिष-रूप से शक्तिशाली होने चाहिए। बृहस्पति का सम्बन्ध ज्ञान एवं सुख से है, अत: उपनयन के लिए उसकी परम महत्ता गायी गयी है। यदि बृहस्पति एवं शुक्र न दिखाई पड़ें तो उपनयन नहीं किया जा सकता। अन्य ज्योतिष-सम्बन्धी नियमों का उद्घाटन यहाँ स्थानाभाव के कारण नहीं किया जायगा।

वस्त्र

- ब्रह्मचारी दो वस्त्र धारण करता था, जिनमें एक अधोभाग के लिए और दूसरा (वासस्) (उत्तरीय) ऊपरी भाग के लिए।
- आपस्तम्बधर्मसूत्र के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य ब्रह्मचारी के लिए वस्त्र क्रम से पटुआ के सूत का, सन् के सूत का एवं मृगचर्म का होता था।
- कुछ धर्मशास्त्रकारों के मत से अधोभाग का वस्त्र रूई के सूत का (ब्राह्मणों के लिए लाल रंग, क्षत्रियों के लिए मजीठ रंग एवं वैश्यों के लिए हल्दी रंग होना चाहिएं वस्त्र के (विषय में बहुत मतभेद हैं।
- आपस्तम्बधर्मसूत्र ने सभी वर्णों के लिए भेड़ का चर्म या कम्बल विकल्प (उत्तरीय के लिए) रूप से स्वीकार कर लिया है।
- अधोभाग या ऊपरी भाग के परिधान के विषय में ब्राह्मणग्रन्थों में भी संकेत मिलता है- । जो वैदिक ज्ञान बढ़ाना चाहे उसके अधोवस्त्र एवं उत्तरीय मृगचर्म के, जो सैनिक शक्ति चाहे उसके लिए रूई का वस्त्र और जो दोनों चाहे वह दोनों प्रकार के वस्त्रों का उपयोग करे।

दण्ड -

दण्ड किस वृक्ष का बनाया जाय, इस विषय में भी बहुत मतभेद रहा है। आश्वलायनगृह्यसूत्र के मत से ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए क्रम से पलाश, उदुम्बर एवं बिल्व का दण्ड होना चाहिए, या कोई भी वर्ण उनमें से किसी एक का दण्ड बना सकता है। आपस्तम्बगृह्य सूत्र के अनुसार ब्राह्मण क्षत्रिय

एवं वैश्य के लिए क्रम से पलाश न्यग्रोध की शाखा (जिसका निचला भाग दण्ड का ऊपरी भाग माना जाय) एवं बदर या उदुम्बर का दण्ड होना चाहिए। यही बात आपस्तम्बधर्मसूत्र में भी पायी जाती है। इसी प्रकार बहुत से मत हैं जिनका उद्घाटन अनावश्यक है। पूर्वकाल में सहारे के लिए, आचार्य के पशुओं को नियन्त्रण में रखने के लिए, रात्रि में जाने पर सुरक्षा के लिए एंव नदी में प्रवेश करते समय पथप्रदर्शन के लिए दण्ड की आवश्यकता पड़ती थी। बालक के वर्ण के अनुसार दण्ड की लम्बाई में अन्तर था। आश्वलायनगृह्यसूत्र, गौतम, वसिष्ठधर्मसूत्र, पारस्करगृह्यसूत्र, मनु के मतों से ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्व का दण्ड क्रम से सिर तक, मस्तक तक एवं नाक तक लम्बा होना चाहिए। शांखायनगृह्यसूत्र ने इस अनुक्रम को उलट दिया है, अर्थात् इसके अनुसार ब्राह्मण का दण्ड सबसे छोटा एवं वैश्य का सबसे बड़ा होना चाहिए। गौतम का कहना है कि दण्ड घुना हुआ नहीं होना चाहिए। उसकी छाल लगी रहनी चाहिए, ऊपरी भाग टेढ़ा होना चाहिए। किन्तु मनु के अनुसार दण्ड सीधा, सुन्दर एवं अग्निस्पर्श से रहित होना चाहिए। शांखायनगृह्यसूत्र के अनुसार ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह किसी को अपने एवं दण्ड के बीच से निकलने न दे, यदि दण्ड, मेखला एवं यज्ञोपवीत टूट जायें तो उसे प्रायश्चित्त करना चाहिए (वैसा ही जैसा कि विवाह के समय वरयात्रा का रथ टूटने पर किया जाता है)। ब्रह्मचर्य के अन्त में यज्ञोपवीत, दण्ड, मेखला एवं मृगचर्म को जल में त्याग देना चाहिए। ऐसा करते समय वरुण के मन्त्र का पाठ करना चाहिए या केवल 'ओम्' का उच्चारण करना चाहिए। मनु एवं विष्णुधर्मसूत्र ने भी यही बात कही है।

मेखला

गौतम, आश्वलायनगृह्यसूत्र, बौधायनगृह्यसूत्र, मनु, काठकगृह्यसूत्र, भारद्वाजगृहसूत्र तथा अन्य लोगों के मत से ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य बच्चे के लिए क्रम से मुञ्ज, मूर्वा (जिससे प्रत्यंचा बनती है) एवं पटुआ की मेखला (करधनी) होनी चाहिए। मनु ने पारस्करगृह्यसूत्र एवं आपस्तम्बधर्मसूत्र की भाँति ही नियम कहे हैं किन्तु विकल्प से कहा है कि क्षत्रियों के लिए मूँज तथा लोह से गुंथी हुई हो सकती है तथा वैश्यों के लिए सूत का धागा या जुए की रस्सी या तामल (सन) की छाल का धागा हो सकता है। बौधायनगृह्यसूत्र ने मूँज की मेखला सबके लिए मान्य कही है। मेखला में कितनी गाँठे होनी चाहिए, यह प्रवरों की संख्या पर निर्भर है।

बोधप्रश्न

1. उपनयन का शाब्दिक अर्थ क्या होता है।
2. शास्त्रों के अनुसार ब्राह्मणों का यज्ञोपवीत कब करना चाहिये।
3. चरसंज्ञक नक्षत्र कौन – कौन से है।
4. मनुष्य कितने प्रकार के ऋणों से युक्त होता है।
5. शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ब्राह्मणों को उपनयन में कौन सा व्रत करना चाहिये।

2.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि उपनयन' का अर्थ है "पास या सन्निकट ले जाना ।" किन्तु किसके पास ले जाना? सम्भवत: आरम्भ में इसका तात्पर्य था "आचार्य के पास (शिक्षण के लिए) ले जाना।" हो सकता है; इसका तात्पर्य रहा हो नवशिष्य को विद्यार्थीपन की अवस्था तक पहुँचा देना । कुछ गृह्यसूत्रों से ऐसा आभास मिल जाता है, यथा हिरण्यकेशि के अनुसार; तब गुरु बच्चे से यह कहलवाता है "मैं ब्रह्मसूत्रों को प्राप्त हो गया हूँ। मुझे इसके पास ले चलिए । सविता देवता द्वारा प्रेरित मुझे ब्रह्मचारी होने दीजिए ।" मानवग्रह्यसूत्र एवं काठक. ने 'उपनयन' के स्थान पर 'उपायन' शब्द का प्रयोग किया है। काठक के टीकाकार आदित्यदर्शन ने कहा है कि उपानय, उपनयन, मौञ्चीबन्धन, बटुकरण, व्रतबन्ध समानार्थक हैं। गर्भाधान काल से अथवा जन्म काल से आठवें वर्ष में या पॉचवें वर्ष में ब्राह्मणों का यज्ञोपवीत संस्कार, छठें तथा ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रियों का, तथा आठवें और बारहवें वर्ष में वैश्यों का यज्ञोपवीत संस्कार होता है। उक्त बताये गये काल से द्विगुणित समय व्यतीत हो जाने पर जो यज्ञोपवीत संस्कार होता है उसे विद्वानों ने गौण सामान्य यज्ञोपवीत कहा है।

2.5 शब्दावली

सविता – सूर्य

उपनयन – यज्ञोपवीत या जनेउ

कालान्तर – समय का अन्तर

विप्राणां – ब्राह्मणों का

व्रतबन्ध – यज्ञोपवीत

क्षितिभुजां – क्षत्रिय

गौण – सामान्य

क्षिप्रसंज्ञक – हस्त, अश्विनी एवं पुष्य

सन्तानोत्पत्ति – सन्तान की उत्पत्ति

शुक्लाम्बर – श्वेत वस्त्र

2.6 बोध प्रश्न के उत्तर

1. पास या सन्निकट ले जाना
2. जन्म से पॉचवें या आठवें वर्ष में

3. स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा एवं शतभिषा
4. तीन प्रकार के ऋण - देव, मनुष्य, ऋषि
5. पयोव्रत

2.7 सन्दर्भग्रन्थ सूची

संस्कार विधान – आचार्य गंगा प्रसाद शास्त्री

मुहूर्त्तचिन्तामणि – राम दैवज्ञ – चौखम्भा विद्या प्रकाशन

सनातन संस्कार विधि – आचार्य गंगा प्रसाद शास्त्री

कर्मसमुच्चय - रामजी लाल शास्त्री

2.8 दीर्घोत्तरीय प्रश्न

क. उपनयन से आप क्या समझते है । स्पष्ट कीजिये।

ख. उपनयन महत्व का निरूपण कीजिये।

इकाई – 3 उपनयन विधान

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 उपनयन विधान
बोध प्रश्न
3.4 सारांश
3.5 पारिभाषिक शब्दावली
3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 सहायक पाठ्यसामग्री
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAKA(N)-202 के द्वितीय खण्ड की तीसरी इकाई 'उपनयन विधान' से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने संस्कारान्तर्गत अक्षराम्भ एवं उपनयन संस्कार का अध्ययन कर लिया है। उपनयन संस्कार में अब तक उसकी आवश्यकता एवं महत्व को जाना हैं। यहॉ इस इकाई में आप उपनयन के विधानों को पढ़ेगे।

कर्मकाण्ड में उपनयन संस्कार का विधान बतलाया गया है । विधान से तात्पर्य उपनयन संस्कार करने के दौरान क्या – क्या होता है? उसकी विधि क्या है ? आदि ..... आदि।

प्रस्तुत इकाई में आपके ज्ञानार्थ उपनयन संस्कार के विधानों का उल्लेख किया जा रहा हैं, जिसे पढ़कर आप तत्सम्बिन्धत ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ❖ उपनयन संस्कार के विधि को बता सकेंगे।
- ❖ विधान के अन्तर्गत कथित तथ्यों को समझा सकेंगे।
- ❖ उपनयन का महत्व निरूपण कर सकेंगे।
- ❖ उपनयन विधान के मन्त्रों का ज्ञान कर लेंगे।
- ❖ उपनयन के लाभ - हानि की समीक्षा कर सकेंगे।

3.3 उपनयन विधान

उपनयन' वैदिक परंपरा का एक महत्वपूर्ण संस्कार है। यह एक प्रकार का शुद्धिकरण है जिसे करने से वैदिक वर्णव्यवस्था में व्यक्ति द्विजत्व को प्राप्त होता था जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते, अर्थात् वह वेदाध्ययन का अधिकारी हो जाता था। उपनयन का शाब्दिक अर्थ होता है - नैकट्य प्रदान करना, क्योंकि इसके द्वारा वेदाध्ययन का इच्छुक व्यक्ति वेदशास्त्रों में पारंगत - गुरु / आचार्य की शरण में जाकर एक विशेष अनुष्ठान के माध्यम से वेदाध्ययन की दीक्षा प्राप्त करता था, अर्थात् वेदाध्ययन के इच्छुक विद्यार्थी को गुरु अपने संरक्षण में लेकर एक विशिष्ट अनुष्ठान के द्वारा उसके शारीरिक एवं जन्मजन्मांतर दोषों - कुसंस्कारों /का परिमार्जन कर उसमें वेदाध्ययन के लिए आवश्यक गुणों का आधार करता था, उसे एतदर्थ आवश्यक नियमों की (व्रतों) शिक्षा प्रदान करता था, इसलिए इस संस्कार को व्रतबन्ध"' भी कहा जाता था । फलतः अपने विद्यार्जन काल में उसे एक

नियमबद्ध रुप में त्याग, तपस्या और कठिन अध्यवसाय का जीवन बिताना पड़ता था तथा श्रुतिपरंपरा से वैदिक विद्या में निष्णात होने पर समावर्तन संस्कार के उपरांत अपने भावी जीवन के लिए दिशा लेकर ही अपने घर आता था। उत्तरवर्ती कालों में (दीक्षा) निर्देश - यद्यपि वैदिक शिक्षा - पद्धति की परंपरा के विच्छिन्न हो जाने सेयह एक परंपरा का अनुपालन मात्र रह गया है, किंतु पुरातन काल में इसका एक विशेष महत्व था।

यज्ञोपवीत अथवा उपनयन बौद्धिक विकास के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार है। धार्मिक और आधात्मिक उन्नति का इस संस्कार में पूर्णरूपेण समावेश है। हमारे मनीषियों ने इस संस्कार के माध्यम से वेदमाता गायत्री को आत्मसात करने का प्रावधान दिया है। आधुनिक युग में भी गायत्री मंत्र पर विशेष शोध हो चुका है। गायत्री सर्वाधिक शक्तिशाली मंत्र है। यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं अर्थात् यज्ञोपवीत जिसे जनेऊ भी कहा जाता है अत्यन्त पवित्र है। प्रजापति ने स्वाभाविक रूप से इसका निर्माण किया है। यह आयु को बढ़ानेवाला, बल और तेज प्रदान करनेवाला है। इस संस्कार के बारे में हमारे धर्मशास्त्रों में विशेष उल्लेख है। यज्ञोपवीत धारण का वैज्ञानिक महत्व भी है। प्राचीन काल में जब गुरुकुल की परम्परा थी उस समय प्राय: आठ वर्ष की उम्र में यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हो जाता था। इसके बाद बालक विशेष अध्ययन के लिये गुरुकुल जाता था। यज्ञोपवीत से ही बालक को ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी जाती थी जिसका पालन गृहस्थाश्रम में आने से पूर्व तक किया जाता था। इस संस्कार का उद्देश्य संयमित जीवन के साथ आत्मिक विकास में रत रहने के लिये बालक को प्रेरित करना है।

यज्ञोपवीत का प्रयोजन –

आचार्य गृह में जाने पर, बालक को अपना शिष्य बनाते समय आचार्य यज्ञोपवीत धारण कराता है। यह जहॉ, आचार्य के शिष्य वर्ग में प्रवेश का एक चिन्ह हैं वहॉ यह अन्य भी कई महत्वपूर्ण कर्तव्यों का प्रतीक है।

यज्ञोपवीत संस्कार अथवा मौञ्जी – बन्धन को बालक का दूसरा जन्म बताया गया है। यह उसके ब्रह्मचर्यव्रत एवं विद्याध्ययन का प्रतीक है।

तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है –

जायमानो वै ब्राह्मण: त्रिभि: ऋणै: ऋणव जायते। ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्य:, यज्ञेन देवेभ्य:, प्रजया पितृभ्य:। एष वै अनृणो य: पुत्री यज्वा, ब्रह्मचारिवासी।

अभिप्राय यह है कि मनुष्य पर तीन ऋणों का भार होता है वह ब्रह्मचर्य का पालन कर ऋषि ऋण को उतारता है, गृहस्थ धर्म के पालन पूर्वक सन्तानोत्पत्ति से पितृ ऋण और यजन द्वारा देवऋण से

उत्रऋण होता है।

इन तीन ऋणों की स्मृति यज्ञोपवीत के तीन सूत्रों से होती रहती है ।

अथवा एक ब्रह्मग्रन्थि में जोड़े गये यज्ञोपवीत के तीन तार ज्ञान, कर्म और उपासना-इन त्रिविध कर्तव्यों के साथ – साथ पालन के प्रतीक हैं। एक सूत्र के टूट जाने पर ही यज्ञसूत्र खण्डित माना जाता है। इसी प्रकार ज्ञान – कर्म उपासना में से एक को भी भूल जाना व्रत को खण्डित कर देना है प्राचीन समय में विद्यार्थी इस विद्या – चिन्ह को अपने वस्रों के उपर ही धारण करते थे। महाभारत में एक स्थल पर वर्णन हैं –

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लयज्ञोपवीतवान् ।

शुक्लकेशः सितश्मश्रु शुक्लमाल्यानुलेपनः ।।

अर्थात् वृद्ध द्रोणाचार्य श्वेत वस्त्रों पर श्वेत यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे।

विधि-

उपवास तथा व्रत –

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार –

पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः।

शतपथ ब्राह्मण के वचनानुसार जिस दिन बालक का उपनयन संस्कार कराना हो उससे तीन अथवा एक दिन पहले तीन अथवा एक व्रत बालक को करावे। इस समय ब्राह्मण बालक को दुग्ध पर, क्षत्रिय बालक को यवार्गू (जौ का दलिया) पर और वैश्य बालक को श्रीखण्ड पर रखे।

गायत्री जप

आचार्य के समीप उपनयन के नियत शुभदिन से एक दिन पूर्व यजमान पत्नी और उपनेय बालक सहित मंगल स्नान कर, शुद्ध वस्र धारण कर अग्निहोत्रशाला से भिन्न मण्डप में पूर्वाभिमुख शुभासन पर बैठ, दक्षिण में पत्नी और उसके दक्षिण में बालक को बैठा उपनयन कराने के अपने अधिकार की सिद्धि के लिए तथा बालक के अब तक के यथेष्ठाचारण के दोष निवृत्ति के लिए इस प्रकार संकल्प करें –

यजमान - कृच्छ्रत्रयात्मकप्रायश्चितप्रत्याम्नाय गोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतद्रव्य दानपूर्वकं द्वादश सहस्रं द्वादशाधिकसहसंवागायत्रीजपमहं ब्राह्मणद्वारा कारयिष्ये ।

कुमारः - मम कामचारकामवादकामभक्षणादिदोषपरिहारार्थं

कृच्छ्रत्रयात्मकप्रायश्चितप्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतद्रव्यदानपूर्वकं द्वादशसहस्रं द्वादशाधिकसहस्रं वा ब्राह्मणद्वारा गायत्री जपं कारयिष्ये ।

संकल्प करके गोदान करावें और १२००० अथवा १०१२ गायत्री का जप करावें।

गणपति पूजनादि

पश्चात् बालक के उपनयन संस्कार का संकल्प कर, संकल्प पूर्वक गणपतिपूजन, स्वस्ति, पुण्याहवाचन, मातृकापूजन एवं आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिए।

मुंडनादि –

संस्कार के दिन संकल्प पूर्वक कुमार का संस्कारांगभूत मुंडन कराकर क्रम से ३ ब्राह्मणों और कुमार को भोजन कराकर बाहर शाला में पंचभू संस्कार एवं अग्नि की स्थापना कर आचार्य के समीप ले आवे । इस समय बालक शुद्ध वस्त्रादि पहने हो ।

आचार्य द्वारा वस्त्रादि धारण कराना -

संस्कार्य कुमार को आचार्य के दाहिने ओर, अग्नि के पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठाकर विप्रजन आर्शीवाद दें । तब आचार्य बालक से ये वाक्य कहलावें –

बालक – ब्रह्मचर्यमागाम्, ब्रह्माचार्यसानि।

अब आचार्य निम्नलिखित मंत्र पढ़कर ब्रह्मचारी को कटिसूत्र तथा कौपीन आदि वस्त्र देवे और आचमन करावे -

ऊँ येनेन्द्राय वृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम् । तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे।

मेखला धारण –

आचार्य निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर अथवा मौन ही ब्रह्मचारी के जितने प्रवर हों उतनी गांठवाली मूंज आदि की मेखला ब्रह्मचारी के कटिभाग में प्रदक्षिणा क्रम से तीन बार लपेट बांधे –

ऊँ इयं दुरूक्रं परिवधामाना वर्णं पवित्रं पुनतीम आगात् । प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसादेवी सुभगा मेखलेयम् ।

अथवा –

ऊँ युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उश्रेयान् भवति जायमानः । तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ।

ब्राह्मणों को संकल्प कर यज्ञोपवीत और बर्तन दें।

यज्ञोपवीत संस्कार –

निम्न तीन मन्त्रों को पढ़कर आचार्य यज्ञोपवीत का संस्कार करें –

ऊँ आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न उर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे।

ऊँ यो व: शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न: । उशतीरिव मातर: ।

तस्मा अरंगमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च न: ।।

यज्ञोपवीत में अंगूठा फिराना –

नीचे लिखे तीन मन्त्र पढ़ता हुआ आचार्य यज्ञोपवीत में अंगूठा फिरावे : -

ऊँ ब्रह्म यज्ञानां प्रथमम्पुरस्ताद् विसीमत: सुरूचोवेन आव: । स बुघ्न्या उपमा अस्य विष्ठा: सतश्च योनिमसतश्च विव: ।

ऊँ इदं विष्णुविचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पा गूँ सुरेश्वा: ।।

ऊँ नमस्ते रूद्र मन्यव उतोत इषवे नम: बाहुभ्यामुत ते नम: ।।

तन्तुओं में देवताविन्यास –

अब आचार्य यज्ञोपवीत के नौ तन्तुओं में ओंकारादि नौ देवों का विन्यास करें-

ओंकारं प्रथमे तन्तौ विन्यस्यामि ।

अग्नि द्वितीये तन्तौ विन्यस्यामि ।

नागांस्तृतीये तन्तौ विन्यस्यामि ।

सोमं चतुर्थे तन्तौ विन्यस्यामि ।

इन्द्रं पंचमे तन्तौ विन्यस्यामि ।

प्रजापतिं षष्ठे तन्तौ विन्यस्यामि ।

वायुं सप्तमे तन्तौ विन्यस्यामि ।

सूर्यं अष्टमे तन्तौ विन्यस्यामि ।

विश्वेदेवान् नवमे तन्तौ विन्यस्यामि ।

इसके पश्चात् यज्ञोपवीत को देखता हुआ दस बार गायत्री मन्त्र का पाठ करे और नीचे लिखे मन्त्र का पाठ करता हुआ उसे सूर्य को दिखावे –

ऊँ उपयाम गृहीतोऽसि सावित्रोऽसि च नोधाश्च नोधा असि च नो मयि धेहि । जिन्व यज्ञ जिन्व यज्ञ पतिं भगाय देवाय तवा सवित्रे ।।

यज्ञोपवीत धारण –

आचार्य ब्रह्मचारी कुमार के हाथ में यह मन्त्राभिपूत यज्ञा सूत्र दे और ब्रह्मचारी निम्नलिखित मन्त्र पढ़ता हुआ उसे दाहिने बाहु को उठाकर बांये कंधे से पहने ।

ऊँ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्रयं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तुतेज: यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ।।

दण्ड धारण –

आचार्य मौन ही बालक को दण्ड धारण कराये-

ब्रह्मचारी निम्न मन्त्र पढ़ता हुआ दण्ड को ग्रहण करे –

ॐ यो मे दण्ड: परापतदवैहायसोऽधिभूम्याम्। तमहं पुनराददे आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥

सूर्यावलोकन –

आचार्य निम्न मन्त्र से अपनी अंजलि के जल से तीन बार ब्रह्मचारी की अंजलि को भरे –

ॐ आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न उर्जेदधातनमहेरणाय चक्षसे।

ॐ यो व: शिवतमोरसस्तस्य भाजयतेह न:। उशतीरिवमातर: ॥

ॐ तस्मा अरंगमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च न ॥

जल से बालक की अंजुलि भर कर आचार्य बालक को सूर्यदर्शन के लिए कहे। बालक तच्चक्षु इत्यादि मन्त्र पढ़ता हुआ सूर्यदर्शन करे। पुन: उसी क्रम में सूर्योपस्थान करना चाहिये।

अग्नि पर्युक्षण-

कुमार प्रदक्षिणा क्रम से अग्नि का पर्युक्षण कर आचार्य के बायीं ओर बैठ जावे और फूल चन्दन – ताम्बूल और कपड़े आदि लेकर ब्रह्मा का वरण आदि कुशकण्डिकादि होम की सम्पूर्ण विधि को बर्हिहोम तक सम्पूर्ण करे।

आचार्य की शिक्षा –

पश्चात् आचार्य कुमार को निम्नलिखित उपदेश दे –

आचार्य - ब्रह्मचार्यसि ।

ब्रह्मचारी - भवानि।

आचार्य- अपोऽशान।

ब्रह्मचारी - अशानि।

आचार्य - कर्म कुरू।

ब्रह्मचारी – करवाणि ।

आचार्य - मा दिवा स्वाप्सी:।

ब्रह्मचारी – न स्वप्नानि।

आचार्य - वाचं यच्छ।

ब्रह्मचारी – यच्छानि।

आचार्य अध्ययनं सम्पादय।

ब्रह्मचारी – सम्पादयानि।

आचार्य - समिधमाधेहि।

ब्रह्मचारी - आदधानि।

आचार्य - अपोऽशान।

ब्रह्मचारी - अशानि।

पश्चात् संकल्पादि कर्म विधि से आचार्य पूजन करना चाहिये।

गायत्री पूजन कर गायत्री उपदेश सुनना चाहिये।

पुन:आचार्य उपदेश के रूप में ब्रह्मचारी को गायत्री प्रदान करता है।

गायत्री की आवृत्ति का प्रकार इस प्रकार है –

ऊँ भूर्भुव: स्व: । तत्सवितुर्वरेण्यम्।

ऊँ भूर्भुव: स्व: । भर्गोदेवस्य धीमहि।

ऊँ भूर्भुव: स्व: । धियो यो न: प्रचोदयात्॥ इयमेकावृत्ति:।

ऊँ भूर्भुव: स्व: । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। ऊँ भूर्भुव: स्व: धियो यो न: प्रचोदयात्। इति द्वितीयाऽऽवृत्ति:।

ऊँ भूर्भुव: स्व: । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्।

इस प्रकार गायत्री मन्त्र का पाठ साथ – साथ शिष्य भी करे। अन्त में दोनों मिलकर ओं स्वस्ति उच्चारण करें।

अथ समिदाधानम् -

इस कर्म में ब्रह्मचारी आचार्य के दाहिनी ओर अग्नि से पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठकर घृताक्त अरण्णों के कण्डों की 5 आहुतियॉ निम्नलिखित 5 मन्त्रों से दे : -

ऊँ अग्ने सुश्रव: सुश्रवसं मा कुरू स्वाहा।

ऊँ यथात्वमग्ने सुश्रव: सुश्रवा असि स्वाहा।

ऊँ एवं मा गूॅ सुश्रव: सौश्रवसं कुरू स्वाहा।

ऊँ यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि।

ऊँ एवमहं मनुष्याणां वेदस्रू निधिपो भूयासम्।

इस प्रकार अग्नि प्रज्वलित कर दायें हाथ से किसी छोटे पात्र में जल लेकर दायी – दायीं ओर इस क्रम से अग्नि के चारो ओर जल सेचन करें।

फिर खड़ा रहकर अपनी विलस्त भर ढाक की तीन घी में भिगोई हुईए समिधाओं का एक एक

करके हवन करे। इस समय निम्न मन्त्र को पढे –

ऊँ अग्नये समिधमाहार्षं वृहते जातवेदसे यथा त्वमग्ने समिध समिध्यस एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसा न्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्वरून्नदो भूयासम्।

ऊँ एषाते अग्ने समित्त्या वर्धस्व चाप्यायस्व वर्धिषीमहि च वयमाप्यासिषीमहि स्वाहा।

पुन: बैठकर पूर्वोक्त अग्ने सुश्रव: इत्यादि पॉच मन्त्र से अग्नि में सूखे कण्डे डाले और अग्नि के चारों और जलसिंचन करे । फिर मुख तथा सभी अंगो को स्पर्श करे।

इसके पश्चात् ब्रह्मचारी वैश्वानर और सूर्य का अभिवादन कर आचार्य माता – पिता आदि गुरूजनों को यथायोग्य नमस्कार करें।

भिक्षाविधि -

ब्रह्मचारी भिक्षा पात्र हाथ में लेकर ब्राह्मण कुमार हो तो भवति भिक्षां देहि। क्षत्रिय हो तो भिक्षां भवति देहि। वैश्य कुमार हो तो भिक्षां देहि भवति कहता हुआ भिक्षा मांगे । प्रथम उन स्त्रियों से भिक्षा मांगे जो निषेध न करें। पहले माता से ही भिक्षा मांगे। माता न हो तो सगी बहन अथवा मौसी से भिक्षा मांगे । तीन छ: बारह अथवा 12 से अधिक स्त्रियों से भिक्षा मांग कर लावे। जिस – जिस से भिक्षा मांगे मिलने पर ऊँ स्वस्ति आशीर्वचन कहकर भिक्षा ग्रहण करे। पश्चात् इस भिक्षा को आचार्य को समर्पित करे और उसकी आज्ञा से भक्षण करे । भिक्षा में पका हुआ अन्न ही समझना चाहिये।

भोजन कर लेने के पश्चात् सायंकाल सूर्यास्त तक मौन रहे। यदि सामर्थ्य हो तो बैठे लेटे नहीं। तदनन्तर सायंकालीन सन्धया कर अग्ने: सुश्रवा: से अग्निप्रज्वलनं से लेकर गुरूओं के अभिवादन तक की क्रिया करके मौनव्रत को समाप्त कर दे।

उपदेश विधि -

इसके पश्चात् आचार्य उपनयन से लेकर समावर्तन संस्कार पर्यन्त करने योग्य कर्तव्यों का उपदेश करे। ये उपदेश संक्षेप में निम्नलिखित है –

भूमौ शयनम् । अक्षारलवणाशनम् । दण्डधारणमग्निपरिचरणम् । गुरूशुश्रूषा भिक्षाचार्या । मधुमांसमज्जनोपर्यासनस्त्रीगमननृतादत्तादानानि वर्जयेत् । अष्टाचत्वारिंशतं वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यं चरेत् । द्वादश द्वादश वा प्रतिवेदम्। यावद् ग्रहणं वा। आचार्येणाहूत उत्थाय प्रतिश्रृणुयात्। शयानं चेदासीन आसीनं चेत्तिष्ठन्तिष्ठन्तं चेदभिक्रामन्नभिक्रामंतं चेदभिधावन् । स एवं वर्तमानोऽमुत्राद्य वसत्यमुत्राद्य वसतीति तस्य स्नातकस्य कीर्तिर्भवति।

अर्थात् ब्रह्मचारी पृथ्वी आदि कठोर शय्या पर सोये । क्षार या लवण न खाये। दण्डधारण हवन गुरूसेवा भिक्षाचरण आदि उसके नित्य के कार्य है। मधुमांसभोजन गहरे जल में स्नान स्त्री सेवन असत्य व्यवहार अदत्त का ग्रहण्सा आदि कार्य कभी न करे । 48 वर्ष अर्थात् प्रत्येक वेद के लिए 12 - 12 वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करे अथवा जितना रख सके । आचार्य बुलावे तो उठकर उत्तर दे। सो रहे हों तो बैठकर बैठें हो तो समीप ठकर कर ठहरे हों तो पास पहुॅचकर चल पड़े तो हो तो दौडकर पास पहुॅचकर उत्तर दे। जो इस प्रकार ब्रह्मचर्य काल को व्यतीत करता है उसकी धूम मच जाती है। इत्यादि।

अन्त में आये हुए विप्रजन आ ब्रह्मन ब्राह्मणो इत्यादि मन्त्रपूर्वक आर्शीवाद दें और यजमान आचार्य आदि का गन्धादि द्वारा पूजन कर दक्षिणा से उनका सम्मान कर विदा करे। मातृगणादि देवों को विसर्जित करे तथा च यथाशक्ति विप्रों को भोजन करावे।

उपनयन में ग्रहों के अशुभ स्थान विचार –

कवीज्य चन्द्र लग्नपा रिपौ मृतौ व्रतेऽधमा: ।

व्ययेऽब्ज भार्गवौ तथा तनौ मृतौ सुते खला: ।।

व्रतबन्ध में लग्न से छठें, आठवें, भाव में शुक्र, गुरू, चन्द्रमा और लग्नेश अशुभ होते हैं। चन्द्रमा और शुक्र बारहवें भाव में अशुभ होते हैं तथा अशुभग्रह लग्न, अष्टम एवं पंचम भावों में अशुभ होते हैं।

लग्नशुद्धि विचार –

व्रतबन्धेऽष्टषड्रिष्फवर्जिता: शोभना: शुभा: ।

त्रिषडाये खला: पूर्णो गोकर्कस्थो विधुस्तनौ ।।

व्रतबन्ध काल में लग्न से ६,८,१२ भावों को छोड़कर शेष भावों में शुभ ग्रह, ३,६,११ भावों में पापग्रह तथा लग्नस्थ पूर्ण चन्द्रमा वृष अथवा कर्क राशि में स्थित हो तो शुभ होता है।

व्रतबन्ध में जन्ममास विचार –

जन्मर्क्षमासलग्नादौ व्रते विद्याधिको व्रती ।

आद्यगर्भेऽपि विप्राणां क्षत्रादीनामनादिमे ।।

ब्राह्मणों के प्रथम गर्भ से उत्पन्न बालक का उपनयन जन्मनक्षत्र, जन्म मास, जन्म लग्न आदि में भी करने से वटु बालक अधिक विद्वान होता है। क्षत्रिय और वैश्यों के प्रथम गर्भ से उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र को छोड़कर द्वितीय आदि पुत्रों का यज्ञोपवीत जन्म लग्न, जन्ममास, एवं जन्म नक्षत्र में करने से वे विद्वान होते है।

निषिद्धकाल –

कृष्णे प्रदोषेऽनध्याये शनौ निश्यपराह्णके ।

प्राक् सन्ध्यागर्जिते नेष्टो व्रतबन्धो गलेग्रहे ।।

कृष्णपक्ष के प्रथम तृतीयांश प्रतिपदा से पंचमी तक छोड़कर अर्थात् षष्ठी से अमावस्या पर्यन्त, प्रदोष काल, अनध्याय , शनिवार, रात्रिकाल, अपराह्ण जिस दिन प्रात:काल बादलों का गर्जन हो तथा गलग्रह संज्ञक १,४,७,८,९,१३,१४,१५ तिथियों में व्रतबन्ध शुभ नहीं होता।

आश्वलायनगृह्यसूत्र में उपनयन संस्कार का संक्षिप्त विवरण दिया हुआ है। उपनयन विधि का-विस्तार आपस्तम्बगृह्यसूत्र, हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र एवं गोभिलगृह्यसूत्र में पाया जाता है।

बोधप्रश्न

1. व्यक्ति को द्विजत्व प्राप्त कराने वाला संस्कार का क्या नाम है।
2. यज्ञोपवीत कर्म से किसका धारण होता है।
3. यज्ञोपवीत के तीन सूत्रों में क्या निहित होता है।
4. 'कर्म कुरू' का अर्थ है।
5. व्रतबन्ध में चन्द्रमा और शुक्र बारहवें भाव में हो तो क्या होता है।

3.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि उपनयन' वैदिक परंपरा का एक महत्वपूर्ण संस्कार है। यह एक प्रकार का शुद्धिकरण है जिसे करने से वैदिक वर्णव्यवस्था में व्यक्ति द्विजत्व को प्राप्त होता था जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते, अर्थात् वह वेदाध्ययन का अधिकारी हो जाता था। उपनयन का शाब्दिक अर्थ होता है - नैकट्य प्रदान करना, क्योंकि इसके द्वारा वेदाध्ययन का इच्छुक व्यक्ति वेदमें पारंगत शास्त्रों - गुरु / आचार्य की शरण में जाकर एक विशेष अनुष्ठान के माध्यम से वेदाध्ययन की दीक्षा प्राप्त करता था, अर्थात् वेदाध्ययन के इच्छुक विद्यार्थी को गुरु अपने संरक्षण में लेकर एक विशिष्ट अनुष्ठान के द्वारा उसके शारीरिक एवं जन्मजन्मांतर दोषों - रोंकुसंस्का / का परिमार्जन कर उसमें वेदाध्ययन के लिए आवश्यक गुणों का आधार करता था, उसे एतदर्थ आवश्यक नियमों की (व्रतों) शिक्षा प्रदान करता था, इसलिए इस संस्कार को व्रतबन्ध"' भी कहा जाता था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार – **पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्य: ।** शतपथ ब्राह्मण के वचनानुसार जिस दिन बालक का उपनयन संस्कार कराना हो उससे तीन अथवा एक दिन पहले तीन अथवा एक व्रत बालक को करावे। इस समय ब्राह्मण बालक को

दुग्ध पर, क्षत्रिय बालक को यवार्गू (जौ का दलिया) पर और वैश्य बालक को श्रीखण्ड पर रखे। इस प्रकार आपने उपनयन विधि का अध्ययन कर लिया है।

3.5 शब्दावली

द्विज – ब्राह्मण

संस्काराद् – संस्कार से

वेद – ऋग्वेद, यजु , साम एवं अथर्व वेद

शास्त्र – छ:

वेदाध्ययन – वेद का अध्ययन

कुसंस्कार – बुरे कर्म से युक्त

कवी – शुक्र

इज – वृहस्पति

रिपु – शत्रु

त्रिषडाय – 3,6,11

विधु – चन्द्रमा

3.6 बोध प्रश्न के उत्तर

1. उपनयन संस्कार
2. गायत्री का
3. ज्ञान, कर्म एवं उपासना
4. कर्म करो
5. अशुभ

3.7 सन्दर्भग्रन्थ सूची

पारस्कर गृह्यसूत्र -

संस्कारदीपक -

हिन्दू संस्कार -

कर्मसमुच्चय -

3.8 दीर्घोत्तरीय प्रश्न

क. उपनयन विधि का विस्तृत वर्णन कीजिये ।

ख. उपनयन निहित कर्मो का उल्लेख कीजिये ।

इकाई – 4 वेदारम्भ एवं समावर्तन

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 वेदारम्भ एवं समावर्तन
बोध प्रश्न
4.4 सारांश
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक पाठ्यसामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAKA(N)-202 के दूसरी खण्ड की चौथी इकाई 'वेदारम्भ एवं समावर्तन' से सम्बन्धित है। इसके पूर्व की इकाई में आपने उपनयन विधान का अध्ययन कर लिया है। अब यहॉ प्रस्तुत इकाई में वेदारम्भ एवं समावर्तन संस्कार का अध्ययन करेंगे।

संस्कारों में वेदारम्भ एवं समावर्तन का महत्वपूर्ण स्थान हैं। जब बालक का उपनयन संस्कार हो जाता है तब वह वेदाध्ययन करने के प्रवृत्त होता है। वेदाध्ययन हेतु वेदारम्भ संस्कार किया जाता है उसी क्रम में समावर्तन संस्कार का भी विधान हैं।

प्रस्तुत इकाई में पाठकों के लिए वेदारम्भ एवं समावर्तन संस्कार का उल्लेख कियाजा रहा है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- वेदारम्भ संस्कार को समझ लेंगे।
- वेदारम्भ संस्कार के प्रयोजन को समझा सकेंगे।
- वेदारम्भ संस्कार का महत्व निरूपण कर सकेंगे।
- समावर्तन क्या है। समझा सकेंगे।
- समावर्तन संस्कार कब होता है। बता सकेंगे।

4.3 वेदारम्भ एवं समावर्तन

वेदारम्भ संस्कार ज्ञानार्जन से सम्बन्धित है। वेद का अर्थ होता है ज्ञान और वेदारम्भ के माध्यम से बालक अपने ज्ञान को अपने अन्दर समाविष्ट करना शुरू करे यही अभिप्राय है इस संस्कार का। शास्त्रों में ज्ञान से बढ़कर दूसरा कोई प्रकाश नहीं समझा गया है। स्पष्ट है कि प्राचीन काल में यह संस्कार मनुष्य के जीवन में विशेष महत्व रखता था। यज्ञोपवीत के बाद बालकों को वेदों का अध्ययन एवं विशिष्ट ज्ञान से परिचित होने के लिये योग्य आचार्यो के पास गुरुकुलों में भेजा जाता था। वेदारम्भ से पहले आचार्य अपने शिष्यों को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने एवं संयमित जीवन जीने की प्रतिज्ञा कराते थे तथा उसकी परीक्षा लेने के बाद ही वेदाध्ययन कराते थे। असंयमित जीवन जीने वाले वेदाध्ययन के अधिकारी नहीं माने जाते थे। हमारे चारों वेद ज्ञान के अक्षुण्ण भंडार हैं।

गुरुकुल से विदाई लेने से पूर्व शिष्य का समावर्तन संस्कार होता था। इस संस्कार से पूर्व ब्रह्मचारी का

केशान्त संस्कार होता था और फिर उसे स्नान कराया जाता था। यह स्नान समावर्तन संस्कार के तहत होता था। इसमें सुगन्धित पदार्थो एवं औषधादि युक्त जल से भरे हुए वेदी के उत्तर भाग में आठ घड़ों के जल से स्नान करने का विधान है। यह स्नान विशेष मन्त्रोच्चारण के साथ होता था। इसके बाद ब्रह्मचारी मेखला व दण्ड को छोड़ देता था जिसे यज्ञोपवीत के समय धारण कराया जाता था। इस संस्कार के बाद उसे विद्या स्नातक की उपाधि आचार्य देते थे। इस उपाधि से वह सगर्व गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकारी समझा जाता था। सुन्दर वस्त्र व आभूषण धारण करता था तथा आचार्यो एवं गुरुजनों से आशीर्वाद ग्रहण कर अपने घर के लिये विदा होता था।

पारम्पर्यागतो येषां वेद: सपरिवृंहण:।

यच्छाखाकर्म कुर्वीत तच्छाखाध्ययनं तथा।।

किसी भी शुभ दिन अपनी शाखा के अध्ययन के साथ वेदाध्ययन का आरम्भ किया जाता है। प्राय: यह संस्कार उपनयन संस्कार के साथ ही किया जाता है। उपर उद्धृत वसिष्ठ श्लोक के अनुसार जिस कुल में जिस–जिस वेदशाख के मन्त्रों से यज्ञोपवीत आदि संस्कार होते रहते हैं उस कुल में पहले उस वेद का अध्ययन आरम्भ करना चाहिये, उस वेद की समाप्ति पर दूसरे वेद का अध्ययन आरम्भ करना चाहिए।

विधि –

आचार्य – आचमन, प्राणायम, गणपति पूजनादि कर देशकाल के कीर्तन सहित ऋग्वेदादि के अध्यापन का संकल्प दे। पुन: पंचभू संस्कार पूर्वक लौकिकाग्नि की स्थापना कर कुमार को बुलाकर अग्नि से पश्चिम दिशा में अपने से बायें बैठाये और आज्य भागाहुति पर्यन्त होमविधि पूर्ण करें।

विशेष आहुति -

इसके पश्चात् यदि ऋग्वेद आरम्भ करना हो तो नीचे लिखी दो आहुतियॉ दे –

ॐ पृथिव्यै स्वाहा इदं पृथिव्यै न मम।

ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये न मम।

यदि यजुर्वेद आरम्भ करना हो तो ये आहुतियॉ दे : -

ॐ अन्तरिक्षाय स्वाहा। इदमन्तरिक्षाय नम मम।

ॐ वायवे स्वाहा। इदं वायवे न मम ।।

यदि सामवेद आरम्भ करना हो तो निम्नलिखित आहुतियॉ दे –

ॐ दिवे स्वाहा। इदं दिवे न मम।

ॐ सूर्याय स्वाहा । इदं सूर्याय न मम ॥

यदि अथर्ववेद आरम्भ करना हो तो निम्न आहुतियॉ दे : -

ॐ दिग्भ्य: स्वाहा । इदं दिग्भ्य: न मम।

ॐ चन्द्रमसे स्वाहा । इदं चन्द्रमसे न मम ॥

दो – दो आहुतियों के पश्चात् नीचे लिखी नौ आहुतियॉ दे : -

ॐ ब्रह्मणे स्वाहा। इदं ब्रह्मणे न मम।

ॐ छन्दोभ्य: स्वाहा। इदं छन्दोभ्य: न मम।

ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम।

ॐ देवेभ्य: स्वाहा। इदं देवेभ्य: न मम।

ॐ ऋषिभ्य: स्वाहा। इदं ऋषिभ्य: न मम।

ॐ श्रद्धायै स्वाहा। इदं श्रद्धायै न मम।

ॐ मेधायै स्वाहा। इदं मेधायै न मम।

ॐ सदसस्पतये स्वाहा। इदं मेधायै न मम।

ॐ अनुमतये स्वाहा। इदं अनुमतये न मम।

यदि चारों वेदों को एक साथ आरम्भ करे तो उपर लिखी प्रत्येक वेद की दो – दो आहुतियों के पश्चात् ॐ ब्रह्मणे स्वाहा आदि आहुतियॉ दे।

इसके पश्चात् महाव्याहति आदि स्विष्टकृत पर्यन्त दस आहुति दे और संश्रव प्राशन आदि सम्पूर्ण सामान्य होमविधि को पूराकर वेदारम्भ संस्कार को समाप्त करे। पश्चात् मातृगण आदि देवताओं का विसर्जन कर विप्रों को भोजन कराये।

आजकल देशकाल की प्रथा के अनुसार काशी अथवा काश्मीर गमन आचार्य कराते हैं। यह रीति सूत्रकारों के अनुसार नहीं है। वेदारम्भ संस्कार का शुद्ध अर्थ ही यह है कि जब कुमार वेदाध्ययन आरम्भ करना चाहे तब वह गुरूचरणों अर्थात गुरूकुल में जाकर वेद का अध्ययन आरम्भ करे। विवाह के समय उपनयन वेदारम्भ और समावर्तन संस्कार करना भी वास्तविक संस्कार का स्मरण कराना ही है।

वेदारम्भ संस्कार के पश्चात् वेदाध्ययन की समाप्ति पर समावर्तन संस्कार होता है, परन्तु मनु आदि शास्त्रकारों ने 16 वें वर्ष में केशान्त संस्कार की भी गणना की है। मनुस्मृति के दूसरे अध्याय में लिखा है –

केशान्त: षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते।

राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्वयधिके ततः ॥

पारस्कर गृह्यसूत्र में चूड़ाकरण के साथ ही केशान्त का उल्लेख हैं। वहॉ लिखा है -

साम्वत्सरिकस्य चूड़ाकरणम् । षोडशवर्षस्य केशान्तः । यथा मंगलं वा सर्वेषाम्।

यह प्रतीत होता है कि चूड़करण और केशान्त का प्रयोजन एक समान है, अतएव केशान्त को अनेक आचार्यों ने पृथक् संस्कार नहीं गणना किया है। 16 वर्ष की आयु बीत जाने पर 17 वें वर्ष में जब, दाढी मूँछ व बगल के बालों को छेदन करवाना आरम्भ करे तब प्रथम छेदन के समय यह विधि की जाती है। पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार चूड़ाकर्म और केशान्त की विधियॉ भी एक समान हैं ।

समावर्तन संस्कार की विधि –

वेदं समाप्य स्नायात् । ब्रह्मचर्यं वा अष्टाचत्वारिंशतेम् । द्वादशकेऽप्येके ॥

वेदाध्ययन की समाप्ति पर यह संस्कार किया जाता है। एक वेद के अध्ययन की समाप्ति हो, दो की हो, तीन की हो, अथवा 48 वर्ष पर्यन्त चारों वेदों के अध्ययन की समाप्ति हो।

आजकल गुरूकुलों और वेदाध्ययन की प्रथा लुप्त हो जाने के कारण उपनयन वेदारम्भ और समावर्तन संस्कार प्रायः एक साथ ही कर लिये जाते हैं। आचार्य की अनुमति मिलने पर ही यह संस्कार होता है।

प्रथम शिष्य से अनुज्ञा मांगे : -

शिष्य - भो आचार्य स्नास्यामि।

आचार्य – स्नाहि।

इस प्रकार अनुज्ञा देकर आचार्य समावर्तन की तैयारी करे। नियत शुभदिन सन्ध्योपासनादि नित्य कर्मों से निवृत्त हो, पत्नी और शिष्य के साथ शुभासन पर बैठकर आचमन – प्राणायाम एवं देश काल के कीर्तन के साथ संकल्प करें –

अस्य शर्मणः गृहस्थाश्रमान्तप्राप्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं समावर्तनाख्यं कर्माहं करिष्ये । तदंगत्वेन च गणपतिपूजनं स्वस्तिपुण्याहवाचनमातृकापूजननान्दीश्राद्धं च करिष्ये।

इस प्रकार संकल्प पढ़ स्वस्तिवाचनादि विधिपूर्वक करे। पश्चात् होमविधि से कुशकण्डिका आदि कर आज्याभागाहुति पर्यन्त सब विधि करे।

स्वशाखावेदाहुतिः -

जिस शाखा का अध्यापन किया हो उसके अनुसार प्रत्येक वेद के लिये दो – दो तथा सात अन्य के लिए नौ आहुति दे। पश्चात् महाव्याहति, सर्वप्रायश्चित और स्विष्ट कृत आहुतियॉ दे। पश्चात्

संश्रव, प्राशन – ब्रह्मा को दक्षिणा दान और प्रणीता के जल से मार्जन आदि कर बर्हिहोम करें। ब्रह्मचारी भी होम करें। इसके पश्चात उपनयन संस्कार में उक्त विधि से समिदा धान अंग स्पर्श, आचार्यादि का अभिवादन आदि की विधि करें। और आचार्य 'आयुष्मान भव' कहकर आर्शीवाद दे।

अभिषेक विधि -

समावर्तन संस्कार की यह विशेष एवं मुख्य विधि है। आचार्यादि आशीर्वाद प्राप्त कर ब्रह्मचारी मण्डपाग्नि से उत्तर में प्रागग्र कुशाएं बिछावे और उन पर दक्षिण से उत्तर की ओर क्रमश: 8 जल भरें घड़े रखे। घड़ों से पूर्व में प्रागग्र बिछाये कुशों पर ब्रह्मचारी पूर्वाभिमुख खड़ा हो जाय और आम के पत्रों द्वारा पहले कलश के जल से अभिषेक करे।

ऊँ ये अप्स्वन्तरग्नय: प्रविष्टा गोह्युपगोह्यो मयूखो मनोहास्खलो विरूजस्तनू दूषुरिन्द्रियहा तान् विजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि।

इस मन्त्र से जल हाथ में लेकर नीचे लिखे मन्त्र से अपने उपर अभिषेक करे : -

ऊँ तेन मामभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ।

अब दूसरे कलश में से पूर्वोक्त ये अप्स्वन्त: मन्त्र पढ़कर जल ग्रहण करे और निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर अभिषेक करे : -

ऊँ येन श्रियमकृणुतां येनावमृशता गॅू सुरान्। येनाक्ष्यावभ्यषिञ्चतां यद्वां तदश्विना यश:।

तीसरी बार भी पूर्वोक्त मन्त्र से जल ग्रहण कर नीचे लिखे मन्त्र से अभिषेक करें : -

ऊँ आपो हि ष्ठा मयोभुवस्तान उर्जे दधात न। महे रणाय चक्षसे।

चौथी बार फिर उसी मन्त्र से चौथे कलश में से जल ग्रहण कर नीचे लिखे मन्त्र से अभिषेक करे: -

ऊँ यो व: शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न:। उशतीरिव मातर:।

पॉचवी बार पंचम कलशस्थ जल को फिर उसी मन्त्र से लेकर नीचे लिखे मन्त्र से अभिषेक करे –

ऊँ तस्मा अरंगमाम वो यस्य क्षयाव जिन्वथ। आपो जनयथा च न:।

अन्म में मौन ही शेष कलशों के जल से अभिषेक करें।

मेखला विसर्जन –

नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर मेखला को सिर के मार्ग से निकाल कर अलग रख दें –

ऊँ उदुत्तमं वरूण पाशमस्मदबाधमं विमध्यम गॅू श्रथाय। अथावयमादित्य व्रते तवा नागसो अदितये स्याम॥

दण्डार्जनादि विसर्जन एवं सूर्योपस्थापन

अब दण्ड, अजिन आदि को मौन ही भूमि पर अलग रख दे और मौन ही दूसरे वस्त्र धारण करें।
अन्त में एक अंगोछा कन्धे पर डाल कर, नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर सूर्य की उपासना करे : -
ॐ उद्यनभ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरूद्भिरस्थात्। प्रातर्यावभिरस्थाद् दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वाविदन्मा गमय । उद्यन भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरूद्भिरस्थाद् दिवायावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं मा कुर्वाविदन्मा गमय । उद्यन भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरूद्भिरस्थात् सायंयावभिरस्थात् सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय।
तत्पश्चात् दधि-तिल-प्राशन-जटा छेदनादि कर्म करते हुए पितृ तर्पण करना चाहिये।

स्नातक नियम –

उक्त कर्मो के पश्चात् आचार्य स्नातक को उन नियमों का उपदेशदे जिनका पालन जीवन में उपयोगी है। नियम इस प्रकार है –
अश्लीलगानवादित्रनृत्यत्याग: । न तत्रगमनम् । क्षेमे सति रात्रौ न ग्रामान्तरे गच्छेत्। न वृथा धावेत्। न कूपेऽवेक्षेत। वृथवृक्षारोहणम् फलत्रोटनं च न कुर्यात्। कुपथा न गच्छेत्। नग्नो न स्नायात्। न सन्धि वेलायां शयीत। न विषमे भूमिं लंघयेत्। अश्लीलमपमानजानकं च वाक्यं नोपवदेत्। उदितास्तमयकाले सूर्यं न पश्येत्। जलमध्ये सूर्यच्छायां न पश्येत् । देवेवर्षति न गच्छेत्। उदके नात्मानं पश्येत्। अजातलोम्नीं प्रमत्तां पुरूषाकृतिं षण्डां च स्त्रियं न गच्छेत्।
इसके पश्चात् आचार्य को यथायोग्य दक्षिणा भेंट करे।

पूर्णाहुति –

अब आचार्य खड़े होकर फल – पुष्पों सहित घृत भरे, स्नातक के दाहिने हाथ से स्पर्श कराये श्रुवा से, निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर पूर्णाहुति दें -
ॐ मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतआजातमग्निम् । कवि गॅू सम्राजमतिथिं जनानामासन्न: पात्र जनयन्ता: देवा: स्वाहा।
फिर श्रुवा से भस्म निकाल नीचे लिखे मन्त्रों को पढ़ते हुए आचार्य एवं शिष्य दायें हाथ की अनामिका अंगुली से ललाट आदि स्थानों पर भस्म का लेप करें : -

ॐ त्र्यायुषं जमदग्ने:	मस्तक पर
ॐ कस्यपस्य त्र्यायुषम्	कण्ठ पर
ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम्	दक्षिण बॉह पर
ॐ तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्	हृदय पर

अन्त में स्नातक, आचार्यादि मान्य जनों का पूजन कर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करे और गणपति

आदि देवताओं का विसर्जन कर, यथा शक्ति ब्राह्मण भोजन कराये ।

बोधप्रश्न

1.वेदारम्भ संस्कार का सम्बन्ध किससे है।

2. किस संस्कार को करने से व्यक्ति को आचार्यों द्वारा स्नातक की उपाधि दी जाती थी।

3. मनु के अनुसार केशान्त संस्कार होता है।

4. चारों वेदों के लिए अध्ययन का समय माना गया है।

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि वेदारम्भ संस्कार ज्ञानार्जन से सम्बन्धित है। वेद का अर्थ होता है ज्ञान और वेदारम्भ के माध्यम से बालक अपने ज्ञान को अपने अन्दर समाविष्ट करना शुरू करे यही अभिप्राय है इस संस्कार का। शास्त्रों में ज्ञान से बढ़कर दूसरा कोई प्रकाश नहीं समझा गया है। स्पष्ट है कि प्राचीन काल में यह संस्कार मनुष्य के जीवन में विशेष महत्व रखता था। यज्ञोपवीत के बाद बालकों को वेदों का अध्ययन एवं विशिष्ट ज्ञान से परिचित होने के लिये योग्य आचार्यो के पास गुरुकुलों में भेजा जाता था। वेदारम्भ से पहले आचार्य अपने शिष्यों को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने एवं संयमित जीवन जीने की प्रतिज्ञा कराते थे तथा उसकी परीक्षा लेने के बाद ही वेदाध्ययन कराते थे। असंयमित जीवन जीने वाले वेदाध्ययन के अधिकारी नहीं माने जाते थे। हमारे चारों वेद ज्ञान के अक्षुण्ण भंडार हैं। गुरुकुल से विदाई लेने से पूर्व शिष्य का समावर्तन संस्कार होता था। इस संस्कार से पूर्व ब्रह्मचारी का केशान्त संस्कार होता था और फिर उसे स्नान कराया जाता था। यह स्नान समावर्तन संस्कार के तहत होता था। इसमें सुगन्धित पदार्थो एवं औषधादि युक्त जल से भरे हुए वेदी के उत्तर भाग में आठ घड़ों के जल से स्नान करने का विधान है। यह स्नान विशेष मन्त्रोच्चारण के साथ होता था। इसके बाद ब्रह्मचारी मेखला व दण्ड को छोड़ देता था जिसे यज्ञोपवीत के समय धारण कराया जाता था। इस संस्कार के बाद उसे विद्या स्नातक की उपाधि आचार्य देते थे। इस उपाधि से वह सगर्व गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकारी समझा जाता था।

4.5 शब्दावली

वेदारम्भ – वेद का आरम्भ

विशिष्ट – मुख्य

असंयमित – जो संयमित न हो

गृहस्थाश्रम – आश्रमों में एक

अग्नये – अग्नि के लिये

अन्तरिक्षयाय – अन्तरिक्ष के लिए

विप्र – ब्राह्मण

श्रद्धायै – श्रद्धा के लिए

षोडश – सोलह

ब्राह्मणस्य – ब्राह्मण के लिए

विधु – चन्द्रमा

4.6 बोध प्रश्न के उत्तर

1. ज्ञानार्जन से
2. समावर्तन संस्कार
3. 16 वें वर्ष में
4. 48 वर्ष

4.7 सन्दर्भग्रन्थ सूची

सनातन संस्कार विधि – आचार्य गंगा प्रसाद शास्त्री

संस्कारदीपक - श्री नित्यानन्द पर्वतीय

हिन्दू संस्कार - डॉ . राजबली पाण्डेय

कर्मसमुच्चय - रामजी लाल शास्त्री

4.8 दीर्घोत्तरीय प्रश्न

क. वेदारम्भ संस्कार विधि लिखिये ।

ख. समावर्तन संस्कार से आप क्या समझते है। स्पष्ट कीजिये।

खण्ड – 3

विवाह प्रकरण

इकाई – 1 विवाह – अर्थ, परिभाषा प्रकार एवं प्रयोजन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 विवाह परिचय

1.4 अर्थ, परिभाषा, प्रकार एवं प्रयोजन

बोध प्रश्न

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAKA(N)-202 के तृतीय खण्ड की पहली इकाई 'विवाह – अर्थ, परिभाषा प्रकार एवं प्रयोजन' से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने संस्कारों में अक्षराम्भ, उपनयन, वेदारम्भ एवं समावर्तन का अध्ययन कर लिया है। यहॉ अब आप विवाह का अध्ययन करेंगे।

विवाह भारतीय सनातन परम्परा के प्रमुख संस्कारों में एक है। विवाह एक ऐसा अटूट बन्धन हैं जिसमें बन्धकर मानव गृहस्थ जीवन में अपना जीवनयापन करता हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ❖ विवाह को परिभाषित कर सकेंगे।
- ❖ विवाह के कितने प्रकार है, बता सकेंगे।
- ❖ विवाह के प्रयोजन को समझा सकेंगे।
- ❖ विवाह के अर्थों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- ❖ विवाह महत्व का प्रतिपादन कर सकेंगे।

1.3 विवाह परिचय

वेदाध्ययन एवं ब्रह्मचर्य व्रत की समाप्ति के पश्चात् समावर्तन संस्कार होने पर जब कुमार घर लौटता है तो प्रजोत्पत्ति की इच्छा से अपने अनुकूल पत्नी का ग्रहण करता है। यह उसका विवाह अथवा उद्वाह कहा जाता है। इस समय जो संस्कार किया जाता है वह विवाह संस्कार कहलाता है।

सूत्रकारों ने प्रत्येक संस्कार का एक निश्चित समय बताया है। इसका मुख्य आधार संस्कार की उपयोगिता है। विवाह संस्कार का ठीक समय जानने के लिए, विवाह के प्रयोजन को समझना चाहिए।

विवाह का प्रयोजन एक सर्वसम्मत सी बात है। कन्या का पिता कन्या दान के समय जो संकल्प पढ़ता है, वह इसके प्रयोजन का सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण है। इस संकल्प में निम्नलिखित शब्द ध्यान देने योग्य है –

अस्या मम कन्याया अनेन वरेण धर्म्यप्रजया उभयोर्वंशयोर्वंशवृद्धयर्थं तथा च मम समस्तपितृणां निरतिशयसानन्द ब्रह्मलोकावाप्त्यादिश्रुतिस्मृतिपुराणादिकन्यादानकल्पोक्तफलप्राप्तये अनेन

वरेणास्यां कन्यायामुत्पादयिष्यमाणसन्तत्यादशपूर्वान्दशपरान्मां चैकविंशतिं पुनरूद्धर्तु ...... इत्यादि।

संकल्प के इन शब्दों से स्पष्ट है कि विवाह संस्कार का मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति द्वारा अपने पितरों का उद्धार करना है इसीलिए सुश्रुतकार कहते हैं -

अथास्मै पंचविंशतिवर्षाय षोडशवर्षां पत्नीमावहेत् । पित्र्यधर्मार्थकामप्रजा: प्राप्स्यतीति ।

ऋग्वेद में बताया गया है –

सोम: प्रथमो विविदे गन्धर्व विविद उत्तर:। तृतीयोऽग्निस्ते पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजा:।
सोमो दद् गन्धवा्रय गन्धर्वोददग्नये। रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ।।

अर्थात् कन्या का प्रथम पति सोम अर्थात् चन्द्रमा है फिर गन्धर्व इसको प्राप्त करता है । तीसरा पालक देवता अग्नि है । चौथा पति मानव है । सौम्य का प्रतिनिधि सोम कन्या को सौम्य गुणों एवं कान्ति से युक्त करके गन्धर्व को सौंपता है, जो अपने क्रम में उसके कण्ठ तालु आदि में स्वर भरता है । इसके पश्चात् इसमें उष्णता का समावेश अग्नि के सम्पर्क से होता है – यह अग्निदेवता पति पत्नी को ऐश्वर्य एवं प्रजा के योग्य बनाते है।

विवाह का शाब्दिक अर्थ है – विशिष्ट वहन, विशिष्ट प्रकारेण वाहयतीति विवाह:। अब प्रश्न उठता है कि किसका वहन? तो जिसके साथ गृहस्थ जीवन में बॅधने व जीवनयापन के लिए वह सम्बन्ध स्थापित करता है। वह एक कन्या होती है, जो विवाह संस्कार के पश्चात् पत्नी की संज्ञा से संबोधित होती है। भारतीय सनातन परम्परा के अनुसार विवाह एक पवित्र बन्धन है, जिसमें मनुष्य बंधकर सुखीपूर्वक गृहस्थ जीवन का संचालन करता है। इस बन्धन में पुरानी रीति के अनुसार दो अपरिचित लोगों का मिलन होता था, सम्प्रति वह बदल गया है। आजकल विवाह पूर्व में ही सम्बन्ध स्थापित कर किया जा रहा है, जिसे प्रेम का नाम दिया जाता है। जो वस्तुत: प्रेम से भिन्न है।

विवाह केवल दो लोगों का मिलन नहीं होता, अपितु दो पवित्र आत्माओं का मिलन होता है । आचार्य रामदैवज्ञ ने मुहूर्त्तचिन्तामणि में विवाह प्रयोजन को बतलाते हुए कहा है कि –

भार्या त्रिवर्ग करणं शुभशीलयुक्ता।
शीलं शुभं भवति लग्नवशेन तस्या:।।
तस्माद्विवाहसमये परिचिन्त्यते हि।
तन्निघ्नतामुपगता सुतशीलधर्मा।।

अर्थात् भार्या त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, एवं काम) को देने वाली, शुभ आचरण से युक्त तथा शीलवती होनी चाहिए। विवाह के समय यह परीक्षण करने का आदेश दिया गया है। यह विचार कर ही

विवाहादि कार्य करने का विधान आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित है।

विवाह के प्रकार -

ब्राह्मं दैवस्तथा चाऽऽर्षः प्राजापत्यतथाऽसुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ।।

1. **ब्राह्म विवाह** –ब्रह्म विधि द्वारा तय की गई विवाह '**ब्रह्म विवाह**' है। या दूसरे शब्दों **में** वर एवं कन्या दोनों पक्षों की सहमति से समान वर्ग के सुयोग्य वर से कन्या का विवाह निश्चित कर देना 'ब्रह्म विवाह' कहलाता है।
2. **देव विवाह** - किसी सेवा कार्य विशेषतः धार्मिक अनुष्ठा नों के मूल्य के रूप में अपनी कन्या को दान में दे देना '**दैव विवाह**' कहलाता है।
3. **आर्ष विवाह** -कन्या पक्ष वालों को कन्या का मूल्य देकर सामान्यतः गोदान करके कन्या से विवाह कर लेना आर्ष विवाह कहलाता है।
4. **प्राजापत्य विवाह** –कन्या की सहमति के बिना उसका विवाह अभिजात्य वर्ग के वर से कर देना '**प्राजापत्य विवाह**' कहलाता है।
5. **गान्धर्व विवाह** –परिवार वालों की सहमति के बिना वर और कन्या का बिना किसी रीति रिवाज के आपस में विवाह कर लेना '**गान्धर्व विवाह**' कहलाता है। जैसे दुष्यंत ने शकुन्तला से '**गान्धर्व विवाह**' किया था , उनके पुत्र भरत के नाम से ही हमारे देश का नाम '**भारतवर्ष**' बना।
6. **असुर विवाह** – आर्थिक रूप से खरीद कर विवाह कर लेना '**असुर विवाह**' कहलाता है
7. **राक्षस विवाह** –कन्या की सहमति के बिना, उसका अपहरण करके जबरन विवाह कर लेना **राक्षस विवाह** कहलाता है।
8. **पैशाच विवाह –** कन्या की मदहोशी, मानसिक स्थित कमजोर होने का फायदा उठाकर उससे शारीरिक सम्बन्ध बना लेना और उससे विवाह करना **पैशाच विवाह** कहलाता है।

विवाह दो आत्माओं का पवित्र मिलन है। दो प्राणी अपने अलग – अलग अस्तित्वों को समाप्त कर एक सम्मिलित इकाई का निर्माण करते है। स्त्री और पुरूष दोनों में परमात्मा ने कुछ विशेषताएँ और कुछ अपूर्णताएँ दे रखी है। विवाह सम्मिलन से एक दूसरे की अपूर्णताओं को अपनी विशेषताओं से पूर्ण करते है। इससे समय तथा व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसलिए विवाह को सामान्यतया मानव जीवन की एक – एक आवश्यकता माना गया है। एक – दूसरे को अपनी योग्यताओं और भावनाओं का लाभ पहुँचाने हेतु गाड़ी में लगे हुए दो पहियों की तरह प्रगति पथ पर

अग्रसर होते जाना विवाह का उद्देश्य है। वासना वैवाहिक जीवन का एक भाग है शारीरिक सुख एवं संतुलित चित्त के लिए यह किया जाता है। दोनों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति संतुलित व संयमित रहे इसके लिए यह क्रिया आवश्यक है।

विवाह के स्वरूप –

विवाह का स्वरूप आज विवाह वासना प्रधान बनते चल जा रहे है। रंग रूप एवं वेश – विन्यास के आकर्षण को पति – पत्नी के चुनाव में प्रधानता दी जाने लगी है, यह प्रवृत्ति बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है। यदि लोग इसी तरह सोचते रहे, तो दाम्पत्य जीवन शरीर प्रधान रहने से एक प्रकार के वैध – व्यभिचार का ही रूप धारण कर लेगा। पाश्चात्य जैसी स्थिति भारत में भी आ जायेगा। शारीरिक आकर्षण की न्यूनाधिकता का अवसर सामने आने पर विवाह शीघ्रता से विच्छेद और सन्धि होते रहेंगे। अभी पत्नी का चुनाव शारीरिक आकर्षण का ध्यान में रखकर किये जाने वाला प्रथा चली है। थोड़े ही दिनों में इसकी प्रतिक्रिया पति के चुनाव में भी सामने आयेगी। तब कुरूप पतियों को कोई पत्नी पसन्द नहीं करेगी और उन्हें दाम्पत्य सुख से वंचित ही रहना पड़ेगा। समय रहते ही इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति को रोका जाना चाहिए और शारीरिक आकर्षण की उपेक्षा कर सद्गुणों तथा सद्भावनाओं को ही विवाह का आधार पूर्वकाल तरह बने रहने देना चाहिए शरीर का नहीं। आत्मा का सौन्दर्य देखा जाना चाहिए और जीवन साथी में जो कमी है, उसे प्रेम सहिष्णुता, आत्मीयता एवं विश्वास की छाया में जितना सम्भव हो सके, सुधारना चाहिए जो सुधार न हो सके, उसे बिना असन्तोष लाये सहन करना चाहिए। इस रीति – नीति पर दाम्पत्य जीवन की सफलता निर्भर है। अतएव पति – पत्नी को एक दूसरे से आकर्षण लाभ मिलने की बात न सोचकर एक दूसरे के प्रति आत्म समर्पण करने और सम्मिलित शक्ति उत्पन्न करने, उसके जीवन विकास की सम्भावनायें उत्पन्न करने की बात सोचनी चाहिए। चुनाव करते समय तक साथी को पसन्द करने न करने की छूट है। जो कुछ देखना – ढूँढना परखना हो वह कार्य विवाह से पूर्व ही समाप्त कर लेना चाहिए। जब विवाह हो गया तो फिर यह कहने की गुंजाइश नहीं रहती कि भूल हो गई, इसलिए साथी की उपेक्षा की जाए। जिस प्रकार के भी गुण – दोष युक्त साथी के साथ विवाह बन्धन में बंधे उसे अपनी और से कर्तव्य पालन समझकर पूरा करना ही एक मात्र मार्ग रह जाता है। इसी के लिए विवाह संस्कार का आयोजन किया जाता है। समाज के सम्भ्रान्त व्यक्तियों की गुरूजनों की, कुटुम्बी सम्बन्धियों की, देवताओं की उपस्थित इसलिए इस धर्मानुष्ठान के अवसर पर आवश्यक मानी जाती है कि दोनों में से कोई इस कर्तव्य बन्धन की उपेक्षा करे तो उसे रोके और प्रताडित करे। पति – पत्नी इन सम्भ्रान्त व्यक्तियों के सम्मुख अपनी निश्चय की प्रतिज्ञा, बन्धन की घोषणा करते है। यह प्रतिज्ञा समारोह की विवाह

संस्कार है। इस अवसर पर दोनों की ही यह भावनायें गहराई तक अपने मन में स्थिर करनी चाहिए कि वे पृथक व्यक्तियों की सत्ता समाप्त कर एकीकरण की आत्मीयता में विकसीत होते है। कोई किसी पर न तो हुकूमत जमायेगा, न अपने अधीन वशवर्ति रखकर अपने लाभ या अहंकार की पूर्ति करनी चाहेंगे। वरन् वह करेगा जिससे साथी को सुविधा मिलती हो। दोनों अपनी इच्छा आवश्यक को गौण और साथी की आवश्यकता को मुख्या मानकर सेवा और सहायता का भाव रखेंगे, उदारता एवं सहिष्णुता बर्तेंगे, तभी गृहस्थी का रथ ठीक तरह आगे बढ़ेगा। इस तथ्य को दोनो भली प्रकार हृदयंगम कर ले और इसी रीति – नीति को आजीवन अपनाये रखने का व्रत धारण करे, इसी प्रयोजन के लिये यह पुण्य संस्कार आयोजित किया जाता है। इस बात को दोनो भली प्रकार समझ ले और सच्चे मन से स्वीकार कर ले, तो ही विवाह बन्धन में बचे। विवाह संस्कार आरम्भ करने से पूर्व या वेदी पर बैठाकर दोनों को यह तथ्य भली प्रकार समझा दिया जाये और उनकी सहमती मॉंगी जाये। यदि दोनों इन आदर्शों को अपनाये रहने की हार्दिक सहमती, स्वीकृति दें, तो ही विवाह संस्कार आगे बढ़ाया जाये।

विवाह प्रयोजन –

प्राचीनकाल में आचार्यों द्वारा विवाह प्रयोजन में उसका मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति कहा गया है। साथ ही गृहस्थ जीवन के सुख – दु:ख में एक सहभागिनी के रूप में पत्नी का महत्वपूर्ण योगदान कहा गया है। जीवन रूपी गाड़ी दो पहिये पर चलती है उसमें एक पुरूष है तो दूसरी स्त्री। दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती है। अत: उक्त कार्य के लिए विवाह आवश्यक है।

प्राचीन इतिहास के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि विवाह ऋतुमती होने पर ही करना चाहिए। नल दमयन्ती, दुष्यंत शकुन्तला और सत्यवान –सावित्री के विवाह तो स्पष्ट ही ऋतुमती कन्याओं के विवाह थे। राम – सीता के विवाह के समय सीता की आयु 6-7 वर्ष की कही जाती है, परन्तु मर्यादा पुरूषोत्तम रामचन्द्र के लिए यह सर्वथा उपयुक्त था कि वे ब्रह्मचर्यव्रत की समाप्ति पर ही विवाह करे। अतएव उनके विषय में ऐसा विचार लाना ही अनुपयुक्त है। उस समय राजकुमारियों के वर्णन में वाल्मीकी रामायण का निम्नलिखित शलोक देने योग्य है –

अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुताश्च ता:।
रेमिरे मुदिता: सर्वा भ्रातृभिर्मुदितै रह: ।

बोध प्रश्न -

1. ऋग्वेद के अनुसार कन्या का प्रथम पति माना जाता है।
2. विवाह के कितने प्रकार है।
3. प्राचीन आचार्यों के अनुसार विवाह का मुख्य प्रयोजन है।
4. वेदाध्ययन एवं समावर्तन के पश्चात् कौन सा संस्कार किया जाता है।
5. विवाह दो आत्माओं का .... मिलन है।

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि वेदारम्भ संस्कार ज्ञानार्जन से सम्बन्धित है। वेद का अर्थ होता है ज्ञान और वेदारम्भ के माध्यम से बालक अपने ज्ञान को अपने अन्दर समाविष्ट करना शुरू करे यही अभिप्राय है इस संस्कार का। शास्त्रों में ज्ञान से बढ़कर दूसरा कोई प्रकाश नहीं समझा गया है। स्पष्ट है कि प्राचीन काल में यह संस्कार मनुष्य के जीवन में विशेष महत्व रखता था। यज्ञोपवीत के बाद बालकों को वेदों का अध्ययन एवं विशिष्ट ज्ञान से परिचित होने के लिये योग्य आचार्यो के पास गुरुकुलों में भेजा जाता था। वेदारम्भ से पहले आचार्य अपने शिष्यों को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने एवं संयमित जीवन जीने की प्रतिज्ञा कराते थे तथा उसकी परीक्षा लेने के बाद ही वेदाध्ययन कराते थे। असंयमित जीवन जीने वाले वेदाध्ययन के अधिकारी नहीं माने जाते थे। हमारे चारों वेद ज्ञान के अक्षुण्ण भंडार हैं। गुरुकुल से विदाई लेने से पूर्व शिष्य का समावर्तन संस्कार होता था। इस संस्कार से पूर्व ब्रह्मचारी का केशान्त संस्कार होता था और फिर उसे स्नान कराया जाता था। यह स्नान समावर्तन संस्कार के तहत होता था। इसमें सुगन्धित पदार्थो एवं औषधादि युक्त जल से भरे हुए वेदी के उत्तर भाग में आठ घड़ों के जल से स्नान करने का विधान है। यह स्नान विशेष मन्त्रोच्चारण के साथ होता था। इसके बाद ब्रह्मचारी मेखला व दण्ड को छोड़ देता था जिसे यज्ञोपवीत के समय धारण कराया जाता था। इस संस्कार के बाद उसे विद्या स्नातक की उपाधि आचार्य देते थे। इस उपाधि से वह सगर्व गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकारी समझा जाता था।

1.5 शब्दावली

षोडश – सोलह (16)

पंचविंशति – 25

सोम – चन्द्रमा

पालक – पालने वाला

त्रिवर्ग – धर्म, अर्थ एवं काम

भार्या – पत्नी

सन्तानोत्पत्ति – सन्तान की उत्पत्ति

परीक्षण – जॉच

धर्मार्थ – धर्म के लिए

एकविंशति – 21

पितृणां – पितरों का

1.6 बोध प्रश्न के उत्तर

1. सोम (चन्द्रमा)
2. आठ
3. सन्तानोत्पत्ति
4. विवाह
5. पवित्र

1.7 सन्दर्भग्रन्थ सूची

सनातन संस्कार विधि – आचार्य गंगा प्रसाद शास्त्री

संस्कारदीपक - श्री नित्यानन्द पर्वतीय

हिन्दू संस्कार - डॉ . राजबली पाण्डेय

कर्मसमुच्चय - रामजी लाल शास्त्री

1.8 दीर्घोत्तरीय प्रश्न

क. विवाह से आप क्या समझते है ? स्पष्ट कीजिये ।

ख. विवाह परिचय देते हुए उसके स्वरूप एवं महत्व का प्रतिपादन कीजिये ।

इकाई - 2 विवाह मुहूर्त्त में शुभाशुभ विवेक

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 विवाह मुहूर्त्त में शुभाशुभ विवेक

बोध प्रश्न

2.4 सारांश

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 सहायक पाठ्यसामग्री

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAKA(N)- 202 के तृतीय खण्ड की दूसरी इकाई 'विवाह मुहूर्त्त में शुभाशुभ विवेक' से सम्बन्धित है। इसके पूर्व की इकाई में आपने विवाह के अर्थ, परिभाषा, प्रकार एवं प्रयोजन को समझ लिया है। यहॉ आप इस इकाई में विवाह मुहूर्त्त के शुभाशुभ कृत्यों का अध्ययन करने जा रहे है।

विवाह में शुभ क्या है, अशुभ क्या है ? इसका विवेचन इस इकाई में किया गया है। विवाह भारतीय सनातन परम्परा का ही नहीं अपितु मानव जीवन का भी एक अद्वितीय संस्कार हैं। अत: विवाह मुहूर्त्त में शुभाशुभ विवेचन परमावश्यक है।

प्रस्तुत इकाई में आपके पठनार्थ एवं ज्ञानार्थ विवाह में शुभाशुभ कर्मों का उल्लेख किया जा रहा हैं।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- ❖ विवाह मुहूर्त्त को बता सकेंगे।
- ❖ विवाह में शुभ क्या है। समझा सकेंगे।
- ❖ विवाह मुहूर्त्त में अशुभ क्या है, समझ लेंगे।
- ❖ विवाह मुहूर्त्त में शुभाशुभ कर्म का विश्लेषण कर सकेंगे।

2.3 विवाह मुहूर्त्त में शुभाशुभ

विवाह मुहूर्त्त में शुभाशुभ विवेचन के पूर्व आइए सर्वप्रथम विवाह मुहूर्त्त को जानते है -

विवाह मुहूर्त्त -

मूल, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, स्वाति, मघा, रोहिणी, इन नक्षत्रों में ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख, मार्गशीर्ष, आषाढ़, इन महीनों में विवाह करना शुभ है। विवाह में कन्या के लिए गुरूबल वर के लिए सूर्यबल और दोनों के लिए चन्द्रबल का विचार करना चाहिए। प्रत्येक पंचांग में विवाह मुहूर्त्त लिखे जाते है। इनमें शुभ सूचक खड़ी रेखाऍ और अशुभ सूचक टेढ़ी रेखाऍ होती है। ज्योतिष में दस दोष बताये गये है। जिस विवाह के मुहूर्त्त में जितने दोष नहीं होते है, उतनी खड़ी रेखाऍ होती है और दोषसूचक टेढ़ी रेखाऍ मानी जाती है। सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त दस रेखाओं का होता है। मध्यम सात आठ रेखाओं का और जघन्य पॉच रेखाओं का होता है। इससे कम रेखाओं के मुहूर्त्त को निन्द्य कहते है।

विवाह में गुरूबल विचार -

वृहस्पति कन्या की राशि से नवम पंचम, एकादश, द्वितीय और सप्तम राशि में शुभ, दशम, तृतीय षष्ठ और प्रथम राशि में दान देने से शुभ और चतुर्थ, अष्टम, एवं द्वादश राशि में अशुभ होता है।

विवाह में चन्द्रबल विचार –

चन्द्रमा वर और कन्या की राशि में तीसरा छठा, सातवॉ , दसवॉ, ग्यारहवॉ शुभ पहला, दूसरा, पॉचवॉ, नौवॉ दान देने से शुभ और चौथा, आठवॉ, बारहवॉ अशुभ होता है। विवाह में अन्धादि लग्न व उनका फल दिन में तुला और वृश्चिक राशि में तुला और मकर बधिर है तथा दिन में सिंह, मेष, वृष और रात्रि में कन्या , मिथुन, कर्क अन्ध संज्ञक है।

दिन में कुम्भ और रात्रि में मीन लग्न पंगु होते है। किसी किसी आचार्य के मत से धनु, तुला एवं वृश्चिक ये अपराह्न में बधिर है। मिथुन, कर्क, कन्या ये लग्न रात्रि में अन्धे होते हैं। सिंह, मेष, एवं वृष लग्न ये दिन में अन्धे है और मकर , कुम्भ, मीन ये लग्न प्रात: में हो तो लग्नकाल दरिद्र दिवान्ध विधवाकन्या, रात्रान्ध लग्न में हो तो सन्तति भरण, पंगु में हो तो धन नाश होता है।

विवाह लग्न विचार -

विवाह के शुभ लग्न तुला, मिथुन,कन्या, वृष व धनु है। अन्य लग्न मध्यम होते है।

लग्न शुद्धि – लग्न से १२ वें शनि, दसवें मंगल तीसरे शुक्र लग्न में चन्द्रमा और क्रूरग्रह अच्छे नहीं होते लग्नेश शुक्र शुभ नहीं होता है और सातवें में कोई भी ग्रह शुभ मा छठें और आठवें मेंचन्द्र - नहीं होता है।

ग्रहों का बल –

प्रथम, चौथे, पॉचवें, नौवें, दसवें स्थान में स्थित वृहस्पति सभी दोषों को नष्ट करता है। सूर्य ग्यारहवें स्थान में स्थित तथा चन्द्रमा सर्वोत्तम लग्न में स्थित नवमांश दोषों को नष्ट करता है। बुध लग्न, चौथे, पॉचवें, नौवें और दसवें स्थान में हो तो सौ दोषों को दूर करता है। यदि शुक्र इन्हीं स्थानों में वृहस्पति स्थित हो तो एक लाख दोषों को दूर करता है। लग्न का स्वामी अथवा नवमांश का स्वामी यदि लग्न, चौथे, दसवें, ग्यारहवें स्थान में स्थित हो तो अनेक दोषों को शीघ्र ही भस्म कर देता है।

विवाह मुहूर्त्त –

विवाह के समय के सम्बन्ध में सर्वसम्मत मत यही है कि गोधूलिवेला सर्वोत्कृष्ट मुहूर्त्त है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में लिखा है –

उदगमन आपूर्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे चौलकर्मोपनयन गोदानविवाहा: ।

पुण्ये नक्षत्रे दारान् कुर्वीत लक्षण प्रशस्तान् कुशलेन सर्वकालमेके।

इस प्रकार किसी भी दिन शुक्ल पक्ष, पुण्य नक्षत्र में विवाह करना चाहिए । किसी किसी के मत से सभी काल में विवाह हो सकता है। किन्तु ऐसा नहीं है।

गोधूलि वेला का लक्षण इस प्रकार है –

पिण्डीभूते दिनकृति हेमर्न्तो स्यादर्धास्ते तपनसमये गोधूलि: । सम्पूर्णास्ते जलधरमालाकाले त्रेधा योज्या सकल शुभे कार्यादौ।

हेमन्त ऋतु अर्थात् मार्गशीर्ष - पौष महीनों में जब सूर्य पिंडाकार हो, तब गोधूलि का समय हो जाता है। इसी प्रकार माघ – फाल्गुन में भी। ग्रीष्मऋतु में जब सूर्य आधा अस्त हुआ हो तो वह समय गोधूलिवेला है। वर्षाऋतु में आश्विन कार्तिक तक सम्पूर्ण सूर्य अस्त हो जाने पर गोधूलि वेला होती है।

वर वरण तिलक मुहूर्त्त -

कन्याभ्राताऽथवा विप्रो वस्रालंकारणादिना।

ध्रुवपूर्वानिलैकुर्याद्वरवृत्तिं शुभे दिने।। :

भावार्थ अलंकरण आदि से शुभ दिन में ध्रुव के सहोदर भाई अथवा कोई ब्राह्मण वस्त्रकन्या - हिये।संज्ञक तीनों पूर्वा और कृत्तिका नक्षत्र में वर को तिलक करना चा

अथ कन्यावरण –

विवाहोक्तैश्च नक्षत्रै शुभे दिने।शुभे लग्ने :

वस्रालंकरणाद्यैश्च कन्यकावरणं शुभम्।।

भावार्थ नक्षत्रविवाहोक्त - , शुभ दिन, शुभ लग्न में वस्र अलंकार, फल, पुष्प आदि से कन्या वरण करना शुभ होता है।

सिंहस्थ गुरू में विवाह निषेध –

पुण्य नक्षत्रादि की दृष्टि से विवाह का मुहूर्त बताना ज्योतिषशास्त्र का विषय है। परन्तु सिंहस्थ गुरू के विषय में कुछ वक्तव्य अवश्य है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जब – जब सिंह राशि पर वृहस्पति आता है तब 13 मास के लिए ज्योति:शास्त्र वेत्ता पंडित, सभी शुभ कर्मो का, विशेषत: विवाह का निषेध कर देते हैं। परन्तु शास्त्र में इसकी जो व्यवस्था, देश भेद से, पृथक् कर रखी है उसकी ओर वे ध्यान नहीं देते।

मुहूर्त्त सर्वस्व और मुहूर्त्तकल्पद्रुम आदि के अनुसार गंगा गोदावरी के मध्यस्थित देशों में मघादिपंचपादगत सिंह का विवाह के लिए निषेध है। वसिष्ठ जी ने कहा है : -

सिंहे सिहांशके जीवे कलिंगे गौडगुर्जरे।

कालमृत्युरयं योगो दम्पत्योर्निधनप्रद: ।।

अर्थात् कलिंग गौड और गुर्जर देश में वृहस्पति सिंहांशक हो तो वह विवाह के लिए निषिद्ध है। मुहूर्त्तचिन्तामणि में लिखा है : -

मघादिपंचपादेषु गुरू: सर्वत्र वर्जित:।

गंगागोदान्तरं हित्वा शेषांघ्रिषु न दोषकृत्।।

मेषेऽर्के सद्व्रतोद्वाहे गंगागोदान्तरेऽपि च।

सर्व: सिंहगुरूर्वर्ज्य: कलिंगे गौडगुर्जरे।।

अर्थात् मघादि पंचपादगत गुरू, गंगा – गोदावरी के मध्य गत समस्त देशों में वर्जित है अन्य पादों का गंगा गोदावरी के अन्तर में दोष नहीं है।

अशुभ योग –

ज्योतिष शास्त्रानुसार सप्तम भाव से या स्थान से विवाह का विचार किया जाता है। विवाह के **'प्रतिबन्धक योग'** निम्नलिखित है –

1. सप्तमेश शुभ युक्त न होकर गत हो तो विवाह भाव में हो अथवा नीच का या अस्त 12।8।6 नहीं होता है। अथवा विधुर होता है।
2. सप्तमेश द्वादश भाव में हो तो तथा लग्नेश और जन्मराशि का स्वामी सप्तम में हो तो विवाह नहीं होता है।
3. षष्ठेश, अष्टमेश तथा द्वादशेश सप्तम में हो तथा ये ग्रह शुभ ग्रह से दृष्ट अथवा युत न हो तो अथवा सप्तमेश सुख नहीं मिलता है।मी हो तो जातक को स्त्रीवें भाव के स्वा 12।8।6
4. यदि शुक्र अथवा चन्द्रमा साथ होकर किसी भाव में बैठें हो और शनि एवं भौम उनसे सप्तम भाव में हो तो विवाह नहीं होता है।
5. लग्न, सप्तम और द्वादश भाव में पापग्रह बैठें हो और पंचमस्थ चन्द्रमा निर्बल हो तो विवाह नहीं होता है।
6. – न में दोवें स्था 12 वें 7 दो पापग्रह हों तथा पंचम में चन्द्रमा हो तो जातक विवाह नहीं होता है।
7. सप्तम में शनि और चन्द्रमा के सप्तम भाव में रहने से जातक का विवाह नहीं होता है। अगर यदि विवाह होता भी है तो स्त्री वन्ध्या होती है।
8. सपतम भाव में पापग्रह के रहने से मनुष्य को स्त्री सुख में बाधा होता है।

9. शुक्र और बुध सप्तम भाव में एक साथ हों तथा सप्तम भाव पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो विवाह नही होता किन्तु शुभग्रहों की दृष्टि रहने से बड़ी आयु में विवाह होता है।
10. यदि जन्म लग्न से सप्तम भाव में केतु हो और शुक्र की दृष्टि उन पर हो तो स्त्री सुख कम होता है।
11. शुक्र – मंगल ।वें भाव में हो तो विवाह नहीं होता है 9।7।5
12. लग्न में केतु हो तो भार्यामरण तथा सप्तम में पापग्रह हो और सप्तम पर पापग्रहों की दृष्टि भी हो तो जातक को स्त्री सुख कम होता है।

विवाह योग -:

1. सप्तम भाव शुभ युत या दृष्ट होने पर तथा सप्तमेश के बलवान होने पर विवाह होता है।
2. शुक्र स्वगृही या कन्या राशि में हो तो विवाह होता है।
3. सप्तमेश लग्न में हो या सप्तमेश शुभ ग्रह से युत होकर एकादश भाव में हो तो विवाह होता है।

अभी तक तो आपलोग ज्योतिष के अनुसार एवं कुण्डली के भावों के अनुसार विवाह न होने वाले एवं विवाह होने वाले नियमों की जानकारी प्राप्त की तथा साथ ही विवाह की उपयोगिता के बारे में जानकारी प्राप्त किये आइए अब विवाह पूर्ण रूप से होने वाले नियमों तथा योगों की जानकारी प्राप्त करते है –

1. जितने अधिक बलवान ग्रह सप्तमेश से दृष्ट होकर सप्तम भाव मं गये हो उतनी ही जल्दी विवाह होता है।
2. द्वितीयेश और सप्तमेश न में हो तो विवाह होता है।वें स्था 10। 9। 7। 5। 4। 1
3. मंगल तथा सूर्य के नवमांश में बुध म भाव में गुरू कागुरू गये हों या सप्त - नवमांश हो तो विवाह होता है।
4. लग्नेश लग्न में हो, लग्नेश सप्तम भाव में हो, सप्तमेश या लग्नेश द्वितीय भाव में हो तो विवाह योग होता है।
5. सप्तम और द्वितीय स्थान पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तथा द्वितीयेश और सप्तमेश शुभ राशि में हो तो विवाह होता है।
6. लग्नेश दशम में हो और उसके साथ बलवान बुध हो एवं सप्तमेश और चन्द्रमा तृतीय भाव में हो तो जातक का विवाह होता है।
7. वृहस्पति अपने मित्र के नवमांश में हो तो विवाह होता है।
8. सप्तम में चन्द्रमा या शुक्र अथवा दोनों के रहने से विवाह होता है।

9. यदि लग्न से सप्तम भाव में शुभ ग्रह हो या सप्तमेश शुभ ग्रह से युत होकर द्वितीय, सप्तम या अष्टम में हो तो जातक का विवाह होता है।
10. विवाह प्रतिबन्धक योगों के न रहने पर विवाह होता है।

रवि शुद्धि –

जन्मराशेस्त्रिषष्ठायदशमेषु रवि। :शुभ :
पश्चात् त्रयोदशांशेभ्यो द्विपञ्चनवमेष्वपि ।।

भावार्थ –जन्म राशि से ३,६,१०,११ वें रवि शुभ है। यदि रवि १३, अंश से अधिक हो जाय तो २,५,९ वीं राशि में भी शुभ होते है।

चन्द्र शुद्धि –

जन्मराशेस्त्रिषष्ठाद्य सप्तमायरवसंस्थित। :
शुद्धश्चन्द्रो द्विकोणस्थ चाशुक्ले :ऽन्यत्र निन्दित ।। :

भावार्थ– जन्म राशि से ३,६,१,७, ११,१० वें स्थान में चन्द्रमा शुभ होते है, २,५,९ वें में शुक्ल पक्ष में शुभ है। ४,८,१२ वें में अशुभ होते है।

गुरू शुद्धि विचार –

वटुकन्याजन्मराशेस्त्रिकोणायद्विसप्तग। :
श्रेष्ठो गुरू।। :त्र निन्दितखषट्त्र्याद्ये पूजयान्य :

भावार्थ– बालक और कन्या की जन्म राशि से 2,5,9,7,11 वें स्थान में गुरू शुभ होते है तथा 10,6,3,4 इनमें शान्ति जपदान से शुद्ध होते है। 1,8, में अशुभ है। 12

विशेष –

स्वोच्चे स्वभे स्वमैत्रे वा स्वांशे वर्गोत्तमे गुरू। :
अशुभोऽपि शुभो ज्ञेयो नीचारिस्थशुभो :ऽप्यसन् ।।

भावार्थत्र की राशि में अपने नवमांश में गुरू रहे तो अशुभ भी में अपनी राशि में मिअपने उच्च - शुभ होता है और नीच तथा शत्रु की राशि में रहे तो श ुभ भी अशुभ होता है। यहॉं गुरू उपलक्षण है सभी ग्रह)रवि चन्द्रादि(अपने उच्चादि स्थान में रहने पर अनिष्ट स्थान में भी शुभ होते है।

विवाह में मण्डप निर्माण एवं लक्षण -

मंगलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहमानत। :
कार्य षोडशहस्तो वा द्विषड्ढस्तो दशावधि।।
स्तर्म्भश्चतुर्भिरेवात्र वेदी मध्ये प्रतिष्ठिता।

शोभिता चित्रिता कुम्भैरासमन्ताच्चतुर्शिम् ।।

द्वारविद्धा बलीविद्धा कूपवृक्षव्यधा तथा।

न कार्या वेदिका तज्ज्ञैशुभमंगलकर्मणि ।। :

समस्त मंगलकार्यों में कर्ता के हाथ से सोलह, बारह या दस हाथ चारों तरफ बराबर माप का मण्डप बनना चाहिए। जिसके बीच में एक सुन्दर वेदी, चार स्तम्भ और चारों दिशा अनेक रंग से चित्रित शोभायमान कलश से युक्त रहे। द्वार, कूप, वृक्ष, खात, दीवार इत्यादि के वेध से रहित विद्वानों के निर्देशानुसार बनाना श्रेष्ठ होता है।

ऐशान्यां स्थापयेत्कुम्भं सिंहादित्रिभगे रवौ।

वृश्चिकादित्रिभे वायौ नैऋत्यां कुम्भतात्रिभे।

वृषात्त्रये तथाऽऽग्नेय्यां स्तम्भखातं तदैव हि।

सिंहादि तीन राशियों में सूर्य के रहने से ईशान कोण में स्तम्भ तथा कुम्भ का पहले स्थापना करना शुभ है। वृश्चिक आदि तीन राशियों में रहने से वायु कोण में, कुम्भ आदि तीन राशि में नैऋत्य कोण में और वृष आदि तीन राशियों में सूर्य के होने से अग्निकोण में स्तम्भ और घट का स्थापना करना शुभ है।

विवाह नक्षत्र –

रोहिण्युत्तररेवत्यो मूलं स्वाती मृगो मघा।

अनुराधा च हस्तश्च विवाहे मंगलप्रदा ।। :

रोहिणी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, रेवती, मूल, स्वाती, मृगशिरा, मघा, अनुराधा और हस्त ये नक्षत्र विवाह में मंगलदायक है।

विवाह मास –

मिथुनकुम्भमृगालिवृषाजगे मिथुनगेऽपि रवौ त्रिलवे शुचे। :

अलिमृगाजगते करपीडनं भवति कार्तिकपौषमधुष्वपि ।।

मिथुन, कुम्भ, मकर, वृश्चिक, वृष और मेष का सूर्य हो तो विवाह करना शुभ है । मिथुन के सूर्य में आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा से दशमी पर्यन्त श्रेष्ठ हैं , वृश्चिक के सूर्य हों तो कार्तिक में, मकर के सूर्य हों तो पौष में और मेष के सूर्य हों तो चैत्र में भी विवाह हो सकता है।

वैवाहिक मास फल –

माघे धनवती कन्या फाल्गुने सुभगा भवेत्।

वैशाखे च तथा ज्येष्ठे पत्युरत्सन्तवल्लभा ।।

आषाढ़े कुलवृद्धि। : वर्जिता मासाश्चदन्येस्या:
मार्गशीर्षमपीच्छन्ति विवाहे केऽपि कोविदा ॥ :

माघ में विवाह करने से कन्या धनवती होती है। फाल्गुन में सौभाग्यवती और वैशाख तथा ज्येष्ठ में पति की अत्यन्त प्रिया होती है, एवं आषाढ़ में विवाह करने से कुल की वृद्धि होती है, अन्य मास विवाह में वर्जित हैं परन्तु कोई – कोई विद्वानों ने विवाह में मार्गशीर्ष मास का भी ग्रहण किया है।

विवाह में दस दोष –

लता पातो युतिर्वेधो यामित्रं बाणपञ्चकम्।
एकार्गलोपग्रहौ च क्रान्तिसाम्यं शशीनयो। :
दग्धा तिथिश्च विज्ञेया दश दोषा करग्रहे। :
पञ्चाधिकेषु दोषेषु विवाहं परिवर्जयेत् ॥

लता, पात, युति, वेध, यामित्र, बाणपञ्चक, एकार्गल, उपग्रह, क्रान्तिसाम्य एवं दग्ध तिथि ये विवाह में मुख्य दस दोष कहे गये हैं।

बोध प्रश्न –

1. ग्रीष्मऋतु में जब सूर्य आधा अस्त हुआ हो तो वह समय .... है।
2. वृहस्पति कन्या की राशि से .... स्थानों में शुभ होता हैं।
3. विवाह के लिए शुभ लग्न .... होता है।
4. सर्वसम्मति से विवाह के लिए .... काल सर्वोत्कृष्ट है।
5. विवाह में मुख्य .... दोष कहे गये हैं।

2.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि मूल, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, स्वाति, मघा, रोहिणी, इन नक्षत्रों में ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख, मार्गशीर्ष, आषाढ़, इन महीनों में विवाह करना शुभ है। विवाह में कन्या के लिए गुरूबल वर के लिए सूर्यबल और दोनों के लिए चन्द्रबल का विचार करना चाहिए। समस्त मंगलकार्यों में कर्ता के हाथ से सोलह, बारह या दस हाथ चारों तरफ बराबर माप का मण्डप बनना चाहिए। जिसके बीच में एक सुन्दर वेदी, चार स्तम्भ और चारों दिशा अनेक रंग से चित्रित शोभायमान कलश से युक्त रहे। द्वार, कूप, वृक्ष, खात, दीवार इत्यादि के वेध से रहित विद्वानों के निर्देशानुसार बनाना श्रेष्ठ होता है। रोहिणी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, रेवती, मूल,

स्वाती, मृगशिरा, मघा, अनुराधा और हस्त ये नक्षत्र विवाह में मंगलदायक है। मिथुन, कुम्भ, मकर, वृश्चिक, वृष और मेष का सूर्य हो तो विवाह करना शुभ है । मिथुन के सूर्य में आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा से दशमी पर्यन्त श्रेष्ठ हैं , वृश्चिक के सूर्य हों तो कार्तिक में, मकर के सूर्य हों तो पौष में और मेष के सूर्य हों तो चैत्र में भी विवाह हो सकता है। अशुभ योगों में लता, पात, युति, वेध, यामित्र, बाणपञ्चक, एकार्गल, उपग्रह, क्रान्तिसाम्य एवं दग्ध तिथि ये विवाह में मुख्य दस दोष कहे गये हैं। इस प्रकार आपने विवाह में शुभाशुभ योगों को जान लिया है।

2.5 शब्दावली

निन्द्य – निन्दित

क्रूरग्रह – पापग्रह

नवमांश – राशि के नवें भाग

सर्वोत्कृष्ट – सबसे अच्छा

गोदान – गौ का दान

एकार्गल – विवाह के दस दोषों में एक

उपग्रह – विवाह के दस दोषों में एक

धनवती – धन को देने वाली

अलि – वृश्चिक

त्रिलव – तृतीयांश

विधु – चन्द्रमा

2.6 बोध प्रश्न के उत्तर

1. गोधूलि
2. 9, 5, 11, 2, 7
3. 7,3,6,2,9
4. गोधूलि
5. 10

2.7 सन्दर्भग्रन्थ सूची

सनातन संस्कार विधि – आचार्य गंगा प्रसाद शास्त्री

संस्कारदीपक - श्री नित्यानन्द पर्वतीय

हिन्दू संस्कार - डॉ . राजबली पाण्डेय

कर्मसमुच्चय - लाल शास्त्री रामजी

2.8 दीर्घोत्तरीय प्रश्न

क. विवाह मुहूर्त्त का लेखन करते हुए उसके शुभ योगों को लिखिये ।

ख. विवाह के प्रमुख दोषों का निरूपण कीजिये ।

इकाई - 3 वधूप्रवेश एवं द्विरागमन विचार

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 वधूप्रवेश एवं द्विरागमन विचार

बोध प्रश्न

3.3 सारांश

3.4 पारिभाषिक शब्दावली

3.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.7 सहायक पाठ्यसामग्री

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAKA(N)-202 के तृतीय खण्ड की तीसरी इकाई 'वधूप्रवेश एवं द्विरागमन' से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई में आपने विवाह विधि का अध्ययन कर लिया है। अब यहॉ आप वधूप्रवेश एवं द्विरागमन का अध्ययन करने जा रहे है।

विवाह के पश्चात् वधू का पति के गृह में प्रवेश वधूप्रवेश एवं पति के गृह से पिता के गृह जाकर पुन: पति गृह में आना द्विरागमन होता है।

प्रस्तुत इकाई में आपके ज्ञानार्थ एवं पठनार्थ वधूप्रवेश एवं द्विरागमन का वर्णन किया जा रहा है, जिसका अध्ययन कर आप तत्सम्बन्धित विषयों को समझ सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- वधूप्रवेश किसे कहते है, जान जायेंगे ।
- वधूप्रवेश कब किया जाता है, समझ लेंगे।
- द्विरागमन को परिभाषित कर सकेंगे।
- द्विरागमन को भली – भॉति समझा सकेंगे।
- वधूप्रवेश एवं द्विरागमन के महत्व को बता सकेंगे।

3.3 वधूप्रवेश एवं द्विरागमन

विवाह के पश्चात् वधू का प्रथम बार पतिगृह में प्रवेश)डोली उतरना(वधूप्रवेश कहलाता है। सामान्यतविवाह से अगले दिन ही वधूप्रवेश लोक में होता हुआ देखा जाता है। लेकिन जब : ५दिनों के भीतर सम दिनों में या १६ प्रवेश की प्रथा न हो तो विवाह के दिन से तुरन्त,७,९ दिनों में वधू प्रवेश, शुभ वेला में शकुनादि विचार कर मांगलिक गीत वाद्यादि ध्वनि के साथ करवाना चाहिये। १६ दिनों के भीतर गुरू – शुक्रास्तादि विचार भी नहीं होता है।

१६ दिन व्यतीत हो जाने पर एक मास के अन्दर विषम दिनों में तथा १ वर्ष के भीतर विषम महीनों में पूर्ववत् तिथि वारादि शुद्धि देखकर वधूप्रवेश कहना चाहिये। पॉच वर्ष के पश्चात् यदि वधू प्रवेश हो तो स्वेच्छा से साधारण दिन शुद्धि देखकर वधूप्रवेश कराया जाना चाहिये।

सम्प्रति लोक में ये बातें कथित तौर पर ही रह गई है। इधर विवाह संस्कार हुआ और उधर डोली तथा सीधे वर के गृह में प्रवेश हो जाता है, फिर भी दूसरा दिन सम दिन होने से ग्राह्य हैं तथा दोपहर

से पूर्व वधूप्रवेश हो जाए तो शास्त्र का विरोध भी नहीं है , लेकिन उसी दिन विवाह होकर, उसी दिन प्रवेश को वर्जित करना चाहिये।

वधूप्रवेश मुहूर्त्त विचार -

> **समाद्रिपञ्चाङ्कदिने विवाहाद्वधूप्रवेशोऽष्टिदिनान्तराले ।**
> **शुभमासदिनेद्विषमाब्दस्तापर :ऽक्षवर्षात्परतो यथेष्टम् ।।**

विवाह के दिन से १६ दिन के भीतर सम)२,४,६,८,१०,१२,१४,१६(दिनों में और विषम में ५,७,९ वें दिनों में वधूप्रवेश शुभ होता है। यदि १६ दिन के भीतर नहीं हो सके तो उसके बाद प्रथम मास के विषम)१७,१९,२१,२३,२५,२७,२९ वें (दिनों में एक मास के बाद विषम ३,५,७,९,११ वें मासों में और एक वर्ष के बाद विषम वर्ष ३,५ वर्षों में वधूप्रवेश शुभ होता है। परन्तु ५वें वर्ष के बाद वर्ष मास का विचार नहीं होता है अर्थात् ५वें वर्ष के पश्चात् कभी भी शुभ मुहूर्त्त देखकर वधू प्रवेश कराना चाहिये।

विशेषत् प्रथम बार पति गृह में प्रवेश को वधूप्रवेश कहतेविवाह के पश्चा - हैं । वधूप्रवेश विवाह से १६ दिन के भीतर प्रत्येक विवाह मास में होती हैं, परनतु १६ दिन के भतर चैत्र – पौष - – मलमास हरिशयन का त्याग करना चाहिये।

अन्य मत में वधूप्रवेश विचार –

> **त्रिभवविश्वतिथिप्रभवासरान्**
> **नृपदिनेषु विहाय विवाहत। :**
> **अनववेश्मसु नूतनकामिनी**
> **निशि विशेत् स्थिरभेऽथ तत परम्।। :**

विवाह संस्कार के बाद वधू का प्रथम पति के साथ पतिगृह में आना वधूप्रवेश है। विवाह का दिन शामिल करते हुए १६ दिनों के भीतर ३,११,१३,१५ वें दिन को छोड़कर अन्य दिनों में वधूप्रवेश शुभ है। वधूप्रवेश बिल्कुल नए गृह में अर्थात् जहॉ गृहप्रवेश के बाद वर के परिवारजनों ने रहना शुरू न किया हो, वहॉ न करें । वधूप्रवेश स्थिर नक्षत्रों में, रात्रि में हो तो विशेष शुभ है । वधूप्रवेश में मंगलवार, व शनिवार न हो तो)कहीं – कहीं बुध भी(ध्रुव, मृदु, क्षिप्र, श्रवण, मूल, मघा, स्वाती नक्षत्र हों तो शुभ होता है।

वधूप्रवेश में नक्षत्र शुद्धि विचार –

> **ध्रुवक्षिप्रमृदु श्रोत्रवसुमूलमघानिले ।**
> **वधूप्रवेश।। :रार्के बुधे परे रिक्ताष्टोसन्ने :**

ध्रुव – क्षिप्र - मृदु संज्ञक नक्षत्र, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मघा, और स्वाती इन नक्षत्रों में, रिक्ता)४,९,१४ (तिथि और मंगलवार – रविवार को छोड़कर अन्य तिथि –वारों में वधूप्रवेश होता है। अन्य आचार्य के मत से बुधवार को भी प्रवेश को वर्जित किया गया है।

ज्येष्ठे पतिज्येष्ठमथाधिके पतिं हन्त्यादिमे भर्तृगृहे वधू शुचौ। :

श्वश्रूं सहस्ये श्वशुरं क्षये तनुं तातं मधो तातगृहे विवाहत।। :

विवाह के पश्चात् प्रथम ज्येष्ठ मास में यदि स्त्री पतिगृह में रहे तो पति के ज्येष्ठ भाई को नाश करती है। यदि प्रथम मलमास में रहे तो पति को, प्रथम आषाढ़ में पतिगृह में रहे तो सास को, पौष में रहे तो श्वसुर को और प्रथम क्षयमास में रहे तो अपने को नाश करती है। इसी प्रकार विवाह के पश्चात् प्रथम चैत्र में यदि स्त्री पिता के गृह में रह जाय तो पिता को मारती है।

विशेषत् चैत्र में पिता के गृह में रह जानाइससे सिद्ध होता है कि विवाह के पश्चा - , तथा ज्येष्ठ, आषाढ़ पौष, मलमास – क्षयमास में पतिगृह में रहना वधूप्रवेश – यात्रा में शुभ नहीं होता है। अत : त् वर्जित समयवहारिक रूप में वधूप्रवेश के पश्चाव्या को ध्यान देना आवश्यक है।

वधूप्रवेश मुहूर्त निर्णय करते समय निम्नलिखित स्थितियों का चयन करें-

शुभ मास - वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, पौष, माघ, फाल्गुन व मार्गशीर्ष।

शुभ वार - सोम, बुध, गुरु व शुक्र।

शुभ तिथि - 2, 3, 5, 6, 7, 8, 10, 12 (शुक्लपक्ष। (

शुभ नक्षत्र - रोहिणी, मृगशिरा, मघा, उफा., हस्त, स्वाति, अनुराधा, मूला, उषा., उभा., रेवती।

शुभ लग्न - सप्तम में सभी ग्रह अनिष्टकारक कहे गए हैं। लग्न में 3, 6, 7, 9 व 12वीं राशि का नवांश श्रेष्ठ कहा गया है। जब जन्म राशि जन्म लग्न से आठवीं या बारहवीं न हो।

विवाह लग्न से सूर्यादि ग्रहों के शुभ भाव अधोलिखित हैं :

सूर्य - 3, 6, 10, 11, 12वें भाव में। चन्द्र -2, 3, 11वें भाव में।

मंगल - 3, 6, 11वें भाव में।

बुध व गुरु - 1, 2, 3, 4, 6, 9, 10, 11वें भाव में।

शुक्र - 1, 2, 4, 5, 9, 10, 11वें भाव में।

शनि, राहु- केतु - 3, 6, 8, 11वें भाव में।

टिप्पणी - वधू प्रवेश नवीन गृह में सर्वथा त्याज्य है। विषम दिनों, विषम मासों या विषम वर्षों में वर्जित है। इसी तरह भद्रा, व्यतिपात, गुरुशुक्रास्त -, क्षीण चन्द्र भी वर्जित है।

चरेदथौजहायने घटालिमेषगे रवौ रवीज्यशुद्धियोगत वासरे ।शुभग्रहस्य :
नृयुग्ममीनकन्यकातुलावृषे विलग्नके द्विरागमं लघुध्रुवे चरेस्रपे मृदूडुनि ।।

विवाह से एक वर्ष के पश्चात् विषम ३,५ वर्षों में सूर्य, कुम्भ, वृश्चिक और मेष राशि में हो तो अर्थात् सौर फाल्गुन, अग्रहण वैशाख मासों में, कन्या के लिये सूर्य – गुरू की शुद्धि रहने पर शुभग्रहों)चन्द्र, बुध, गुरू एवं शुक्र(के दिन में, मिथुन – मीन – कन्या – तुला – और वृष लग्न में, लघु संज्ञक –ध्रुवसंज्ञक, चरसंज्ञक, मूल और मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में द्विरागमन)विलम्बवधू प्रवेश के लिये पितृगृह से पतिगृह का यात्रा(कराना चाहिये।

द्विरागमन वधूप्रवेश का ही अंग है। वधूप्रवेश के ३ भेद हैं -

१. नूतन वधूप्रवेश २ .३ वधूप्रवेश सामान्य .विलम्बित वधूप्रवेश

विवाह के बाद १६ दिन के भीतर पिता के गृह से पतिगृह में प्रवेश को नूतन वधू प्रवेश कहते है। विवाह के पश्चात् एक वर्ष के भीतर मार्गशीर्ष , फाल्गुन, वैशाख क्रम से पतिगृह में प्रवेश को सामान्य वधूप्रवेश कहते हैं । इसमें सम – विषम मासों – दिनों का विचार एवं शुक्र का विचार नहीं होता है। जैसे -

नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके ।
वधूप्रवेशे मांगल्ये न मौढ्यं गुरू – शुक्रयो ।। :

इस वचनानुसार सामान्य वधूप्रवेश में गुरू – शुक्र के मौढ्य अस्तादि का विचार आवश्यक नहीं होता हैं । व्यवहार में लोग इसे भी प्रथम वर्षीय द्विरागमन कहते हैं । इसमें पिताके गृह से चन्द्रतारानुकूलित यात्रा विचार सहित प्रस्थान के साथ पतिगृह में प्रवेश का मुहूर्त्त देखा जाता है। विवाह के पश्चात् तृतीय – पंचम विषम वर्ष में पिता के गृह से पतिगृह के लिये स्त्री के प्रस्थान को विलम्बित वधूप्रवेश कहा जाता है। इसमें गुरू – शुक्र के अस्तादि में शुक्र विचार की प्रधानता होती है। सम्मुख दक्षिण शुक्र का विचार प्रधान होता है। आवश्यक पक्ष में शुक्रान्ध नक्षत्र में यात्रा - – नक्षत्रमुहूर्त्त देखकर पतिगृह में द्विरागमन होता है। शुक्रान्ध रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, और मृगशिरा ये ६ नक्षत्र है। इसमें मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख इन तीन मासों में शुक्ल पक्ष, कृष्णपक्ष की पंचमी तक विहित तिथि – वार क होता है।नक्षत्र आदि विचार आवश्य -

दूसरे शब्दों में, ससुराल से पिता के घर में जाकर फिर से पतिपरमेश्वर के घर में आने का नाम - द्विरागमन है। यह भी शुभ समय में करने श्रेष्ठ होता है। निम्नलिखित वार, तिथि, नक्षत्र एवं लग्न आदि में द्विरागमन शुभ होता है।

शुभ वर्ष- 1, 3, 5, 7, 9, 11, 13 15 व 17

शुभ मास- वैशाख, मार्गशीर्ष एवं फाल्गुन।

शुभ वार- रवि, सोम, बुध, गुरु एवं शुक्र।

शुभ तिथि- 1, 2, 3, 5, 7, 8, 10, 11, 13 (शुक्लपक्ष (।

शुभ नक्षत्र- रोहिणी, पुनर्वसु, मृगशिरा, अनुराधा, धनिष्ठा, श्रवण, चित्रा, स्वाति, रेवती, पुष्य, चित्रा, पूर्वाषाढा, अश्विनी, मूला,हस्त व उत्तरात्रय।

शुभ लग्न- 3, 4, 7, 9 , 10 व 12वीं राशि।

टिप्पणी - शनि और मंगलवार, 4, 6, 9, 12, 14, 30 तिथियां त्याज्य हैं।

<u>प्रथम समागम मुहूर्त</u>

अधोलिखित वार, तिथि, नक्षत्र एवं लग्न आदि में वरवधू का परस्पर प्रथम समागम करना शुभ - होता है।

शुभ वार- रवि, सोम, बुध, गुरु एवं शुक्र।

शुभ तिथि- 1(कृष्णपक्ष(, 2, 3, 5, 7, 9, 13, 15 (शुक्लपक्ष (।

शुभ नक्षत्र- इन नक्षत्रों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है

- पूर्वाद्ध भोगी नक्षत्र - रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा।
- मध्य भोगी नक्षत्र - आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा।
- उत्तरार्ध भोगी नक्षत्र - ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद एवं उत्तराभाद्रपद।

शुभ लग्न- 1, 3, 5, 7, 9, 11वीं राशि।

विशेष- पूर्वाद्ध भोगी नक्षत्र में स्त्रीपुरुष का प्रथम समागम होने पर स्त्री पति को - प्रिय होती है, मध्य भोगी नक्षत्र में हो तो परस्पर प्रीति होती है और उत्तरार्ध भोगी नक्षत्र में हो तो पति पत्नी को प्रिय होता है।

कुछ विद्वानों ने मुहूर्त्त ग्रन्थों के द्विरागमन प्रकरण में नवोढ़ा शब्द के प्रयोग के कारण द्विरागमन को वधूप्रवेश सिद्ध करने का प्रयास किया है। कभी – कभी ऐसा देखा जाता है कि विवाहोपरान्त वधू पतिगृह चली जाती है तथा दूसरे ही दिन पुनर कुछ समय पितृगृह में वापस आ जाती है। अनन्त : पतिगृह में जाती है :बाद पुन,यही) द्विरागमन होता है।(ऐसी स्थिति में वधू को नवोढा कहना किसी भी प्रकार से अनुचित नहीं है। नवोढ़ा का अर्थ नवीनोद्वाहिता सद्यविवाहिता ही होता है। : लिखित के प्रयोग से द्विरागमन को वधूप्रवेश नहीं कहा जा सकता है। निम्नकेवल नवोढ़ा शब्द

श्लोक से भी द्विरागमन की पृथक् सत्ता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है -

विवाहे गुरूशुद्धि द्विरागमने ।क्रशुद्धित् शुस्या :

त्रिगमे राहुशुद्धिश्च चन्द्रशुद्धिश्चतुर्गमे ।।

अर्थात् कन्या के विवाह में गुरू, शुद्धि द्विरागमन में शुक्र शुद्धि, तृतीय यात्रा में राहु की शुद्धि तथा चतुर्थ एवं इसके बाद की यात्राओं में केवल चन्द्रशुद्धि का ही विचार करना चाहिये।

अत र्ष यही है कि प्रथम बार पतिगृह में जाना वधूप्रवेशनिष्क :, द्वितीय बार जाना द्विरागमन होता है।

अपि च –

ओजाब्दमासेऽहनि कार्यमेतत्

पंचाब्दतोऽग्रे नियमो न तद्वत्।

विवाहभाश्वि श्रुतियुग्मचित्रा

गुरूडुभी रिक्तकुजार्क हीनै ।। :

यदि द्विरागमन)गौना(अर्थात् पतिगृह में दूसरी बार आना विवाह के तुरन्त बाद न हुआ तो विवाह से विषम वर्षो , विषम मासों में करना चाहिए ।

गौना पॉचवें वर्ष से आगे होना चाहिए यह नियम युक्तियुक्त नहीं है।

द्विरागमन के लिए विवाह के सभी नक्षत्र, अश्विनी, श्रवण, धनिष्ठा, चित्रा, पुष्य शुभ हैं। रिक्ता तिथि व मंगल शनिवार को वर्जित करना चाहिए।

द्विरागमो मेषघटालिसंस्थे

सूर्ये मृदुक्षिप्रचलाचलर्क्षे।

मूले बुधेज्यास्फृजिनां दिनेंगे

रवीज्यशुद्धौ विषमेऽब्द इष्ट ।। :

मेष, वृश्चिक, कुम्भ के सूर्य में, मृदु क्षिप्र, लघु व स्थिर नक्षत्र और मूल में, बुध, गुरू, शुक्र के वार व लग्नों में, सूर्य व गुरूबल की शुद्धि में, विषम वर्ष में गौना करना चाहिए।

बोध प्रश्न –

1 .द्विरागमन करना चाहिये –

क कोई नहीं .दोनों में घ . में गविषम वर्षो .सम वर्षो में ख .

2. द्विरागमन में कहॉ का शुक्र त्याज्य हैं –

क दक्षिण . घपृष्ठ .वाम ग .ख और दक्षिण खसम्मु .

3 – त् वधू का पति के गृह में प्रवेश कहलाता हैविवाह के पश्चा .

क पाणिग्रहण .धान घअग्न्या .वधूप्रवेश ग .द्विरागमन ख .

4 विवाह के दिन से कितने दिनों के भीतर वधूप्रवेश करना चाहिये । .

क .दिनों के ख १५ .१८ दिनों के ग .दिनों के घ १६ .२० दिनों के

5 – मलमास में वधूप्रवेश करना होता है .

क कोई नहीं .दोनों घ .अशुभ ग .शुभ ख .

3.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि विवाह के पश्चात् वधू का प्रथम बार पतिगृह में प्रवेश)डोली उतरना(वधूप्रवेश कहलाता है। सामान्यतविवाह से अगले दिन ही : श की प्रथा न हो तो वि प्रवेवधूप्रवेश लोक में होता हुआ देखा जाता है। लेकिन जब तुरन्तवाह के दिन से १६ दिनों के भीतर सम दिनों में या ५,७,९ दिनों में वधू प्रवेश, शुभ वेला में शकुनादि विचार कर मांगलिक गीत वाद्यादि ध्वनि के साथ करवाना चाहिये। १६ दिनों के भीतर गुरू – शुक्रास्तादि विचार भी नहीं होता है। १६ दिन व्यतीत हो जाने पर एक मास के अन्दर विषम दिनों में तथा १ वर्ष के भीतर विषम महीनों में पूर्ववत् तिथि वारादि शुद्धि देखकर वधूप्रवेश कहना चाहिये। पॉच वर्ष के पश्चात् यदि वधू प्रवेश हो तो स्वेच्छा से साधारण दिन शुद्धि देखकर वधूप्रवेश कराया जाना चाहिये। विवाह से एक वर्ष के पश्चात् विषम ३,५ वर्षों में सूर्य, कुम्भ, वृश्चिक और मेष राशि में हो तो अर्थात् सौर फाल्गुन, अग्रहण वैशाख मासों में, कन्या के लिये सूर्य – गुरू की शुद्धि रहने पर शुभग्रहों)चन्द्र, बुध, गुरू एवं शुक्र(के दिन में, मिथुन – मीन – कन्या – तुला – और वृष लग्न में, लघु संज्ञक –ध्रुवसंज्ञक, चरसंज्ञक, मूल और मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में द्विरागमन)विलम्बवधू प्रवेश के लिये पितृगृह से पतिगृह का यात्रा(कराना चाहिये।

3.5 शब्दावली

वेदारम्भ – वेद का आरम्भ

विशिष्ट – मुख्य

असंयमित – जो संयमित न हो

गृहस्थाश्रम – आश्रमों में एक

अग्नये – अग्नि के लिये

अन्तरिक्षयाय – अन्तरिक्ष के लिए

विप्र – ब्राह्मण

श्रद्धायै – श्रद्धा के लिए

षोडश – सोलह

ब्राह्मणस्य – ब्राह्मण के लिए

विधु – चन्द्रमा

3.6 बोध प्रश्न के उत्तर

1. ख
2. क
3. ख
4. ग
5. ख

3.7 सन्दर्भग्रन्थ सूची

मुहूर्तचिन्तामणि – राम दैवज्ञ

संस्कारदीपक - श्री नित्यानन्द पर्वतीय

हिन्दू संस्कार - डॉ . राजबली पाण्डेय

कर्मसमुच्चय - रामजी लाल शास्त्री

3.8 दीर्घोत्तरीय प्रश्न

क. द्विरागमन से आप क्या समझते है । लिखिये ।

ख. वधूप्रवेश को स्प्ष्ट कीजिये ।

खण्ड – 4

शान्ति विधान

इकाई - 1 मूल शान्ति विधान

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3.1 मूल का परिचय

1.3.2 मूल के सन्दर्भ में मत – मतान्तर

1.3.3 मूल वास विचार

1.4.1 मूल शान्ति विधान

1.4.2 मूल शान्ति का प्रायोगिक विधान

1.5 सारांशः

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 बोधप्रश्नों के उत्तर

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.10 निबन्धात्मक प्रश्नों के उत्तर

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में मूल संबंधी शान्ति प्रविधि का अध्ययन का आप अध्ययन करने जा रहे हैं। इससे पूर्व की शान्ति प्रविधियों का अध्ययन आपने कर लिया होगा। किसी भी जातक का जन्म यदि मूल वाली नक्षत्रों में हुआ है तो उसकी शान्ति आप कैसे करेगें, इसका ज्ञान आपको इस इकाई के अध्ययन से हो जायेगा।

किसी भी जातक का जन्म जब होता है तो उस समय कोई न कोई नक्षत्र रहती ही है। उनमें से रेवती, अश्विनी, आश्लेषा, मघा, ज्येष्ठा एवं मूल को मूल वाली नक्षत्रों के रूप में जाना जाता है। इन नक्षत्रों में जन्म होने के कारण जातक का जीवन संकटापन्न होता है। जातक के परिवार का सीधा-सीधा संबंध होने के कारण इनसे संबंधित लोगों का भी जीवन प्रभावित होता है। इसलिये शान्ति कराने की आवश्यकता होती है। इसी शान्ति प्रविधि को मूल शान्ति के नाम से जाना जाता है।

इस इकाई के अध्ययन से आप मूल शान्ति करने की विधि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। इससे संबंधित व्यक्ति का मूल संबंधी दोषों से निवारण हो सकेगा जिससे वह अपने कार्य क्षमता का भरपूर उपयोग कर समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगा। आपके तत्संबंधी ज्ञान के कारण ऋषियों महर्षियों का यह ज्ञान संरक्षित एवं सवंर्धित हो सकेगा। इसके अलावा आप अन्य योगदान दें सकेगें, जैसे - कल्पसूत्रीय विधि के अनुपालन का सार्थक प्रयास करना, समाज कल्याण की भावना का पूर्णतया ध्यान देना, इस विषय को वर्तमान समस्याओं के समाधान सहित वर्णन करने का प्रयास करना एवं वृहद् एवं संक्षिप्त दोनों विधियों के प्रस्तुतिकरण का प्रयास करना आदि।

1.2. उद्देश्य-

उपर्युक्त अध्ययन से आप शान्ति की आवश्यकता को समझ रहे होगें। इसका उद्देश्य भी इस प्रकार आप जान सकते है।

1.2.1 कर्मकाण्ड को लोकोपकारक बनाना।

1.2.2 कर्मकाण्ड की शास्त्रीय विधि का प्रतिपादन।

1.2.3 कर्मकाण्ड में व्याप्त अन्धविश्वास एवं भ्रान्तियों को दूर करना।

1.2.4 प्राच्य विद्या की रक्षा करना।

1.2.5 लोगों के कार्यक्षमता का विकास करना।

1.2.6 समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना।

1.3 मूल शान्ति

1.3.1 मूल का परिचय

यह सर्व विदित है कि संसार में जितने लोगों का जन्म होता है वह किसी न किसी नक्षत्र में होता है । ज्योतिष के अनुसार अभिजित् नक्षत्र को छोड़कर कुल नक्षत्रों की संख्या 27 सत्ताईस है। जिन्हें अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती के नाम से जाना जाता है। इन नक्षत्रों में से रेवती, अश्विनी, आश्लेषा, मघा, ज्येष्ठा एवं मूल को मूल वाली नक्षत्र के रूप में जाना जाता है। इसी शान्ति प्रविधि को मूल शान्ति के नाम से जाना जाता है।

अतः मूल के बारे में अब आप जान गये होगे। अब मूल में भी जो अत्यन्त अशुभ काल है उसके बारे में जानना अति आवश्यक है। इसलिये अग्रिम जानकारी दी जा रही है इसे ध्यान पूर्वक समझना चाहिये।

इन मूल नक्षत्रों में भी कुछ काल यानी समय को जो अत्यन्त अशुभ होते हैं उन्हे गण्डमूल कहा गया है। गण्ड शव्द का अर्थ स्पष्ट है। गण्ड , गांठ को कहा जाता है। जब हम दो डोरे को एक में जोड़ते है तो दोनों के बीच में एक गांठ पड़ जाती है जिसे गण्ड के नाम से जाना जाता है। शास्त्रीय ग्रन्थों में इसकी संज्ञा अभुक्त मूल के नाम से अभिहित है। मुहूर्त्त चिन्तामणि के नक्षत्र प्रकरण में इसको वर्णित करते हुये कहा गया है कि-

अभुक्तमूलं घटिकाचतुष्टयं ज्येष्ठान्त्यमूलादिभवं हि नारदः।
वसिष्ठ एकद्विघटीमितं जगौ वृहस्पतिस्त्वेकघटीप्रमाणतः।।

अन्वयः- ज्येष्ठान्त्यमूलादिभवं घटिकाचतुष्टयं अभुक्तमूलं स्यात् इति नारदः जगौ तथा ज्येष्ठान्त्यमूलादिभवं एकद्विघटीमितम् अभुक्तमूलं इति वसिष्ठः जगौ ज्येष्ठान्त्यमूलादिभवं एकघटीप्रमाणकम् अभुक्तमूलं स्यादिति बृहस्पतिः जगौ।

अर्थात् ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्त्य भाग की चार घटी और और मूल नक्षत्र के आदि की चार घटी यानी आठ घटी का समय अभुक्त मूल माना गया है। यह मान नारद जी के अनुसार बतलाया गया है। साठ घटी का मान चौबीस घंटे के बराबर होता है। ढाई घटी का एक घण्टा जानना चाहिये। अभुक्त मूल के विषय में आचार्य वसिष्ठ जी का मत है कि ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्त्य भाग की एक घटी एवं मूल नक्षत्र के आदि की दो घटी को अभुक्त मूल जानना चाहिये। आचार्य वृहस्पति का इस सन्दर्भ में कथन है कि ज्येष्ठा के अन्त्य और मूल के आदि की आधी - आधी घटी को अभुक्त मूल जानना

चाहिये।

इस सन्दर्भ में एक मत और भी प्राप्त होता है जो इस प्रकार है-

अथोचरन्ये प्रथमाष्टघट्यो मूलस्य शाक्रन्तिमपंचनाड्यः।
जातं शिषुं तत्र परित्यजेद्वा मुखं पितास्याष्टसमा न पश्येत्।।

अन्वयः- अथ अनये त्वेवं उचुः यत् मूलस्य प्रथमाष्टघट्यः शाक्रान्तिमपंचनाड्यः अभुक्तमूलं स्यात्। तत्र जातं शिशुं परित्यजेत् अथवा पिता अस्य मुखं अष्टसमा न पश्येत्।

अर्थात्- ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्त्य की आठ घटी और मूल नक्षत्र के आदि की पांच घटी अभुक्त मूल होता है। ऐसा अन्य आचार्यगण कहते है। इस अभुक्त मूल में जन्म लेने वाले जातकों को त्याग देना चाहिये। यानी आठ वर्ष तक पिता को जातक का मुख नही देखना चाहिये।

कुछ आचार्यों के मत से चार घटी आदि एवं पांच घटी अंत की, कुछ के मत से बारह घटी एवं कुछ के मत से एक घटी माना गया है। परन्तु सामान्य तौर पर ऐसी स्थिति में उत्पन्न होने वाला बालक गण्ड दोष से पीड़ित हो जाता है। प्रयोग पारिजात नामक ग्रन्थ में लिखा गया है कि इस प्रकार जातक का जन्म पिता के लिये, माता के लिये, धन के लिये तथा स्वयं के लिये अरिष्टकारी होता है। इसलिये प्रायश्चित्त पूर्वक इस दोष की शान्ति करनी चाहिये।

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते है। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- अभिजित् नक्षत्र को छोड़कर कुल नक्षत्रों की संख्या कितनी है?

क- 27 ख- 28 ग- 29 घ- 30

प्रश्न 2- इन नक्षत्रों में से किसको मूल वाली नक्षत्र के रूप में नही जाना जाता है?

क-रेवती को, ख- अश्विनी को, ग- आश्लेषा को , घ- हस्त को।

प्रश्न 3- गण्डमूल किसे कहा गया है?

क- भुक्तमूल को, ख- अभुक्त मूल को, ग-उक्त मूल को, घ- पुनरुक्त मूल को।

प्रश्न 4- नारद जी के अनुसार अभुक्त मूल कितनी घटी का होता है?

क- चार घटी, ख- पांच घटी, ग- सात घटी, घ- आठ घटी।

प्रश्न 5- साठ घटी का मान कितने घंटे के बराबर होता है?

क- चौबीस घंटे के, ख- चौंतीस घंटे के, ग-चौदह घंटे के, घ- बारह घंटे के।

प्रश्न 6- ढाई घटी का कितना घण्टा जानना चाहिये?

क- चार, ख- तीन, ग- दो, घ- एक।

प्रश्न 7- आचार्य वसिष्ठ जी के मत में कितनी घटी को अभुक्त मूल जानना चाहिये?

क- चार, ख- तीन, ग- दो, घ- एक।

प्रश्न 8- आचार्य वृहस्पति के अनुसार कुल कितनी घटी को अभुक्त मूल जानना चाहिये?

क- चार, ख- तीन, ग- दो, घ- एक।

प्रश्न 9- इन नक्षत्रों में से किसको मूल वाली नक्षत्र के रूप में जाना जाता है?

क-रेवती को, ख- भरणी को, ग- आर्द्रा को , घ- हस्त को।

प्रश्न 10- अन्य आचार्यों के मत में ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्त्य की आठ घटी और मूल नक्षत्र के आदि की पांच घटी को होता है।

क- भुक्तमूल , ख- अभुक्त मूल , ग-उक्त मूल , घ- पुनरुक्त मूल ।

1.3.2 मूल के सन्दर्भ में मत मतान्तर

अब आप मूल क्या है इसके विषय में पूरी तरह जान गयें होगें। अब हम ये जानेगें कि मूल के सन्दर्भ में भिन्न-भिन्न जगहों पर भिन्न-भिन्न विद्वानों के द्वारा इस सन्दर्भ में क्या का कहा गया है । ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि -

मूलाद्येंऽषे पितुर्नाशो द्वितीये मातुरेव च।
तृतीये धनधान्यादिनाशस्तुर्ये धनागमः।।

यानी मूल नक्षत्र के प्रथम चरण में शिशु का जन्म होने पर उसके पिता के लिये अरिष्ट होता है एवं दूसरे चरण में जन्म होने पर जातक की माता के लिये कष्ट होता है। तीसरे चरण में शिशु का जन्म होने

पर धन धान्यादि का नाश होता है तथा चौथे चरण में जन्म होने पर धन का आगमन होता है। रत्नमाला नामक ग्रन्थ में इसका वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है-

तदाद्यपादके पिता विपद्यते जनन्यथ। तृतीये धनक्षयश्चतुर्थकः शुभावहः। यानी यह श्लोक भी पूर्वोक्त बातें ही सिद्ध करता है। वसिष्ठ संहिता में कुछ विषेष बातें इस प्रकार है-

मूलाद्यपादो दिवसो यदि स्यातज्जः पितुर्नाशकारणं स्यात्।
द्वितीयपादो यदि रात्रिभागे तदुद्भवो मातृविनाशकः स्यात्।
मूलाद्यपादो यदि रात्रिभागे तदात्मनो नास्ति पुनर्विनाशः।
द्वितीयपादो दिनगो यदि स्यान्नमातुरल्पोऽस्ति तदास्ति दोषः।।

अर्थात् मूल नक्षत्र का पहला चरण यदि दिन में हो तो उसमें उत्पन्न होने वाले शिशु के पिता को अरिष्ट होता है। दूसरा चरण रात्रि में हो तो वह शिशु के माता के लिये विनाशक होता है। मूल का प्रथम चरण यदि रात्रि में हो तो स्वयं शिशु के लिये कष्टकारी नही होता है। यदि दूसरा चरण दिन में हो तो माता के लिये कष्टकारी नही होता है। नारद संहिता में लिखा गया है कि-

दिवा जातस्तु पितरं रात्रौ तु जननी तथा।
आत्मानं सन्ध्ययोर्हन्ति ततो गण्डं विवर्जयेत्।।

अर्थात् दिन में जन्म होने पर पिता, रात्रि में जन्म होने पर माता तथा प्रातः एवं सायं सन्ध्याओं में जन्म होने पर स्वयं जातक के लिये कष्टकारी होता है। इसलिये गण्ड मूल विवर्जित करना चाहिये। दोष होने की स्थिति में शान्ति कराना चाहिये। मूल एवं आश्लेषा के सभी चरणों की शान्ति कल्याणकारी होती है ऐसा आचार्य वसिष्ठ का कथन है-

नैर्ऋत्यभौजंगभगण्डदोषनिवारणायाभ्युदयाय नूनम्।
पितामहोक्तां रुचिरां च शान्तिं प्रवच्मिलोकस्य हिताय सम्यक्।
शास्त्रोक्तरीत्या खलु सूतकान्ते मासे तृतीये त्वथ वत्सरान्ते।।

मूल और आश्लेषा के गण्ड दोषों की शान्ति अभ्युदय के लिये अवश्य करनी चाहिये। पितामह ने इस मूल शान्ति का वर्णन करते हुये कहा है कि यह शान्ति सूतक के समाप्ति के बाद, तीसरे महीने में या वर्ष के अन्त में करायी जा सकती है। इसको सामर्थ्य या असामर्थ्य की दृष्टि से वर्णित किया गया है।

यदिः मातुः शीतोदकस्नानेऽसामर्थ्यं स्यात्तदा सूतकान्ते एव शान्तिः। दीर्घरोगादीनां तदाप्यशान्तिश्चेत्तर्हि वर्षसमाप्ति दिवसे शान्तिः।। अर्थात् यदि माता शीतल जल से स्नान करने में असमर्थ हो तो सूतक के अन्त में शान्ति करायी जा सकती है। मातृगण्ड के सन्दर्भ में कुछ विशेष कहा गया है-

मातृगण्डे सुते जाते सूतकान्ते विचक्षणः।
कुर्याच्छान्तिं तदृक्षे वा तद्दोषस्यापनुत्तये।।

मातृगण्ड में पुत्रोत्पत्ति होने पर सूतक के अन्त में या उस नक्षत्र में शान्ति करायी जा सकती है। शिष्टाचार के अनुसार जो जन्म की नक्षत्र होती है उसमें शान्ति का व्यवहार करना चाहिये। इसलिये मूल के चौथे चरण की भी शान्ति करनी चाहिये। यद्यपि मूल का चौथा चरण शुद्ध होता है फिर भी शान्ति की अपेक्षा होती है।

लिखा गया है कि चतुर्थ चरण में धन का आगमन होने से इसमें जन्म का फल शुभ है फिर भी कश्यप जी ने कहा है सुहृदश्च तुरीयजः यानी चतुर्थ चरण में जन्म सुहृदों का विनाशक है इसलिये शान्ति अवश्य कराना चाहिये। केवल इतना ही नही मूल वृक्ष के विचार में भी शिशु एवं कन्या के लिये अशुभ फल का कथन किया गया है। कहा गया है कि मूलादि दोष में उत्पन्न होने पर यदि शान्ति नही किया जाता है तो नारद ऋषि ने उसको अनिष्टकर माना है। यथा-

वत्सरात्पितरं हन्ति मातरं तु त्रिवर्षतः।
द्युम्नं वर्षद्वयेनैव श्वसुरं नववर्षतः।
जातं बालं वत्सरेण वर्षे पंचभिरग्रजम्।
श्यालकं चाष्टभिर्वर्षैरक्नुतान् सन्ति सप्तभिः।
तस्माच्छान्तिं प्रकुर्वीत प्रयत्नाद्विधिपूर्वकम्।
तस्मादवश्यं चरणचतुष्टयेऽपि शान्तिर्विधेया इति।

मूल दोष के कारण पिता को एक वर्ष में एवं माता को तीन वर्ष में अरिष्ट होता है। धन को दो वर्ष में एवं श्वसुर को नौ वर्ष में कष्ट होता है। बालक को एक वर्ष में, उसके बड़े भाई को पांच वर्ष में तथा श्यालक को आठवें वर्ष में कष्ट होता है इसलिये प्रयत्न पूर्वक शान्ति कराना चाहिये।

जयार्णव नामक ग्रन्थ में मूल नक्षत्र को एक वृक्ष के रूप में मानकर विचार किया गया गया है। इसमें मूल के सम्पूर्ण घटी को क्रमशः 7, 8, 10, 12, 5, 4 एवं घटी में बाधकर फल बतलाया गया है। जैसे -

मूलं स्तम्भत्वचा शाखा पत्रं पुष्पं फलं शिखा। मुनयोऽष्टौ दिशो रुद्राः सूर्याः पंचाब्धयोऽग्नयः। मूले तु 7 मूलनाश स्यात्स्तम्भे 8 वंशविनाशनम्। त्वचि 10 मातुर्भवेत्क्लेशः शाखायां 11 मातुलस्य च। पत्रे 12 राज्य विजानीयात्पुष्पे 5 मन्त्रिपदं स्मृतम्। फले 4 च विपुला लक्ष्मी शिखाया 3 मपजीवितम्।

अर्थात् मूल रूपी वृक्ष को मूल, स्तम्भ, त्वचा, शाखा, पत्र, पुष्प, फल एवं शिखा इन आठ अंगों में बाटा गया है। मूल नक्षत्र प्रारम्भ होने से 7 घटी तक मूल यानी जड़ होता है जिसका फल विनाश

होता है। अग्रिम 8 से 15 घटी तक स्तम्भ होता है जिसका फल वंश विनाश होता है। 16 घटी से 25 घटी तक स्तम्भ होता है इसमें माता को कष्ट होता है। 26 से लेकर 36 घटी तक मामा को कष्ट होता है। 37 से 48 घटी तक पत्र होता है इसका फल राज्य की प्राप्ति है। 49 से 53 तक मन्त्री पद प्राप्त होता है। 54 से 57 घटी तक फल होता है इसमें विपुल लक्ष्मी का योग होता है तथा 57 से 60 धटी तक वृक्ष की शिखा होती है इसका फल अल्प जीवन होता है।

मूल नक्षत्र में उत्पन्न कन्या के फल का विचार के लिये मूल नक्षत्र प्रारम्भ से 4 घटी तक शीर्ष मानना चाहिये। इसमें जन्म लेने वाली कन्या के पशु धन का नाश होता है। अग्रिम 5 से 10 घटी तक धन हानि, 11घटी से 15घटी तक धनागमन, 16 से 20घटी तक मूल पुरुष का हृदय होता है इसमें जन्म लेने से कुटिलता आती है। 21 से 30 घटी तक बाहु रहता है इसमें जन्म लेने का फल धनागम होता है। 31 से 38 तक पाणि होता है इसका फल दया है। 39 से 42 तक गुह्य है इसका फल कामिनी होता है। 43 से 46 तक जंघा होता है इसका फल ज्येष्ठ मातुल हानि है। 47 से 50 तक जानु होता है इसका फल ज्येष्ठ भातृ हानि होता है। 51 से साठ घटी तक पाद होता है इसका फल बंधक होता है।

इस प्रकार ठीक समय ज्ञात होने पर आप आसानी से बालक एवं बालिकाओं के लिये अलग - अलग फल का निरूपण कर सकते है।

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते है। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1-मूल नक्षत्र के प्रथम चरण में शिशु का जन्म होने पर उसके पिता के लिये होता हैं ?

क- अरिष्ट, ख- इष्ट, ग- शुभ, घ- सुख।

प्रश्न 2- मूल नक्षत्र के दूसरे चरण में जन्म होने पर जातक की माता के लिये होता है?

क- अरिष्ट, ख- इष्ट, ग- शुभ, घ- सुख।

प्रश्न 3-मूल नक्षत्र के तीसरे चरण में शिशु का जन्म होने पर नाश होता है ?

क- तन का, ख-धन का, ग-जन का, घ-भाई का।

प्रश्न 4- मूल नक्षत्र के चौथे चरण में जन्म होने पर आगमन होता है।

क- तन का, ख-धन का, ग-जन का, घ-भाई का।

प्रश्न 5- मूल नक्षत्र का पहला चरण यदि दिन में हो तो शिशु के किसको अरिष्ट होता है?

क -माता को, ख- पिता को, ग- भाई को, घ- मामा को

प्रश्न 6- मूल नक्षत्र का दूसरा चरण रात्रि में हो तो वह शिशु के किसको विनाशक होता है?

क -माता को, ख- पिता को, ग- भाई को, घ- मामा को

प्रश्न 7- मूल का प्रथम चरण यदि रात्रि में हो तो शिशु के किसके लिये कष्टकारी नही होता है?

क -माता के, ख- पिता के, ग- भाई के, घ- स्वयं के।

प्रश्न 8-मूल नक्षत्र का दूसरा चरण दिन में हो तो किसके लिये कष्टकारी नही होता है?

क -माता को, ख- पिता को, ग- भाई को, घ- मामा को

प्रश्न 9- मूल दोष के कारण पिता को कितने वर्ष में अरिष्ट होता है?

क- दो वर्ष में, ख- तीन वर्ष में, ग- एक वर्ष में, घ- चार वर्ष में।

प्रश्न 10-मूल दोष के कारण बालक के बड़े भाई को कष्ट होता है।

क- दो वर्ष में, ख- तीन वर्ष में, ग- एक वर्ष में, घ- पांच वर्ष में।

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप मूल के विषय में विभिन्न मत मतान्तरों को जान गये होगें। अब आपको इस विषय में किसी भी प्रकार का भ्रम नही उत्पन्न होगा। अब मूल का वास कहां है इसका विचार आप अग्रिम प्रकरण में करने जा रहे हैं क्योकि इससे भी मूल के दोषों का आकलन कर सकेगे।

1.3.3 मूल वास विचार-

स्वर्गे शुचिप्रौष्ठपदेषुमाघे भूमौ नभः कार्त्तिकचैत्रपौषे।
मूलं ह्यधस्तात्तु तपस्यमार्गवैशाखशुक्रेष्वशुभं च तत्र ।।

अर्थात् आषाढ़, भाद्रपद, आश्विन और माघ इन चार महीनों में मूल का वास स्वर्ग में होता है। श्रावण, कार्त्तिक, चैत्र, पौष मास में मूल का निवास भूमि पर होता है। फाल्गुन, मार्गशीर्ष, वैशाख और ज्येष्ठ मास में मूल का वास पाताल लोक में होता है। मूल जिस लोक में रहता है वहीं पर फल देता है।

यदि श्रावण, कार्त्तिक, चैत्र, पौष इन चार महीनों में जन्म हो तो मूल शान्ति अवश्य करानी चाहिये। सामर्थ्य रहने पर सभी महीनों में जन्म होनें पर शान्ति करना आवश्यक है। अभुक्त मूल में जन्म होने पर सभी महीनों में शान्ति करनी चाहिये। यह विचार चान्द्र मास के अनुसार किया गया है । किसी आचार्य के अनुसार सौर मास से भी विचार कर सकते है।

ज्योतिषार्णव के अनुसार मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख एवं ज्येष्ठ में मूल का वास रसातल में होता है। माघ, आश्विन, आषाढ़ एवं भाद्रपद में मूल का वास स्वर्ग में होता है। पौष, श्रावण, चैत्र एवं कार्त्तिक

में मूल का वास भूमि पर होता है। भूमिष्ठ मूल अत्यन्त दोष उत्पनन करता है तथा अन्यत्र स्थित मूल स्वल्प यानी अत्यन्त थोड़ा दोष उत्पन्न करता है। इसी प्रकार संक्रान्ति के आधार पर भी मूल वास का विचार किया गया है।

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है । प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है -

प्रश्न-1 श्रावण मास में मूल का वास किसमें होता है ?

क- स्वर्ग, ख- भूमि, ग- पाताल, घ- सभी जगह।

प्रश्न-2 आषाढ़ मास में मूल का वास किसमें होता है ?

क- स्वर्ग, ख- भूमि, ग- पाताल, घ- सभी जगह।

प्रश्न-3 वैशाख़ मास में मूल का वास किसमें होता है ?

क- स्वर्ग, ख- भूमि, ग- पाताल, घ- सभी जगह।

प्रश्न-4 माघ मास में मूल का वास किसमें होता है ?

क- स्वर्ग, ख- भूमि, ग- पाताल, घ- सभी जगह।

प्रश्न-5 चैत्र मास में मूल का वास किसमें होता है ?

क- स्वर्ग, ख- भूमि, ग- पाताल, घ- सभी जगह।

प्रश्न-6 सौर मास माना जाता है?

क- चन्द्रमा से, ख- सूर्य से, ग- नक्षत्र से, घ- तारा से।

प्रश्न-7 सामर्थ्य रहने पर शान्ति करानी चाहिये-

क- सभी महीनों में, ख- कुछ महीनों में, ग- स्वेच्छया, घ- नही।

प्रश्न -8 भूमि पर अत्यन्त दोष होता है-

क- भूमिष्ठ मूल का, ख- स्वर्गस्थ मूल का, ग- पातालस्थ मूल का, घ- आकाशस्थ मूल का।

इस प्रकरण में आप ने देखा कि कब- कब मूल का निवास कहां रहता है तथा उसका कितना फल जातक के जीवन पर तथा उसके संबंधियों पर पड़ता है। अब आप यह जानेगें कि मूल की शान्ति कैसे करायी जा सकती है।

1.4 मूल शान्ति विधान -

1.4.1 मूल शान्ति का प्रायोगिक विधान

गोमुख प्रसव शान्ति के अनन्तर मूल शान्ति विधि इस प्रकार है। यजमान सपत्नीक सबालक सम्यक् आसन पर प्राङ्मुख बैठकर अपने दक्षिण में पत्नी को बिठाकर आचमनादि पूर्वक पवित्र होकर स्वस्ति मन्त्रों का पाठ करे। इसके अनन्तर संकल्प करें- अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकराषिस्थिते चन्द्रे अमुकराषिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथायथाराशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं ग्रह गुण गण विशेषण विशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुक गोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा सपत्नीकोऽहं अस्य जातकस्य अमुक नक्षत्र जनन पित्राद्यरिष्टनिरसनार्थं पंचाभिमन्त्रितकलशैः स्नानमहं करिष्ये।

तत्रादौ निर्विघ्न्तासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनमहं करिष्ये।

इस प्रकार संकल्प करके यथोपलब्ध पूजन सामग्रियों से श्री गणेशाम्बिका का पूजन करना चाहिये। अपने आगे चावल से श्वेत अष्टदल कमल बनाकर उस पर सप्तधान्य रखकर सौ छिद्र वाले एक कलश को रखें। उसके चारो तरफ पूर्वादि क्रम से या ईशानादि क्रम से प्रारम्भ कर चार कलश, कलश स्थापन विधि के अनुसार स्थापित करें। शतछिद्र कलश के नीचे कोई ऐसा पात्र रखा जाना चाहिये जिसमें शतछिद्र कलश का जल धीरे-धीरे संगृहीत होता रहे। शतछिद्र कलश के अभाव में वहाँ कम्बल का टुकड़ा भी रखा जा सकता है या एक कलश में कम्बल का टुकड़ा लगाकर भी कलश स्थापन किया जा सकता है। उस स्थल पर भी स्नान या अभिषेक करने की विधि है, परन्तु मयूखादि ग्रन्थों ने स्नानं तु कर्मान्ते अभिषेक समये कहकर कर्म के अन्त में अभिषेक या स्नान करने का विधान भी दिया है।

आचारक्रम के अनुसार पूर्व स्थापित कुम्भ में देवदारु, रक्तचन्दन, कमल, कुष्ठ, प्रियंगु, शुण्ठी, मुस्ता, आमलक, वच, सर्षप, अगर, मुरा, मांसी, ऋद्धि, वृद्धि, उशीर इत्यादि औषधियों को डालना चाहिये। रुद्रध्यायं जपेत् कहकर पद्धतिकार ने बतलाया है कि रुद्री के पंचम अध्याय के 66 मन्त्रों का पाठ करना चाहिये। दक्षिण वाले कुम्भ में पंचामृत, गजमृद औषधि, तीर्थोदक यानी तीर्थ का जल, सप्तधान्य और सुवर्ण डालना चाहिये। यहाँ आशुः शिशानः से बारह मन्त्र तक का पाठ करना चाहिये। पश्चिम के कुम्भ में सप्तमृत्तिका डालना चाहिये। इस अवसर पर कृणुष्वपाजः से पाँच मन्त्रों का पाठ करना चाहिये। उत्तर के कुम्भ में पंच रत्न, वट, अश्वत्थ, पलास, प्लक्ष, उदुम्बर के पल्लव डालने चाहिये। जम्बू, निम्ब, कदम्ब, चिंचिडक, वट, उदुम्बर, प्लक्ष, आम्र का छाल और सत्ताइस

कूपों का जल डालना चाहिये। इस अवसर पर रक्षोहणं से चार मन्त्रों का पाठ करना चाहिये । मध्य वाले शतछिद्र कलश में शतौषधि, उसके अभाव में अच्छे वृक्षों का पल्लव, विष्णुक्रान्ता आदि छोड़ना चाहिये । इस अवसर पर त्र्यम्बकं मन्त्र का 108 बार पाठ करना चाहिये ।

इस प्रकार कलश स्थापन विधि के अनुसार कलशस्थापन कर पूर्णपात्र के ऊपर वरुण देवता को आवाहित पूजित कर सपत्नीक सजातक यजमान का अभिषेक करना चाहिये। दूर्वाम्रपल्लवों से वामभागस्थ पत्नी सहित यजमान के अभिषेक काल में अग्रलिखित मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये ।

पौराणिक मन्त्राः-

सुरास्त्वामभिषिंचन्तु ब्रह्मविष्णु महेश्वराः। वासुदेवो जगन्नाथस्तथा संकर्षणोविभुः ।। प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते। आखण्डलो- ग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा। वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः। ब्रह्मणासहिताः सर्वे दिक्पालाः पान्तु ते सदा।। कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धाक्रियामतिः। बुद्धिर्लज्जावपुः शान्तिः पुष्टिश्तुष्टिश्चमातरः।। एतास्त्वामभिषिंचन्तु देवपत्न्यः समागता। आदित्यश्चन्üमा भौमो बुधजीव- सितार्कजाः।। ग्रहास्त्वामभिषिंचन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः। देवदानव गन्धर्वा- यक्षराक्षस पन्नगाः।। ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च। देवपत्न्यो- üुमानागा दैत्याश्चाप्सरसा¯णाः।। अस्त्राणि सर्व शस्त्राणि राजानो वाहनानि च। औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये।। सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः। एतेत्वामभिषिंचन्तु धर्मकामार्थ सिद्धये।। अमृताभिषेको ऽस्तु ।। शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु ।।

तदनन्तर यजमान क्षौर कर्म कराकर तथा पत्नी नाखून आदि निकृन्तन कराकर पैरों में महावर इत्यादि लगाकर शुद्ध वस्त्र धारण कर पूजन स्थल पर उपस्थित हों । समान कार्यों की आवृत्ति न हो इसके लिये यजमान पूर्व में क्षौरादि कर्म करके पूजन स्थल पर उपस्थित होता है और अभिषेकादि विधि पूजनानन्तर सम्पादित होती है । इस प्रकार सारी विधियों का सम्पादन भी किया जा सकता है और समय भी बचाया जा सकता है ।

इसके अनन्तर पुनः स्वस्ति पाठ एवं संकल्पादि करके पंचांग पूजन की विधि प्रतिपादित करना चाहिये । यदि पूर्व में ये कार्य सम्पादित हो गये हों तो इसे पुनः सम्पादित करने की आवश्यकता नहीं है ।

अब एक भद्र पीठ पर श्वेत वस्त्र फैलाकर चौबीस दल कमल का निर्माण करना चाहिये । मध्य में एक कलश स्थापित करके पूर्णपात्र के ऊपर स्वर्ण की निर्ऋति देवता की प्रतिमा, अधि देवता एवं प्रत्यधि देवता की प्रतिमा रखनी चाहिये। यदि सुवर्ण में अशक्ताभाव हो तो तीन सुपारी रखना चाहिये ।

जिसमे मध्य वाली सुपारी को प्रधान देवता मानना चाहिये। अग्न्युत्तारण विधि सहित इन प्रतिमाओं को रखने का विधान है।

अग्न्युत्तारण विधि शान्ति विधानम् के वास्तु शान्ति प्रकरण में उल्लिखित है जिसका अवलोकन किया जा सकता है।

मूल नक्षत्र के प्रधान देवता निर्ऋति होते हैं। इस नक्षत्र के अधिदेवता ज्येष्ठा नक्षत्र के देवता इन्द्र होते है तथा प्रत्यधि देवता अप होते है। इनको अधोलिखित मन्त्रों से आवाहित करना चाहिये-

ॐ भूर्भुवः स्वः निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः मूलाधिपति इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः मूलस्यप्रत्याधिपति अöयो नमः अप आवाहयामि स्थापयामि।

उसके बाद चौबीस दलों में अग्रलिखित देवताओं को स्थापित करना चाहिये। इन चौबीसों स्थानों में अक्षत पुंज के ऊपर सोपाड़ी रखकर क्रमशः आवाहन किया जाता है।

ॐ भूर्भुवः स्वः विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः विश्वान् देवानावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अष्टवसुभ्यो नमः अष्टवसूनावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अजैकपदे नमः अजैकपादमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अहिर्बुध्न्याय नमः अहिर्बुध्न्यमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः पूष्णे नमः पूषाणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अश्विभ्यां नमः अश्विनौ आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः यमाय नमः यममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः अग्निमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः प्रजापतये नमः प्रजापतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सोमाय नमः सोममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः रुद्राय नमः रुद्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अदितये नमः अदितिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः बृहस्पतये नमः बृहस्पतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सर्पेभ्यो नमः सर्पानावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः पितृभ्यो नमः पितृन् आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगाय नमः भगमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अर्यमणे नमः अर्यमाणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सवित्रे नमः सवितारमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विष्वकर्मणे नमः विष्वकर्माणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वायवे नमः वायुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राग्नीभ्यां नमः इन्द्राग्नौ आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः मित्राय नमः मित्रमावाहयामि स्थापयामि।

अब मण्डल से बाहर इन्द्रादिदश दिक्पालों का आवाहन करना चाहिये। जिसका क्रम इस प्रकार है- पूर्व में इन्द्र, अग्नि कोण में अग्नि, दक्षिण में यम, नैर्ऋत्य कोण में निर्ऋति, पश्चिम में वरुण, वायव्य कोण में वायु, उत्तर में सोम, ईशानकोण में ईशान, ईशान और पूर्व के बीच में ब्रह्मा एवं पश्चिम तथा नैर्ऋत्य के बीच में अनन्त को आवाहित करना चाहिये। उक्त दिशाओं में अक्षतपुंज के ऊपर सोपाड़ी रखकर अक्षत छोड़ते हुये आवाहन किया जाता है।

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि ।

ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः अग्निमावाहयामि स्थापयामि ।

ॐ भूर्भुवः स्वः यमाय नमः यममावाहयामि स्थापयामि ।

ॐ भूर्भुवः स्वः निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि स्थापयामि ।

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि स्थापयामि ।

ॐ भूर्भुवः स्वः वायवे नमः वायुमावाहयामि स्थापयामि ।

ॐ भूर्भुवः स्वः सोमाय नमः सोममावाहयामि स्थापयामि ।

ॐ भूर्भुवः स्वः ईशानाय नमः ईशानमावाहयामि स्थापयामि ।

ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि स्थापयामि ।

ॐ भूर्भुवः स्वः अनन्ताय नमः अनन्तमावाहयामि स्थापयामि ।

हाथ में अक्षत लेकर - नैर्ऋत्यादिदेवताः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु। यह कहकर समस्त आवाहित देवताओं की प्राणप्रतिष्ठा करे। नैर्ऋत्यादिदेवताभ्यो नमः कहकर समस्त प्रकार से इनका पूजन करना चाहये।

ततो कुण्डे स्थडिले वाऽग्निं प्रतिष्ठापयेत्- इसके बाद स्थण्डिल या कुण्ड का निर्माण करना चाहिये। यदि कुण्ड का निर्माण किया गया है तो उसकी ऊपरी मेखला श्वेत वर्ण की होगी तथा उसमे विष्णु देवता का आवाहन किया जायेगा। मध्य मेखला रक्त वर्ण की होगी तथा उसमे ब्रह्म देवता की

स्थापना की जायेगी। निचली मेखला कृष्ण वर्ण की होगी तथा उसमे रुद्र देवता की स्थापना होगी। कुण्ड की योनि रक्त वर्ण की होती है तथा इसमे गौरी देवी की स्थापना की जाती है। यथा-

उपरिमेखलायाम् - विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि। मध्यमेखलायाम् - ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि स्थापयामि। अधो मेखलायाम् -रुद्राय नमः रुद्रमावाहयामि स्थापयामि। योन्याम् - गौर्यै नमः गौरीमावाहयामि स्थापयामि। अनन्तरं

पंचभूसंस्काराः-

संकल्पः- अस्मिन् मूलशान्तिकर्मणि पंचभूसंस्कारपूर्वकमग्निस्थापनं करिष्ये। कुशैः परिसमूह्य तान् कुशान् ऐशान्यां परित्यज्य।। 1।। गोमयोदकाभ्यामुपलिप्य।। 2।। स्रुवमूलेनोल्लिख्य।। 3।। अनामिकांगुष्ठेनोद्धृत्य।। 4।। जलेनाभ्युक्ष्य।। 5।। इतिपंचभूसंस्काराः।।

पंचभूसंस्कार का अर्थ उस भूमि के पाँच संस्कार से है जहाँ अग्नि स्थापन करना है। सबसे पहले कुशाओं से उस भूमि को साफ किया जाता है तथा उन कुशाओं का ईशान दिशा में परित्याग कर दिया जाता है। गाय के गोबर एवं जल से उस भूमि का उपलेपन किया जाता है। स्रुव के मूल से पश्चिम से पूर्व की तरफ दक्षिण से उत्तर की ओर तीन रेखायें खीचीं जाती है। रेखाकरण से उभरी हुयी कुछ मिट्टियों को दाहिने हाथ की अनामिका एवं अंगुष्ठ से बाहर निकालते है। तथा अन्त में उसके ऊपर जल छोड़ते है। इस प्रकार पंचभूसंस्कार करके ही हवनीय अग्नि की स्थापना की जाती है। अग्निस्थापन के समय अधोलिखित मन्त्र उच्चारित किया जाता है। अग्निंदूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे देवाँ2 आसादयादिह। अथवा।। ॐ भूर्भुवः स्वः अग्निनारायणाय नमः आवाहयामि स्थापयामि। इत्यग्निस्थापनम्।

अग्निपात्रे गन्धाक्षतादि दत्वा अर्थात् जिस पात्र में अग्नि लायी गयी हो उस पात्र में गन्धाक्षतादि छोड़ना चाहिये। इसके अनन्तर नवग्रहों का आवाहन करना चाहिये।

ॐ सूर्याय नमः सूर्यमावाहयामि स्थापयामि। ॐ चन्द्रमसे नमः चन्दमसमावाहयामि स्थापयामि। ॐ भौमाय नमः भौममावाहयामि स्थापयामि। ॐ बुधाय नमः बुधमावाहयामि स्थापयामि। ॐ बृहस्पतये नमः बृहस्पतिमावाहयामि स्थापयामि। ॐ शुक्राय नमः शुक्रमावाहयामि स्थापयामि। ॐ शनैश्चराय नमः शनैश्चरमावाहयामि स्थापयामि। ॐ राहवे नमः राहुमावाहयामि स्थापयामि। ॐ केतवे नमः केतुमावाहयामि स्थापयामि।

प्रत्येक ग्रहों के दक्षिणभाग में अधिदेवताओं का आवाहन किया जाना चाहिये। ॐ ईश्वराय नमः ईश्वरमावाहयामि स्थापयामि। ॐ उमायै नमः उमामावाहयामि स्थापयामि। ॐ स्कन्दाय नमः स्कन्दमावाहयामि स्थापयामि। ॐ विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि स्थापयामि। ॐ ब्रह्मणे नमः

ब्रह्माणमावाहयामि स्थापयामि। ॐ इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि। ॐ यमाय नमः यममावाहयामि स्थापयामि। ॐ कालाय नमः कालमावाहयामि स्थापयामि। ॐ चित्रगुप्ताय नमः चित्रगुप्तमावाहयामि स्थापयामि।

प्रत्येक ग्रहों के वाम भाग में प्रत्यधिदेवताओं का आवाहन किया जाता है- यथा- ॐ अग्नये नमः अग्निमावाहयामि स्थापयामि। ॐ अ़्यो नमः अप आवाहयामि स्थापयामि स्वाहा। ॐ पृथिब्यै नमः पृथ्वीमावाहयामि स्थापयामि। ॐ विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि स्थापयामि। ॐ इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि। ॐ इन्द्राण्यै नमः इन्द्राणीमावाहयामि स्थापयामि। ॐ प्रजापतये नमः प्रजापतिमावाहयामि स्थापयामि। ॐ सर्पेभ्यो नमः सर्पानावाहयामि स्थापयामि। ॐ ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि स्थापयामि।

इसके अनन्तर पंचलोकपालों का आवाहन किया जाता है- यथा- ॐ गणपतये नमः गणपतिमावाहयामि स्थापयामि। ॐ दुर्गायै नमः दुर्गामावाहयामि स्थापयामि। ॐ वायवे नमः वायुमावाहयामि स्थापयामि। ॐ आकाशाय नमः आकाशमावाहयामि स्थापयामि। ॐ अश्विभ्यां नमः अश्विनौ आवाहयामि स्थापयामि।

इसके अनन्तर वास्तु एवं क्षेत्रपाल का आवाहन किया जाता है। ॐ वास्तोष्पये नमः वास्तोष्पतिमावाहयामि स्थापयामि। ॐ क्षेत्राधिपतये नमः क्षेत्राधिपतिमावाहयामि स्थापयामि।

इसके अनन्तर दशों दिशाओं में दिक्पालों को आवाहित एवं स्थापित किया जाता है। यथा-

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः अग्निमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः यमाय नमः यममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वायवे नमः वायुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सोमाय नमः सोममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः ईशानाय नमः ईशानमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अनन्ताय नमः अनन्तमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ सूर्यादि अनन्तान्त देवताः सुप्रतिष्ठिताः वरदा भवन्तु।

इसके बाद सूर्यादि अनन्तान्तदेवताभ्यो नमः नामक मन्त्र से समस्त उपचारों द्वारा पूजन करना चाहिये। ग्रहों के ईशान भाग में असंख्यात रुद्र की स्थापना की जानी चाहिये। ॐ असंख्यातरुद्र देवताभ्यो नमः आवाहयामि स्थापयामि कहकर असंख्यात कलश के ऊपर वरुण एवं असंख्यात रुद्र दोनों का पूजन करना चाहिये।

इसके अनन्तर शान्ति विधानम् में बतायी गयी विधि के अनुसार कुशकण्डिका करके आज्यभागान्त आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। इसके बाद वराहुति एवं ग्रहाहुति देने का विधान इस प्रकार है।

ॐ गणपतये स्वाहा। ॐ अम्बिकायै स्वाहा। ॐ सूर्याय स्वाहा। ॐ चन्द्रमसे स्वाहा।ॐभौमाय स्वाहा।ॐबुधाय स्वाहा।ॐबृहस्पतये स्वाहा।ॐशुक्राय स्वाहा।ॐशनैष्चराय स्वाहा।ॐराहवे स्वाहा।ॐकेतवे स्वाहा।ॐईष्वराय स्वाहा।ॐउमायै स्वाहा।ॐस्कन्दाय स्वाहा। ॐविष्णवे स्वाहा।ॐब्रह्मणे स्वाहा।ॐइन्द्राय स्वाहा।ॐयमाय स्वाहा।ॐकालाय स्वाहा।ॐचित्रगुप्ताय स्वाहा।ॐअग्नये स्वाहा।ॐअöयः स्वाहा।ॐपृथिब्यै स्वाहा।ॐविष्णवे स्वाहा।ॐइन्द्राय स्वाहा।ॐइन्द्राण्यै स्वाहा।ॐप्रजापतये स्वाहा।ॐसर्पेभ्यः स्वाहा।ॐब्रह्मणे स्वाहा।ॐगणपतये स्वाहा।ॐदुर्गायै स्वाहा।ॐवायवे स्वाहा।ॐगणपतये स्वाहा।ॐआकाशाय स्वाहा।ॐअष्विभ्यां स्वाहा।ॐवास्तोष्पये स्वाहा।ॐक्षेत्राधिपतये स्वाहा।ॐइन्द्राय स्वाहा।ॐअग्नये स्वाहा।ॐयमाय स्वाहा।ॐनिर्ऋतये स्वाहा।ॐवरुणाय स्वाहा।ॐवायवे स्वाहा।ॐसोमाय स्वाहा।ॐईशानाय स्वाहा।ॐब्रह्मणे स्वाहा।ॐअनन्ताय स्वाहा।ॐअसंख्यात रुद्रेभ्यः स्वाहा ।

इसके अनन्तर प्रधान होम 1008, 108, 28 या 8 बार करने का विधान है । यथा-

ॐभूर्भुवः स्वः निर्ऋतये स्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वः मूलाधिपति इन्द्राय स्वाहा ।

ॐभूर्भुवः स्वः मूलस्य प्रत्याधिपति अöयः स्वाहा ।

इसके बाद उक्त चौबीसों देवताओं के लिये अट्ठाइस या आठ बार आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। यथा-

ॐ भूर्भुवः स्वः विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः विष्णवे स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः अष्टवसुभ्यः स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः वरुणाय स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः अजैकपदे स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः अहिर्बुध्न्याय स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः पूष्णे स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः अश्विभ्यां स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः यमाय स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः अग्नये स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः प्रजापतये स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः सोमाय स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः रुद्राय स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः अदितये स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः बृहस्पतये स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः सर्पेभ्यः स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः पितृभ्य स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः भगाय स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः अर्यमणे स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः सवित्रे स्वाहा । ॐभूर्भुवः स्वः

विश्वकर्मणे स्वाहा। ॐभूर्भुवः स्वः वायवे स्वाहा। ॐभूर्भुवः स्वः इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा। ॐभूर्भुवः स्वः मित्राय स्वाहा।

ॐइन्द्राय स्वाहा। ॐअग्नये स्वाहा। ॐयमाय स्वाहा। ॐनिर्ऋतये स्वाहा। ॐवरुणाय स्वाहा। ॐवायवे स्वाहा। ॐसोमाय स्वाहा। ॐईशानाय स्वाहा ॐब्रह्मणे स्वाहा। ॐअनन्ताय स्वाहा।

इसके बाद त्र्यम्बकं मन्त्र का 108 बार हवन करना चाहिये। ॐत्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्द्धनम्। ऊर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। स्वाहा।

ततोऽग्निपूजनम्-(उसके बाद अग्नि का पूजन करें)ॐअग्नेवैंश्वानराय नमः। सकलपूजार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि। इत्यग्निपूजनम्।

हवनीय द्रव्यं गृहीत्वा-ॐअग्नये स्विष्टकृते स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते न मम।

ततो भूरादिनवाहुतयः- भूः स्वाहा। इदमग्नये न मम। भुवः स्वाहा। इदं वायवे न मम।। स्वः स्वाहा। इदं सूर्याय न मम।। अग्निवरुणाभ्यां स्वाहा। इदमग्निवरुणाभ्यां न मम।। अग्निवरुणाभ्यां स्वाहा। इदमग्निवरुणाभ्यां न मम। अग्नये अयसे स्वाहा। इदमग्नये अयसे न मम। वरुणाय सवित्रे विष्णवे विष्वेभ्यो देवेभ्यो मरुöयः स्वर्केभ्यश्च स्वाहा। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुöयः स्वर्केभ्यश्च न मम।। वरुणायाऽऽ दित्यायाऽदितये स्वाहा। इदं वरुणायाऽऽ दित्यायाऽदितये न मम। प्रजापतये स्वाहा इदं न मम। इत्याज्येन।।

सर्वप्रथम इन्द्रादि दशदिक्पालों को बलिदान देना चाहिये। उसके बाद ग्रहों को तथा क्षेत्रपाल को बलिदान देना चाहिये। ततो बलिदानम्- इन्द्रादि दश दिक्पालेभ्यो नमः। गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि। हाथ में जल और अक्षत लेकर बोलें- इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यः सांगेभ्यः सपरिवारेभ्यः सायुधेभ्यः सशक्तिकेभ्यः एतान् सदीप दधि माषाक्षत बलीन् समर्पयामि। इति जलाक्षतान् त्यजेत्। ऐसा कहकर हाथ का जल एवं अक्षत त्याग दें। हाथ में पुष्प लेकर प्रार्थना करें- भो भो इन्द्रादिदशदिक्पालाः सांगाः सपरिवाराः सायुधाः सशक्तिकाः मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य गृहे आयु कर्त्तारः क्षेमकर्त्तारः शान्तिकर्त्तारः पुष्टिकर्त्तारः तुष्टिकर्त्तारः वरदा भवत। हाथ का पुष्प समर्पित कर दें।

हाथ में जल लेकर बोलें- अनेन बलिदानेन इन्द्रादिदशदिक्पालाः प्रीयन्ताम्।

अब ग्रहों के बलिदान का विधान प्रकाशित है- सर्वप्रथम हाथ में गन्धाक्षत पुष्प लेकर नवग्रहों का ध्यान करके उनके ऊपर चढ़ा देतें है।

नवग्रहादिमण्डलस्थ देवताभ्यो नमः। गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि।

हाथ में जल एवं अक्षत लेकर- ग्रहेभ्यः सांगेभ्यः सपरिवारेभ्यः सायुधेभ्यः सशक्तिकेभ्यः अधिदेवता प्रत्यधिदेवता गणपत्यादि पंचलोकपाल वास्तोष्पति सहितेभ्यः एतान् सदीप दधि माषाक्षत बलीन्

समर्पयामि। इति जलाक्षतान् त्यजेत्। ऐसा कहकर हाथ का जल एवं अक्षत त्याग दें।

हाथ में पुष्प लेकर प्रार्थना करें- भो भो सूर्यादिग्रहाः सांगाः सपरिवाराः सायुधाः सशक्तिकाः अधिदेवता प्रत्यधिदेवता गणपत्यादि पंचलोकपाल वास्तोष्पति सहिताः मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य गृहे आयु कर्त्तारः क्षेमकर्त्तारः शान्तिकर्त्तारः पुष्टिकर्त्तारः तुष्टिकर्त्तारः वरदा भवत। हाथ का पुष्प समर्पित कर दें। हाथ में जल लेकर बोलें- अनेन बलिदानेन सूर्यादिग्रहाः प्रीयन्ताम्। जल छोड़ देना चाहिये। अथवा नवग्रहों के प्रत्येक मन्त्रों से या नामों से पृथक्- पृथक् बलिदान भी दिया जा सकता है।

अब क्षेत्रपाल बलिदान का विधान विवृत है-ॐक्षेत्रपालाय नमः। सकलपूजार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि। हाथ में पुष्प लेकर अग्रलिखित श्लोकों से क्षेत्रपाल की प्रार्थना हाथ जोड़कर करें।

नमो वै क्षेत्रपालस्त्वं भूतप्रेतगणैः सह।
पूजा बलिं गृहाणेमं सौम्यो भवतु सर्वदा।।
पुत्रान् देहि धनं देहि देहि मे गृहजं सुखम्।
आयुरारोग्य मे देहि निर्विघ्नं कुरु सर्वदा।।

क्षेत्रपालाय नमः प्रार्थनार्थे पुष्पाणि समर्पयामि-

हाथ में जल अक्षत लेकर-ॐक्षेत्रपालाय सांगाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय मारीगणभैरव राक्षस कूष्माण्ड वेताल भूत प्रेत पिशाच शाकिनी डाकिनी पिशाचिनी गण सहिताय एतं सदीपमाषभक्तबलिं समर्पयामि।

प्रार्थयेत्- हाथ में पुष्प लेकर प्रार्थना करें- भो भो क्षेत्रपाल क्षेत्रं रक्षबलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य गृहे आयु कर्त्ता क्षेम कर्त्ता शान्तिकर्त्ता पुष्टिकर्त्ता तुष्टिकर्त्ता वरदो भव। हाथ में जल लेकर- अनेन बलिदानेन क्षेत्रपालः प्रीयताम्। कहकर जल छोड़ दें। तदनन्तर आचमन करके पूर्णाहुति प्रदान करनी चाहिये।

नारियल में रक्त वस्त्र आवेष्टित कर 12 या 6 या 4 स्रुव घी स्रुची में डालकर उसके ऊपर नारिकेल स्थापित कर ॐ पूर्णाहुत्यै नमः मन्त्र से पूजन करके स्रुची को उठाकर पूर्णाहुति देनी चाहिये।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। स्वाहा। इदमग्नये वैश्वानराय वसुरुü दित्येभ्यः शतक्रतवे सप्तवते अग्नयेऽयश्च न मम ।।

पूर्णाहुति देने के बाद वसोर्द्धारा हवन करने का विधान है। वसोः पवित्रमसि शतधारं व्वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु व्वसोः पवित्रेण शत धारेण सुप्वा कामधुक्षः स्वाहा।।

उसके बाद अग्नि की एक बार प्रदक्षिणा करके पश्चिम भाग में बैठ जाना चाहिये या स्थित हो जाना

चाहिये। ततो ऽग्निं प्रदक्षिणीकृत्य पश्चिमदेशे प्राङ्मुखोपविश्य।। कुण्ड के ईशान भाग से स्रुव द्वारा भस्म निकाल कर अनामिका अंगुलि से ललाट में, ग्रीवा में, दक्षिण भुजा के मूल में तथा हृदय में लगाना चाहिये।

संस्रव प्राशनम्।। आचमनम्।। पवित्राभ्यां मार्जनम्।। अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः।। ब्रह्मा के लिये पूर्णपात्र प्रदान करने का विधान है। ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानम्।। कृतस्य मूलशान्तिहोमकर्मणो ऽ ¯तयाविहितमिदं पूर्णपात्रं सदक्षिणं ब्रह्मणे तुभ्यमहं सम्प्रददे।। इस मन्त्र को पढ़कर ब्रह्मा को पूर्णपात्र देना चाहिए तथा अग्रिम मन्त्र को पढ़कर उसको ग्रहण करने का विधान है।ॐद्यौस्त्वा ददातु पृथिवीत्वा प्रतिगृह्णातु।।

अग्नि के पश्चिम तरफ प्रणीता को उलट दे। प्रणीता विमोक करने पर निःसृत जल का उपयमन कुशा द्वारा मार्जन करे।

ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते क्रण्वन्तुभेषजम्।।

उपयमन कुशा को अग्नि में प्रक्षिप्त कर ब्रह्म ग्रन्थि को खोल दें। उपयमन कुशानामग्नौ प्रक्षेपः ब्रह्मग्रन्थि विमोकः।।

अभिषेकः -

योऽसौ वज्र धरो देवो महेन्द्रो गज वाहनः।
मूल जात शिशोर्दोषं मातृपित्रोर्व्यपोहतु।।
योऽसौ शक्ति धरो देवो हुत् भुङ्केष वाहनः।
सप्तजिह्वष्च देवोऽग्निर्मूलदोषं व्यपोहतु।।
योऽसौ दण्डधरो देवो धर्मो महिष वाहनः।
मूल जात शिशोर्दोषं व्यपोहतु यमो यमः।।
योऽसौ खङ्गधरो देवो निर्ऋती राक्षसाधिपः।
प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं गण्डान्तसम्भवम्।।
योऽसौ पाशधरो देवो वरुणश्च जलेश्वरः।
नक्रवाह प्रचेता वो मूलदोषं व्यपोहतु।।
योऽसौ देवौ जगत् प्राणो मारुतो मृगवाहनः।
प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं बालस्यशान्तिदः।।
योऽसौ निधिपतिर्देवो खड्गभृद्वाजिवाहनः।
मातृपित्रो शिशुश्चैव र्मूलदोषं व्यपोहतु।।
अयोऽसौ पशुपतिर्देवः पिनाकी वृषवाहनः।

आश्लेषामूलगण्डान्तं दोषमाशु व्यपोहतु।।
विघ्नेशो क्षेत्रपः दुर्गा लोकपाला नवग्रहाः।
मूल दोष प्रशमनं सर्वे कुर्वन्तु शान्तिदः।।
मूलर्क्षे जात बालस्य मातापित्रोर्धनस्य च।
भ्रातृज्ञाति कुलस्थानां दोषं सर्वं व्यपोहतु।।
योऽसौ वागीश्वरो नाम ह्यधिदेवो बृहस्पति।
मातृपितृशिशोश्चैव गण्डान्तं स व्यपोहतु।।
पितरः सर्वभूतानां रक्षन्तु पितरः सदा।
सार्प नक्षत्र जातस्य वित्तं च ज्ञाति बान्धवान्।।
इस प्रकार से ज्येष्ठा इत्यादि की भी शान्ति करनी चाहिये।
सुरास्त्वामभिषिंचन्तु ब्रह्मविष्णु महेश्वराः।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा संकर्षणोविभुः ।।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते।
आखण्डलोग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा।
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः।।
ब्रह्मणा सहिताः सर्वे दिक्पालाः पान्तु ते सदा।।
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रियामतिः।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः कान्तिश्तुष्टिश्च मातरः।।
एतास्त्वामभिषिंचन्तु देवपत्न्यः समागता।
आदित्यश्चन्ü मा भौमो बुधजीवसितार्कजाः।।
ग्रहास्त्वामभिषिंचन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः।
देवदानव गन्धर्वा यक्षराक्षस पन्नगाः।।
ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च।
देवपत्न्योü मानागा दैत्याश्चाप्सरसाणाः।।
अस्राणि सर्व शस्त्राणि राजानो वाहनानि च ।
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये।।
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः।
एतेत्वामभिषिंचन्तु धर्मकामार्थ सिद्धये।।

अमृताभिषेको ऽस्तु ।। शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु ।।

इसके अनन्तर षिशु के समस्त अंगो का स्पर्श करते हुये पिता आशीर्वाद प्रदान करे।

अब घी से भरे हुये कॉसें के पात्र में माता एवं पिता बालक के मुख को देखें। इस अवसर पर रूपाधिष्ठातृसमस्त देवताभ्यो नमः का उच्चारण करना चाहिये। तदनन्तर इस पूरित घृतपात्र को यह कहते हुये दान दे देना चाहिये- कृतस्य मुखावलोकन कर्मणः सांगतासिद्ध्यर्थं इदं घृतपूर्णकांस्यपात्रं सहिरण्यं दातुमहमुत्सृजे।

इस प्रकार ब्राह्मण भोजनादि का संकल्प का उत्तर पूजन करना चाहिये एवं विसर्जन करना चाहिये।

क्षमा प्रार्थना-

जपश्च्छिü तपश्शिछü यश्च्छिü शान्तिकर्मणि।

सर्वं भवतु में ऽच्छिü ब्राह्मणानां प्रसादतः।।

प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।

स्मरणादेव तद्विष्णोः संपूर्णं स्यादिति श्रुतिः ।।

यस्य स्मृत्याच नामोक्त्या तपोयज्ञ क्रियादिषु।

न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्।।

ॐ विष्णवे नमः ।। 3।।

तिलकाशीर्वादःμ श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधात्पवमानं महीयते।

धान्यं धनं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः।।

मन्त्रार्थाः सफला सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।

शत्रूणां बुद्धिनाशोऽस्तु मित्राणामुदयस्तव।।

यज्ञान्ते ब्राह्मणान्भोजयित्वा दीनानाथांश्चान्नादीना सन्तोष्य स्वयं सुहॄन्मित्रादियुतो सोत्साहं सन्तुष्टो हविष्यं भुंजीतेति शिवम्।।

यज्ञान्त में ब्राह्मणों को भोजन कराकर अपने इष्ट मित्रों के साथ सानन्द मिष्ठान्नादि ग्रहण करना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न-1 प्रांगमुख का मतलब किस ओर मुख है?

क- पूर्व, ख- दक्षिण, ग-पश्चिम, घ- उत्तर।

प्रश्न-2 सप्तधान्य से मतलब है-

क- सात प्रकार का अन्न, ख- सात प्रकार का फल, ग- सात प्रकार का जल, घ- सात प्रकार का मिष्ठान्न।

प्रश्न 3- सर्षप है-

क- चना, ख- सरसों, ग- मूंग, घ- अरहर।

प्रश्न 4- रुद्री के पंचम अध्याय में कितनं मन्त्र है?

क- 66, ख- 67, ग- 68, घ- 69।

प्रश्न-5 तीर्थोदक क्या है?

क- तीर्थ का फल, ख- तीर्थ का जल, ग- तीर्थ की मिट्टी, ध- तीर्थ का पुष्प।

प्रश्न-6 क्षौर कर्म क्या है?

क- बाल कटवाना, ख- वृक्ष कटवाना, ग- पत्ते तोड़ना, घ-द्वार कटवाना।

प्रश्न-7 पंचांग पूजन में क्या नही है?

क- गणेश पूजन, ख- कलश स्थापन, ग-मातृका पूजन, घ- नवग्रह पूजन।

प्रश्न-8 मूल नक्षत्र के प्रधान देवता हैं-

क- निर्ऋति, ख-इन्द्र, ग- अप, घ- ब्रह्मा।

प्रश्न-9 मूल नक्षत्र के अधि देवता हैं-

क- निर्ऋति, ख-इन्द्र, ग- अप, घ- ब्रह्मा।

प्रश्न-10 मूल नक्षत्र के प्रत्यधि देवता हैं-

क- निर्ऋति, ख-इन्द्र, ग- अप, घ- ब्रह्मा ।

प्रश्न- 11 दक्षिण दिक्पाल हैं-

क- निर्ऋति, ख-इन्द्र, ग- यम, घ- ब्रह्मा ।

प्रश्न-12 उपरी मेखला का वर्ण क्या है ?

क- श्वेत, ख- कृष्ण, ग- पीत, घ- हरित ।

इस प्रकरण से आप मूल शान्ति की विधि को जान गये होगें। इसी प्रकार आप मूल शान्तिदकरा सकते है। अब आप मूल के अन्य नक्षत्रों के शान्ति का विधान आगे देखेंगे ।

1.4.2. मूल के अन्य नक्षत्रों की शान्ति में विशेष-

मूल के समस्त नक्षत्रों की शान्ति इसी प्रकार करायी जाती है परन्तु प्रत्येक नक्षत्र के देवता, अधिदेवता व प्रत्यधि देवता में अन्तर मिलता है। हमें जिस नक्षत्र की शान्ति करनी होती है उस नक्षत्र के देवताओं का प्रयोग वहाँ करना पड़ता है जहाँ इस प्रकरण में मूल के देवताओं का स्थान दिया गया है।

1-आश्लेषा नक्षत्र -ॐभूर्भुवः स्वः सर्पेभ्यो नमः। सर्पानावाहयामि स्थापयामि।

आश्लेषानक्षत्र के अधिदेवता -ॐ भूर्भुवः स्वः बृहस्पतये नमः। बृहस्पतिमावाहयामि स्थापयामि।

आश्लेषा नक्षत्र के प्रत्यधि देवता -ॐ भूर्भुवः स्वः पितृभ्यो नमः। पितृनावाहयामि स्थापयामि।

प्रधानपीठ के चौबीस दलों के चौबीस देवता अग्रलिखित हैं-

ॐ भूर्भुवः स्वः भगाय नमः भगमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अर्यमणे नमः अर्यमाणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सवित्रे नमः सवितारमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विश्वकर्मणे नमः विश्वकर्माणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वायवे नमः वायुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राग्नीभ्यां नमः इन्द्राग्नौ आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः मित्राय नमः मित्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अद्भ्यो नमः अप आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः विश्वान् देवानावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अष्टवसुभ्यो नमः अष्टवसूनावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अजैकपदे नमः अजैकपादमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अहिर्बुध्न्याय नमः अहिर्बुध्न्यमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः पूष्णे नमः पूषाणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अश्विभ्यां नमः अश्विनौ आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः यमाय नमः यममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः अग्निमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः प्रजापतये नमः प्रजापतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सोमाय नमः सोममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः रुद्राय नमः रुद्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अदितये नमः अदितिमावाहयामि स्थापयामि।

अब मण्डल से बाहर इन्द्रादिदश दिक्पालों का आवाहन करना चाहिये। जिसका क्रम इस प्रकार है- पूर्व में इन्द्र, अग्नि कोण में अग्नि, दक्षिण में यम, नैर्ऋत्य कोण में निर्ऋति, पश्चिम में वरुण, वायव्य कोण में वायु, उत्तर में सोम, ईशानकोण में ईशान, ईशान और पूर्व के बीच में ब्रह्मा एवं पश्चिम तथा नैर्ऋत्य के बीच में अनन्त को आवाहित करना चाहिये। उक्त दिशाओं में अक्षतपुंज के ऊपर सोपाड़ी रखकर अक्षत छोड़ते हुये आवाहन किया जाता है।

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः अग्निमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः यमाय नमः यममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वायवे नमः वायुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सोमाय नमः सोममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः ईशानाय नमः ईशानमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अनन्ताय नमः अनन्तमावाहयामि स्थापयामि।

हाथ में अक्षत लेकर - सर्पादिदेवताः सुप्रतिष्ठिताः वरदा भवन्तु। यह कहकर समस्त आवाहित देवताओं की प्राणप्रतिष्ठा करे।

सर्पादिदेवताभ्यो नमः कहकर समस्त प्रकार से इनका पूजन करना चाहिये।

2-मघा नक्षत्र देवता -ॐभूर्भुवः स्वः पितृभ्यो नमः। पितृनावाहयामि स्थापयामि।

मघानक्षत्र के अधिदेवता आश्लेषा नक्षत्र के देवता-ॐभूर्भुवः स्वः सर्पेभ्यो नमः। सर्पानावाहयामि स्थापयामि।

मघा नक्षत्र के प्रत्यधि पूर्वाफाल्गुनि के देवता- ॐ भूर्भुवः स्वः भगाय नमः। भगमावाहयामि स्थापयामि।

मघा नक्षत्र के प्रधान पीठ के देवताओं को चौबीस दलों पर इस प्रकार स्थापित करना चाहिये-

ॐ भूर्भुवः स्वः अर्यमणे नमः अर्यमाणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सवित्रे नमः सवितारमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विश्वकर्मणे नमः विश्वकर्माणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वायवे नमः वायुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राग्नीभ्यां नमः इन्द्राग्नौ आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः मित्राय नमः मित्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अद्भ्यो नमः अप आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः विश्वान् देवानावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अष्टवसुभ्यो नमः अष्टवसूनावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अजैकपदे नमः अजैकपादमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अहिर्बुध्न्याय नमः अहिर्बुध्न्यमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः पूष्णे नमः पूषाणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अश्विभ्यां नमः अश्विनौ आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः यमाय नमः यममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः अग्निमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः प्रजापतये नमः प्रजापतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सोमाय नमः सोममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः रुद्राय नमः रुद्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अदितये नमः अदितिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः बृहस्पतये नमः बृहस्पतिमावाहयामि स्थापयामि।

मण्डल से बाहर दश दिक्पालों को इस प्रकार आवाहित किया जाता है-

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः अग्निमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः यमाय नमः यममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वायवे नमः वायुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सोमाय नमः सोममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः ईशानाय नमः ईशानमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अनन्ताय नमः अनन्तमावाहयामि स्थापयामि।

हाथ में अक्षत लेकर - पित्रादिदेवताः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु। यह कहकर समस्त आवाहित देवताओं की प्राणप्रतिष्ठा करे।

पित्रादिदेवताभ्यो नमः कहकर समस्त प्रकार से इनका पूजन करना चाहिए।

3-ज्येष्ठा नक्षत्र के देवता -ॐभूर्भुवः स्वः इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि।

ज्येष्ठा नक्षत्र के अधिदेवता अनुराधा के देवता-ॐ भूर्भुवः स्वः मित्राय नमः मित्रमावाहयामि स्थापयामि।

ज्येष्ठा नक्षत्र के प्रत्यधिदेवता मूल के निर्ऋति देवता-ॐ भूर्भुवः स्वः निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि स्थापयामि।

ज्येष्ठा नक्षत्र शान्ति हेतु चौबीस दलों पर अधोलिखित देवताओं को स्थापित करना चाहिये-

ॐ भूर्भुवः स्वः अद्भ्यो नमः अप आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः विश्वान् देवानावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अष्टवसुभ्यो नमः अष्टवसूनावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अजैकपदे नमः अजैकपादमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अहिर्बुध्न्याय नमः अहिर्बुध्न्यमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः पूष्णे नमः पूषाणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अश्विभ्यां नमः अश्विनौ आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः यमाय नमः यममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः अग्निमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः प्रजापतये नमः प्रजापतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सोमाय नमः सोममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः रुद्राय नमः रुद्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अदितये नमः अदितिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः बृहस्पतये नमः बृहस्पतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सर्पेभ्यो नमः सर्पानावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः पितृभ्यो नमः पितृन् आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगाय नमः भगमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अर्यमणे नमः अर्यमाणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सवित्रे नमः सवितारमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विश्वकर्मणे नमः विश्वकर्माणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वायवे नमः वायुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राग्नीभ्यां नमः इन्द्राग्नौ आवाहयामि स्थापयामि।

मण्डल से बाहर दिक्पाल देवताओं को इस प्रकार आवाहित किया जाता है-

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः अग्निमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः यमाय नमः यममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वायवे नमः वायुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सोमाय नमः सोममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः ईशानाय नमः ईशानमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अनन्ताय नमः अनन्तमावाहयामि स्थापयामि।

हाथ में अक्षत लेकर - इन्द्रादिदेवताः सुप्रतिष्ठिताः वरदा भवन्तु। यह कहकर समस्त आवाहित देवताओं की प्राणप्रतिष्ठा करे। इन्द्रादिदेवताभ्यो नमः कहकर समस्त प्रकार से इनका पूजन करना चाहये।

4-रेवती नक्षत्र के देवता -ॐभूर्भुवः स्वः पूष्णे नमः पूषाणमावाहयामि स्थापयामि।।

रेवती नक्षत्र के अधिदेवता उत्तराभद्रपद नक्षत्र के देवता-ॐ भूर्भुवः स्वः अहिर्बुध्न्याय नमः

अहिर्बुध्न्यमावाहयामि स्थापयामि।।

रेवती नक्षत्र के प्रत्यधि देवता अश्विनी नक्षत्र के देवता-ॐभूर्भुवः स्वः अश्विभ्यां नमः अश्विनौ आवाहयामि स्थापयामि।।

चौबीस दलों के देवता इस प्रकार है-

ॐ भूर्भुवः स्वः यमाय नमः यममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः अग्निमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः प्रजापतये नमः प्रजापतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सोमाय नमः सोममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः रुद्राय नमः रुद्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अदितये नमः अदितिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः बृहस्पतये नमः बृहस्पतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सर्पेभ्यो नमः सर्पानावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः पितृभ्यो नमः पितृन् आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगाय नमः भगमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अर्यम्णे नमः अर्यमाणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सवित्रे नमः सवितारमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विश्वकर्मणे नमः विश्वकर्माणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वायवे नमः वायुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राग्नीभ्यां नमः इन्द्राग्नौ आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः मित्राय नमः मित्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अद्भ्यो नमः अप आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः विश्वान् देवानावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अष्टवसुभ्यो नमः अष्टवसूनावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अजैकपदे नमः अजैकपादमावाहयामि स्थापयामि।

मण्डल के बाहर दिक्पालों का स्थापन-

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः अग्निमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः यमाय नमः यममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वायवे नमः वायुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सोमाय नमः सोममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः ईशानाय नमः ईशानमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अनन्ताय नमः अनन्तमावाहयामि स्थापयामि।

हाथ में अक्षत लेकर - पूषादिदेवताः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु। यह कहकर समस्त आवाहित देवताओं की प्राणप्रतिष्ठा करे। पूषादिदेवताभ्यो नमः कहकर समस्त प्रकार से इनका पूजन करना चाहये।

6- अश्विनी नक्षत्र के देवता -ॐभूर्भुवः स्वः अश्विभ्यां नमः अश्विनौ आवाहयामि स्थापयामि। अश्विनी नक्षत्र के अधिदेवता रेवती के देवता -ॐभूर्भुवः स्वः पूष्णे नमः पूषाणं आवाहयामि स्थापयामि। अश्विनी नक्षत्र के प्रत्यधि देवता भरणी के देवता-ॐ भूर्भुवः स्वः यमाय नमः यममावाहयामि स्थापयामि।

चौबीस दलों के देवता इस प्रकार है-

ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः अग्निमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः प्रजापतये नमः प्रजापतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सोमाय नमः सोममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः रुद्राय नमः रुद्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अदितये नमः अदितिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः बृहस्पतये नमः बृहस्पतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सर्पेभ्यो नमः सर्पानावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः पितृभ्यो नमः पितृन् आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः भगाय नमः भगमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अर्यम्णे नमः अर्यमाणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सवित्रे नमः सवितारमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विश्वकर्मणे नमः विश्वकर्माणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वायवे नमः वायुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राग्नीभ्यां नमः इन्द्राग्नौ आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः मित्राय नमः मित्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अद्भ्यो नमः अप आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः विश्वान् देवानावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः विष्णवे नमः विष्णुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अष्टवसुभ्यो नमः अष्टवसूनावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अजैकपदे नमः अजैकपादमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अहिर्बुध्न्याय नमः अहिर्बुध्न्यमावाहयामि स्थापयामि।।

मण्डल के बाहर दिक्पालों का स्थापन-

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राय नमः इन्द्रमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अग्नये नमः अग्निमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः यमाय नमः यममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः निर्ऋतये नमः निर्ऋतिमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वरुणाय नमः वरुणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः वायवे नमः वायुमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः सोमाय नमः सोममावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः ईशानाय नमः ईशानमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि स्थापयामि।

ॐ भूर्भुवः स्वः अनन्ताय नमः अनन्तमावाहयामि स्थापयामि।

हाथ में अक्षत लेकर - अश्विभ्यामादिदेवताः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु। यह कहकर समस्त आवाहित देवताओं की प्राणप्रतिष्ठा करे। अश्विभ्यामादिदेवताभ्यो नमः कहकर समस्त प्रकार से इनका पूजन

करना चाहिए।

शेष विधि का विधान पूर्वोक्त वर्णित विधि के अनुसार करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1 आश्लेषा नक्षत्र के देवता है-

क- सर्प, ख- वृहस्पति, ग-पितृ, घ- भग।

प्रश्न 2 आश्लेषा नक्षत्र के अधि देवता है-

क- सर्प, ख- वृहस्पति, ग-पितृ, घ- भग।

प्रश्न 3 आश्लेषा नक्षत्र के प्रत्यधि देवता है-

क- सर्प, ख- वृहस्पति, ग-पितृ, घ- भग।

प्रश्न 4 मधा नक्षत्र के देवता है-

क- सर्प, ख- वृहस्पति, ग-पितृ, घ- भग।

प्रश्न 5 मघा नक्षत्र के अधि देवता है-

क- सर्प, ख- वृहस्पति, ग-पितृ, घ- भग।

प्रश्न 6 मघा नक्षत्र के प्रत्यधि देवता है-

क- सर्प, ख- वृहस्पति, ग-पितृ, घ- भग।

प्रश्न 7 ज्येष्ठा नक्षत्र के देवता है-

क- सर्प, ख- वृहस्पति, ग-पितृ, घ- इन्द्र।

प्रश्न 8 ज्येष्ठा नक्षत्र के अधि देवता है-

क- सर्प, ख- वृहस्पति, ग-मित्र, घ- भग।

प्रश्न 9 ज्येष्ठा नक्षत्र के प्रत्यधि देवता है-

क- सर्प, ख- वृहस्पति, ग-निर्ऋति, घ- भग।

प्रश्न 10 रेवती नक्षत्र के देवता है-

क- सर्प, ख- पूषा, ग-पितृ, घ- भग।

प्रश्न 11 रेवती नक्षत्र के अधि देवता है-

क- सर्प, ख- वृहस्पति, ग-पितृ, घ- अहिर्बुध्न्य।

प्रश्न 12 रेवती नक्षत्र के प्रत्यधि देवता है-

क- अश्विनी, ख- वृहस्पति, ग-पितृ, घ- भग।

1.5 सारांश

मूल नक्षत्र में जन्म लेने वाले शिशु की मूल शान्ति की निश्चितता के अनन्तर उत्पन्न शिशु के बारहवें दिन या उसके जन्म नक्षत्र में, शुभदिन में या आठवें वर्ष में मूल शान्ति करानी चाहिये। संकल्प में शान्ति पूर्वक मूल कर रहा हूं। पूर्वांग के रूप में पंचांगपूजन का उल्लेख करके पूजन स्थल पर पंचगव्यादि का प्रक्षेपण करके नैर्ऋत्य दिशा में स्थण्डिल बनाकर अग्नि की स्थापना करें। एक वेदी पर चौबीस दल कमल बनाकर मध्य में छिद्रादि से वर्जित सुन्दर चार ताम्र कुम्भ को कलश स्थापन विधि से स्थापित का स्वर्ण या यथाशक्ति निर्ऋति की प्रतिमा बनाकर अग्न्युत्तारण पूर्वक पंचामृत से या पृथक् पृथक् स्नान कराकर स्थाली में रख दें। विशेष रूप से जो मूल नक्षत्र है उसके अधिनक्षत्र एवं प्रत्यधि नक्षत्र के सहित पूजन एवं हवन करने का विधान है। जैसे प्रधान नक्षत्र यदि मूल है तो उससे एक नक्षत्र पूर्व ज्येष्ठा नक्षत्र अधि नक्षत्र एवं उसके बाद पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र प्रत्यधि नक्षत्र के रूप में जानी जायेगी तथा पूजित होगी। तदनन्तर पंचभूसंस्कार करके अग्नि की स्थापना कर नवग्रह मण्डलस्थ देवताओं की स्थापना एवं पूजा करनी चाहिये। उसके बाद कुशकण्डिका पूर्वक अग्नि पूजन एवं मेखला पूजन, योनि पूजन, नाभि पूजन, कण्ठ पूजन इत्यादि करके आघाराज्याहुतियों को प्रदान कर सूर्यादिनवग्रहों की समिधाओं सहित आहुतियां प्रदान कर प्रधान हवन करना चाहिये। प्रधान हवन में प्रधान देवता एवं अधि देवता तथा प्रत्यधि देवता को 108-108 बार हवन करके अन्यान्य समस्त देवताओं को आहुतियां दी जानी चाहिये। तदनन्तर दिक्पालों को बलिदान करके नवग्रह बलिदान एवं क्षेत्रपाल बलिदान देकर पूर्णाहुति पूजन पूर्वक पूर्णाहुति एवं वसोर्धारा हवन करना चाहिये। उसके बाद अग्नि की एक बार प्रदक्षिणा करके पश्चिम भाग में बैठ जाना चाहिये या स्थित हो जाना चाहिये। कुण्ड के ईशान भाग से स्रुव द्वारा भस्म निकाल कर अनामिका अंगुलि से ललाट में, ग्रीवा में, दक्षिण भुजा के मूल में तथा हृदय में लगाना चाहिये। उसके बाद संस्रव प्राशन, आचमन, पवित्रकों से मार्जन करके अग्नि में पवित्र की प्रतिपत्ति करके ब्रह्मा के लिये पूर्णपात्र प्रदान करने का विधान है। तथा अग्रिम मन्त्र को पढ़कर उसको ग्रहण करने का विधान है।ॐद्यौस्त्वा ददातु पृथिवीत्वा प्रतिगृह्णातु ।।

अग्नि के पश्चिम तरफ प्रणीता को उलट दे। प्रणीता विमोक करने पर निःसृत जल का उपयमन कुशा द्वारा मार्जन करे। उपयमन कुशा को अग्नि में प्रक्षिप्त कर ब्रह्म ग्रन्थि को खोल दें। उसके कलशों से

जल निकाल कर दिये गये पौराणिक मन्त्रों से माता पिता सहित शिशु का अभिषेक करना चाहिये। उसके बाद घी या तेल से किसी कांस्य पात्र को इस प्रकार रखना चाहिये जिसमें जातक एवं उसके पिता का मुह दिखाई पड़े। इस प्रकार अपना एवं शिशु का उस तैल पात्र या घृत पात्र में अवलोकन कर उसका दान कर देना चाहिये। इसे छाया पात्र दान के नाम से जाना जाता है। तदनन्तर आवाहित देवताओं का विसर्जन कर अपने से बड़े बूढ़ों का आशीर्वाद लेकर सकुटुम्ब बा्रह्मण भोजनादि कराकर स्वयं प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। इस अवसर दीनों एवं अनाथों को भी दानादि करने का विधान है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली -

अवलोकन - देखना, अभिषेक- जल छीटना, अरिष्टकार- कष्टकारी, अक्षतपुंज- कच्चे चावलों का समूह, अनामिका- कनिष्ठा के बगल वाली अंगुलि का नाम, आज्य- हवन हेतु सुसंस्कृत घी, आवाहन- आवाहित करना, इष्ट मित्र- उपकारक मित्र, उपलेपन- लीपना, उपयमन कुशा- सात कुशों का समूह, कांस्य पात्र- कासें का वर्तन, कुम्भ- घड़ा, घृत पात्र- घी का वर्तन, ताम्बूल पत्र- पान का पत्ता, तुरीयजः- चतुर्थ चरण में जन्मा हुआ, निःसृत- निकले हुये, निकृन्तन- कटा कर, नैवेद्य- प्रसाद हेतु पदार्थ या व्यंजन, प्रणीता- यज्ञ पात्र, प्रक्षिप्त कर- डाल कर, विमोक- उलटा करना, पंच भूसंस्कार- अग्नि स्सथापनीय भूमि के पांच संस्कार, प्रविधि- उत्तम विधि, प्रदक्षिणा- परिक्रमा, प्रधान पीठ- मुख्य पीठ, पंच पल्लव- आम, वट, पीपल, पाकड़ एवं गूलर के पत्ते, पंचरत्न- पांच प्रकार के रत्न, पंचामृत- पांच अमृत यानी गाय का दूध, गाय की दही, गाय का घी, शहद एवं शक्कर, परित्याग- छोड़ देना, प्रतिष्टा- प्रति की स्थापना, पातालस्थ- पाताल में स्थित, पुष्पसार- इत्र, प्राण प्रतिष्ठा- प्राण के प्रति की स्थापना, भूमिष्ठ- भूमि पर स्थित, मण्डलस्थ- मण्डल पर स्थित, मेखला- सीढ़ी, श्यालक- शिशु का मामा, शतक्षिद्रकलश- सौ छिद्र वाला कलश, संकटापन्न- संकट से घिरा हुआ, सम्यक्- उचित, समिधा- हवन योग्य लकड़ियां, सवंर्धित- सम्यक् वृद्धि, सप्तमृत्तिका- सात स्थान की मिट्टी, स्थण्डिल- चौकोर वेदी, समर्पयामि- समर्पित करता हूं, सम्मार्जन कुशा- पांच कुशो का समूह मार्जन हेतु, हवन हेतु, हवनीय- हवन योग्य, रेखाकरण- रेखा खीचना, लोकोपकारक- समाजोपयेगी, हरित- हरा, कृष्ण- काला, पीत- पीला, श्वेत- सफेद, रक्त- लाल, वर्जित- त्याज्य।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

पूर्व में दिये गये सभी अभ्यास प्रश्नों के उत्तर यहां दिये जा रहे हैं। आप अपने से उन प्रश्नों को हल कर लिये होगें। अब आप इस उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कर लीजिये। यदि गलत हो तो उसको सही करके पुनः तैयार कर लीजिये। इससे आप इस प्रकार के समस्त प्रश्नों का उत्तर सही तरीके से दे पायेगें।

1.3.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-घ, 3-ख, 4-घ, 5-क, 6-घ, 7-ख, 8-घ, 9- क, 10- ख।

1.3.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-क, 3-ख, 4-ख, 5-ख, 6-क, 7-घ, 8-क, 9- ग, 10- घ।

1.3.3 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-ख, 2-क, 3-ग, 4-क, 5-ख, 6-ख, 7-क, 8-क।

1.4.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-क, 3-ख, 4-क, 5-ख, 6-क, 7-घ, 8-क, 9- ख, 10- ग,11- ग, 12- क।

1.4.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-ग, 5-क, 6-घ, 7-घ, 8-ग, 9- ग, 10- ख, 11- घ, 12-क।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1-मूल शान्तिः।

2-शान्ति- प्रकाशः।

3-कर्मकाण्ड- प्रदीपः।

4-शान्ति- विधानम्।

5-संस्कार एवं शान्ति का रहस्य।

6-यजुर्वेद- संहिता।

7- ग्रह- शान्तिः।

1.9- सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री-

1- मुहूर्त्त चिन्तामणिः ।

2- श्री काशी विश्वनाथ पंचांग ।

3- पूजन विधानम् ।

1.10 निबंधात्मक प्रश्न-

1- मूल का परिचय दीजिये।

2- मूल शान्ति के सन्दर्भ में विभिन्न मत मतान्तरों का वर्णन कीजिये।

3- मूल वास के बारे में आप क्या जानते है? वर्णन कीजिये।

4- मूल शान्ति विधि का विधान वर्णित कीजिये।

5- मूल से संबंधित अन्य नक्षत्रों के शान्ति विधियों का वर्णन कीजिये।

6- पंच भू संस्कार क्या है? सविधि लिखिये।

7- पौराणिक अभिषेक विधि का वर्णन कीजिये।

8 मूल शान्ति की हवन विधि का वर्णन कीजिये।

9- पूर्णाहुति के अनन्तर की विधि बतलाइये।

10- पंचांग पूजन से क्या तात्पर्य है? वर्णित करें।

इकाई - 2 नवग्रह शान्ति

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 नवग्रह शान्ति

2.3.1 नवग्रहों का परिचय

2.3.2 नवग्रहों का मानव जीवन से संबंध

2.4 नवग्रह शन्ति का विधान

2.4.1 सूर्य ग्रह शान्ति का विधान

2.4.2 चन्द्र ग्रह शान्ति का विधान

2.4.3 मंगल ग्रह शान्ति का विधान

2.4.4 बुध ग्रह का शान्ति विधान

2.4.5 गुरू ग्रह का शान्ति विधान

2.5 सारांशः

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 बोधप्रश्नों के उत्तर

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.10 निबन्धात्मक प्रश्नों के उत्तर

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में नवग्रह संबंधी शान्ति प्रविधि का अध्ययन का आप अध्ययन करने जा रहे हैं। इससे पूर्व की शान्ति प्रविधियों का अध्ययन आपने कर लिया होगा। किसी भी जातक का जीवन यदि नवग्रहों की दशा या दृष्टि या संबंध के कारण कष्टमय हो गया है तो उसकी शान्ति आप कैसे करेगें, इसका ज्ञान आपको इस इकाई के अध्ययन से हो जायेगा।

भारतीय संस्कृति के अनुसार ग्रहों की संख्या नौ बतलाई गयी है जिसे नवग्रह के रूप में जाना जाता है। इन्हे क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहसपति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु के नाम से जाना जाता है। किसी भी जातक का जन्म जब होता है तो उस समय किसी न किसी ग्रह का प्रभाव रहता ही है। इन नवग्रहों में से शनि, राहु, केतु को पाप ग्रह, सूर्य एवं मंगल को क्रूर ग्रह एवं अन्य ग्रहों को शुभग्रह जाना जाता है। इनमें से पाप एवं क्रूर ग्रहों के प्रभाव से संबंध होने के कारण जातक का जीवन संकटापन्न होता है। जातक के परिवार का सीधा-सीधा संबंध होने के कारण इनसे संबंधित लोगों का भी जीवन प्रभावित होता है। इसलिये शान्ति कराने की आवश्यकता होती है। इसी शान्ति प्रविधि को नवग्रह शान्ति के नाम से जाना जाता है।

इस इकाई के अध्ययन से आप नवग्रह शान्ति करने की विधि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। इससे संबंधित व्यक्ति का ग्रह संबंधी दोषों से निवारण हो सकेगा जिससे वह अपने कार्य क्षमता का भरपूर उपयोग कर समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगा। आपके तत्संबंधी ज्ञान के कारण ऋषियों महर्षियों का यह ज्ञान संरक्षित एवं सवंर्धित हो सकेगा। इसके अलावा आप अन्य योगदान दें सकेगें, जैसे - कल्पसूत्रीय विधि के अनुपालन का सार्थक प्रयास करना, समाज कल्याण की भावना का पूर्णतया ध्यान देना, इस विषय को वर्तमान समस्याओं के समाधान सहित वर्णन करने का प्रयास करना एवं वृहद् एवं संक्षिप्त दोनों विधियों के प्रस्तुतिकरण का प्रयास करना आदि।

2.2 उद्देश्य-

उपर्युक्त अध्ययन से आप शान्ति की आवश्यकता को समझ रहे होगें। इसका उद्देश्य भी इस प्रकार आप जान सकते है।

1 कर्मकाण्ड को लोकोपकारक बनाना।

2 कर्मकाण्ड की शास्त्रीय विधि का प्रतिपादन।

3 कर्मकाण्ड में व्याप्त अन्धविश्वास एवं भ्रान्तियों को दूर करना।

4 प्राच्य विद्या की रक्षा करना।

5 लोगों के कार्यक्षमता का विकास करना।

6 समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना।

2.3 नवग्रह शान्ति

2.3.1 नवग्रहों का परिचय

ग्रहाः राज्यं प्रयच्छन्ति ग्रहाः राज्यं हरन्ति च के अनुसार ग्रह राज्य प्रदान करने वाले तथा राज्य का हरण करने वाले भी होते है। इसका तात्पर्यार्थ आप समझ गये होगें कि ग्रह ही मानव को सुख प्रदान करने वाले या दुख प्रदान करने वाले है। अर्थात् ग्रह यदि अनुकूल है तो सुख तथा प्रतिकूल है तो दुख प्रदान करते है। ग्रहों के अनुकूलता प्रतिकूलता का विचार ज्योतिष शास्त्र से किया जाता है। लेकिन सामान्य रूप से परिचय इस प्रकार है-

जब किसी भी व्यक्ति का जन्म होता है तो उस समय कोई न कोई लग्न अवश्य रहता है। इनकी संख्या बारह बतलाई गयी है जिन्हें मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ एवं मीन के नाम से जाना जाता है। इन्ही नामों को राशि के नाम से भी जाना जाता है। इनका ग्रहों संबंध बताते हुये कहा गया है कि मेष एवं वृश्चिक राशि का स्वामी मंगल है। वृष एवं तुला राशि का स्वामी शुक्र है। कन्या एवं मिथुन राशि का स्वामी बुध है। मीन एवं धनु राशि का स्वामी गुरु है। मकर एवं कुम्भ राशि का स्वामी शनि है। सिंह राशि का स्वामी सूर्य है। कर्क राशि का स्वामी चन्द्रमा है। राहु एवं केतु को छाया ग्रह के रूप में माना गया है। जब हम जन्मांग बनाते है तो उसमें बारह भाव बनाते है। इनमें एक एक राशियों का अंक लिखा गया होता है। क्रमशः उन्हे उसी क्रम के नामों से जाना जाता है। जैसे 1 अर्थात् मेष राशि, 2 अर्थात् वृष राशि, 3 अर्थात् मिथुन राशि, 4 अर्थात् कर्क राशि, 5 अर्थात् सिंह राशि, 6 अर्थात् कन्या राशि, 7 अर्थात् तुला राशि, 8 अर्थात् वृश्चिक राशि, 9 अर्थात् धनु राशि, 10 अर्थात् मकर राशि, 11 अर्थात् कुम्भ राशि, 12 अर्थात् मीन राशि है। बारह भावों ग्रहों के स्थित वशात् शुभत्व एवं अशुभत्व का विचार करते है। यदि ग्रह शुभ युक्त है तो शुभ फल दायी तथा अशुभ है तो अशुभ फल दायी योग बनेगा। अशुभ फल दायी परिस्थिति में संबंधित व्यक्ति को कष्टकर स्थितियों का सामना न करना पड़े इसके लिये नवग्रह शान्ति का विधान किया गया है।

नवग्रहों के अनुकूलता एवं प्रतिकूलता का विचार करते हुये कहा गया है कि कोई भी ग्रह यदि अपने शत्रु के घर में बैठा है तो वह अपना पूरा फल नही दे पायेगा। साथ ही यह भी कहा गया शत्रु ग्रहों की दृष्टि भी पूर्ण फल प्रदान करने में बाधक होती है। दृष्टि के सन्दर्भ में कहा गया है कि पश्यन्ति सप्तमं सर्वे शनि जीव कुजा ग्रहाः। त्रिदश त्रिकोण चतुरष्टमान्। अर्थात् सभी ग्रह अपने से सप्तम स्थान

को देखते है। शनि इसके अलावा तीसरे एवं दसवें स्थान को, बृहस्पति पांचवे एवं नवें स्थान को तथा मंगल चौथे एवं आठवें स्थान को अतिरिक्त देखते है। यह विचार पूर्ण दृष्टि को आधार मानकर किया गया है। पाद दृष्टि का विचार इस प्रकरण में नही किया है क्योंकि उसका विशद रूप में विचार ज्योतिष शास्त्र का विषय है।

अब हम संबंधित विषय को आधार बनाकर कुछ अभ्यास प्रश्न बनायेगें जिसका उत्तर आपको देना होगा। अभ्यास प्रश्न अधोलिखित है -

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है -

प्रश्न 1- इनमें से छाया ग्रह कौन है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- शनि, घ- राहु।

प्रश्न 2- सिंह राशि का स्वामी कौन है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- शनि, घ- राहु।

प्रश्न 3- मेष राशि का स्वामी कौन है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- शनि, घ- राहु।

प्रश्न 4- मकर राशि का स्वामी कौन है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- शनि, घ- राहु।

प्रश्न 5- कन्या राशि का स्वामी कौन है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- बुध, घ- राहु।

प्रश्न 6- वृष राशि का स्वामी कौन है?

क- सूर्य, ख- शुक्र, ग- शनि, घ- राहु।

प्रश्न 7- कर्क राशि का स्वामी कौन है?

क- चन्द्रमा, ख- मंगल, ग- शनि, घ- राहु।

प्रश्न 8- चौथे एवं आठवें स्थान को कौन देखता है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- शनि, घ- राहु।

प्रश्न 9- तीसरे एवं दसवें स्थान को कौन देखता है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- शनि, घ- राहु।

प्रश्न 10 - पांचवें एवं नवें स्थान को कौन देखता है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- शनि, घ- गुरू।

प्रश्न 11- ग्यारहवीं राशि से क्या तात्पर्य है?

क- धनु, ख- मकर, ग- कुम्भ, घ- मीन।

प्रश्न 12- बारहवीं राशि से क्या तात्पर्य है?

क- धनु, ख- मकर, ग- कुम्भ, घ- मीन।

इस प्रकरण में आपने नवग्रहों का सामान्य परिचय प्राप्त किया। इसके अध्ययन से नवग्रहों के बारे में आप सामान्य रूप से जान गये होगें। अब हम अग्रिम प्रकरण में आपको नवग्रहों का मानव जीवन से किस प्रकार का संबंध है यह बता सकते हैं।

2.3.2 नवग्रहों का मानव जीवन से संबंध-

आशा है कि नवग्रहों का परिचय आपने पूर्व प्रकरण में पूरी तरह पढ़ लिया होगा। अब इसमें प्रत्येक ग्रहों का मानव जीवन से किस प्रकार संबंध है इसको बताया जायेगा। इसके ज्ञान से नवग्रहों की प्रकृति एवं गुणों की विशद रूप से जानकारी आप रख पायेगें जो नवग्रह शान्ति हेतु आवश्यक होगी।

मित्रों मानव जीवन का ऐसा कोई क्रिया कलाप नही होगा जिसका संबंध नवग्रहों से नही होगा। अर्थात् समस्त क्रिया कलापों से ग्रहों का संबंध है। इसको जान लेने से मानव जीवन का ग्रहों से संबंध ज्ञात हो जायेगा। मानव जीवन के सम्पूर्ण क्रिया कलापों को बारह भावों में बाटा गया है। जिन्हे प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ आदि भावों के रूप में जाना जाता है। प्रत्येक भाव में स्थित अंक उसके अधिपति ग्रह के बारे में बताता है जिसका प्रयोग फलादेश में किया जाता है। फलदीपिका नामक ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में बताया गया है कि तांबा, सोना, पिता, शुभ फल, धैर्य, शौर्य, युद्ध में विजय, आत्मा, सुख, प्रताप, राजसेवा, शक्ति, प्रकाश, भगवान शिव संबंधी कार्य, वन या पहाड़ में यात्रा, होम कार्य में प्रवृत्ति, देवस्थान, तीक्ष्णता, उत्साह आदि का विचार सूर्य से करना चाहिये। माता का कुशल, चित्त की प्रसन्नता, समुद्र सनन, सफेद चवर, छत्र, सुन्दर पंखे, फल, पुष्प, मुलायम वस्तु, खेती, अन्न, कीर्ति, मोती, चांदी, कांसा, दूध, मधुर पदार्थ, वस्त्र, जल, गाय, स्त्री प्राप्ति, सुखपूर्वक भोजन, सुन्दरता का विचार चन्द्रमा से किया जाता है। सत्व, पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले पदार्थ, भाई बहनों के गुण, क्रूरता, रण, साहस, विद्वेष, रसोंई की अग्नि, सोना, ज्ञाति यानी दायाद, अस्त्र, चोर, उत्साह, दूसरे पुरुष की स्त्री में रति, मिथ्या भाषण, वीर्य, चित्त की समुन्नति, कालुष्य, व्रण, चोट,

सेनाधिपत्य आदि का विचार मंगल से करना चाहिये। पाण्डित्य, अच्छी वाक् शक्ति, कला, निपुणता, विद्वानों द्वारा स्तुति, मामा, वाक् चातुर्य, उपासना आदि में पटुता, विद्या में बुद्धि का योग, यज्ञ, भगवान, विष्णु संबंधी धार्मिक कार्य, सत्य वचन, सीप, विहार स्थल, शिल्प, बन्धु, युवराज, मित्र, भानजा, भानजी आदि का विचार बुध से किया जाता है। ज्ञान, अच्छे गुण, पुत्र, मंत्री, अच्छा आचार या अपना आचरण, आचार्यत्व, माहात्म्य, श्रुति, शास्त्र स्मृति का ज्ञान, सबकी उन्नति, सद्गति, देवताओं और ब्राह्मणों की भक्ति, यज्ञ, तपस्या, श्रद्धा, खजाना , विद्वत्ता, जितेन्द्रियता, सम्मान, दया आदि का विचार बृहस्पति से करना चाहिये। स्त्री के लिये पति का विचार भी बृहस्पति से किया जाना चाहिये। सम्पत्ति, सवारी, वस्त्र, निधि यानी जमीन के अन्दर गड़ा हुआ या संग्रह किया हुआ द्रव्य, नाचाने, गाने एवं बाद्य बजाने का योग,सुगंधित पुष्प, रति, शैया और उससे संबंधित व्यापार, मकान, धनिक होना, वैभव, कविता का सुख, विलास, मंत्रित्व, सरस उक्ति, विवाह या अन्य शुभ कर्म, उत्सव आदि का विचार शुक्र से करना चाहिये। पुरुष के लिये स्त्री सुख का विचार शुक्र से किया जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि पति का विचार बृहस्पति से तथा स्त्री का विचार शुक्र से करना चाहिये। आयु, मरण, भय, पतन, अपमान, विमारी, दुख, दरिद्रता, बदनामी, पाप, मजदूरी, अपवित्रता, निन्दा, आपत्ति, कलुषता, मरने का सूतक, स्थिरता, नीच व्यक्तियों का आश्रय, भैंस, तन्द्रा, कर्जा, लोहे की वस्तु, नौकरी, दासता, जेल जाना, गिरफ्तार होना, खेती के साधन आदि का विचार शनि से करना चाहिये।

इस प्रकार आपने या देखा कि मानव जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं का संबंध किसी न किसी ग्रह से अवश्य पाया गया। अतः आप कह सकते है कि ग्रहों का मानव जीवन से प्रत्यक्षतः संबंध है।

अब हम संबंधित विषय को आधार बनाकर कुछ अभ्यास प्रश्न बनायेगें जिसका उत्तर आपको देना होगा। अभ्यास प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- तांबा से संबंधित ग्रह कौन है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- शनि, घ- राहु ।

प्रश्न 2- मोती से संबंधित ग्रह कौन है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- चन्द्रमा, घ- राहु ।

प्रश्न 3- सेनाधिपत्य से संबंधित ग्रह कौन है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- चन्द्रमा, घ- राहु।

प्रश्न 4- पाण्डित्य से संबंधित ग्रह कौन है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- बुध, घ- राहु।

प्रश्न 5- आचार्यत्व से संबंधित ग्रह कौन है?

क- सूर्य, ख- बृहस्पति, ग- चन्द्रमा, घ- राहु।

प्रश्न 6- वाद्य से संबंधित ग्रह कौन है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- शुक्र, घ- राहु।

प्रश्न 7- जेल जाने से संबंधित ग्रह कौन है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- चन्द्रमा, घ- शनि।

प्रश्न 8- पिता का कारक ग्रह कौन है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- चन्द्रमा, घ- राहु।

प्रश्न 9- माता का कारक ग्रह कौन है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- चन्द्रमा, घ- राहु।

प्रश्न 10- कविता से संबंधित ग्रह कौन है?

क- सूर्य, ख- मंगल, ग- चन्द्रमा, घ- शुक्र।

इस प्रकरण में आपने नवग्रहों का मानव जीवन से कैसे संबंध है इसका ज्ञान प्राप्त किया। आशा है इसके बारे में आप जान गये होगें। अब हम किसी ग्रह की शान्ति का विधान कैसे करेगे इसका वर्णन करने जा रहे है जो इस प्रकार है-

2.4 नवग्रह शन्ति का विधान

2.4.1 सूर्य ग्रह शान्ति का विधान

मदन रत्न में लिखा गया है कि हस्त नक्षत्र संयुक्त सूर्यवार से सात रविवार तक भक्ति पूर्वक व्रत करके प्रति रविवार को रक्त पुष्प एवं अक्षत से सूर्य की पूजा करके सातवें रविवार को प्रातः काल स्नानादि करके श्वेत धौत वस्त्र धारण कर आसन पर बैठकर अपने दक्षिण भाग में पूजन सम्भारों को रखकर सपत्नीक (यदि हो तो) दो बार आचमन कर प्राणायामादि करके शांतिपाठ पढ़कर लक्ष्मीनारायण इत्यादि देवताआंे को प्रणाम करना चाहिये। तदनन्तर संकल्प करना चाहिये।

ॐ श्री विष्णुर्विष्णर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्त्तमानस्य अद्य श्री ब्रह्मणोन्हि द्वितीये परार्द्धे विष्णु पदे श्री श्वेत वाराह कल्पे वैवश्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे युगे कलियुगे

कलिप्रथम चरणे जम्बू द्वीपे भूर्लोके भारतवर्षे भरत खण्डे आर्यावर्तैकदेशे अमुक क्षेत्रे अमुक संवत्सरे अमुकायने अमुकऋतौ महामांगल्यप्रदमासोत्तमे मासे अमुकमासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक नक्षत्रे अमुक योगे अमुक करणे अमुकराशि स्थिते श्रीचन्द्रे अमुक राशिस्थिते श्री सूर्ये अमुक राशिस्थिते देवगुरौ अमुक गोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा सपत्नीकोऽहं श्रुतिस्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थं मम कलत्रादिभिः सह जन्म राशेः सकाशान्नामराशेः सकाशाद्वा जन्मलग्नाद्वर्षलग्नाद् गोचराद्वा चतुर्थाष्टमद्वादशाद्यनिष्ट स्थान स्थित सूर्येण सूचितं सूचयिष्यमाणं च यत्सर्वारिष्टं तद्विनाशार्थं सर्वदा तृतीय एकादश शुभ स्थान स्थितवद् उत्तम फल प्राप्त्यर्थं तथा दशा अन्तरदशा उपदशा-जनित-पीडा-ल्पायु अधिदेवाधिभौतिक आध्यात्मिक जनित क्लेश निवृत्ति पूर्वकं शरीरे आरोग्यार्थं परमैश्वर्यादि प्राप्त्यर्थं श्रीसूर्यनारायण प्रसन्नार्थं च आदित्य शान्तिं करिष्ये।

तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं आयुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं आचार्यादिवरणानि च करिष्ये । तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनमहं करिष्ये। एतानि कर्माणि शान्तिविधानानुसारेण कुर्यात्।

संकल्प के अनन्तर गणपति पूजन से आचार्य वरणान्त समस्त प्रक्रियाओं का सम्पादन करना चाहिये । तदनन्तर अग्नि स्थापन कर उक्त विधान से ग्रह वेदी का निर्माण कर आवाहन एवं स्थापन कर पूजन करना चाहिये। शान्ति प्रकाश के अनुसार एक वेदी के मध्य में अष्टदल कमल बनाकर उसके ऊपर एक ताम्र कलश स्थापित करना चाहिये। ताम्र के पूर्णपात्र में सुवर्ण की सूर्य की प्रतिमा अग्न्युत्तारण पूर्वक प्रधान देवता के रूप में स्थापित की जानी चाहिये।

अग्न्युत्तारण हेतु सर्वप्रथम संकल्प किया जाता है।

संकल्प:- देशकालौ संकीर्त्य अमुकगोत्रः अमुकशर्माऽहं अस्यां सूर्य मूर्त्तौ अवघातादिदोष परिहारार्थं अग्न्युत्तारणं देवता सान्निध्यार्थं च प्राणप्रतिष्ठां करिष्ये।

सूर्य भगवान की मूर्त्ति को पात्र में रखकर घृत लगाकर उसके ऊपर दुग्धधारा या जलधारा गिरानी चाहिये और अधोलिखित मन्त्रों का अथवा सूर्य के मूल मन्त्र का 108 बार पाठ करना चाहिये।

ॐ समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परिव्ययामसि पावको ऽ अस्मभ्य गुं शिवो भव। हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परिव्ययामसि। पावकोऽ अस्मभ्य गुं शिवो भव। उप ज्मन्नुप वेतसोऽ वतर नदिष्वा। अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमं न्नो यज्ञं पावक वर्ण्ण गुं शिवंकृधि। अपामिदं न्ययन गुं समुद्रस्य निवेशनम्। अन्यास्ते ऽ अस्मत्पन्तु हेतयः पावकोऽ अस्मभ्य गुं शिवो भव। अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया। आ देवा न्वक्षि यक्षि च।। स नः पावक दीदिवोग्ने देवाँ2ऽ इहावह। उप यज्ञ गुं हविश्चनः।। पावकया यश्चितयन्त्या कृपाक्षामन्त्रुरु च ऽउषसो न भानुना। तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण ऽआ यो घृणेन

ततृषाणो अजरः।। नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽ अस्त्वर्चिषे। अन्न्याँस्तेऽ अस्मत्पन्तु हेतयः पावको ऽ अस्मभ्य गुं शिवो भव। नृषदे व्वेडप्सुषदे ब्बेड्बर्हिषदे ब्बेड् व्वनसदे व्वेट् स्वर्विदे वेट्।। ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियाना गुं संवत्सरीणमुप भागमासते।। अहुतादो हविषो यज्ञेऽ अस्मिन्न्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य। ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुर एतारोऽअस्य। येभ्यो न ऽऋते पवते धाम किंचन न ते दिवो न पृथिव्याऽ अधिस्नुषु। प्राणदाऽ अपानदा व्यानदा व्वर्चोदा व्वरिवोदाः। अन्यँस्ते ऽ अस्मत्पन्तु हेतयः पावको ऽ अस्मभ्य गुं शिवो भव।

एवं अग्न्युत्तारणं कृत्वा प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्- इस प्रकार अग्न्युत्तारण करके प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। प्रतिमा को हाथ से संस्पर्ष करते हुये

अधोलिखित बीज मन्त्रों का जप करना चाहिये।

ॐ आँ ह्रीं क्रों यँ रँ लँ वँ षँ षँ सँ क्षँ हँ सः सोऽहं अस्यां सूर्य देवस्य प्राणाः इह प्राणाः। पुनःॐआँ ह्रीं क्रों यँ रँ लँ वँ षँ षँ सँ क्षँ हँ सः सोऽहं अस्यां सूर्य देवस्य जीव इह स्थितः। पुनःॐआँ ह्रीं क्रों यँ रँ लँ वँ षँ षँ सँ क्षँ हँ सः सोऽहं अस्यां सूर्य देवस्य वाङ्नस्त्वक्चक्षुः श्रोत्र जिह्वा घ्राण पाणि पाद पायूपस्थानि इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा। इति प्राणप्रतिष्ठा।

तदनन्तर दो रक्त वस्त्रों से सूर्य की प्रतिमा को आच्छादित कर घृत से स्नान कराकर रक्त चन्दन, रक्त अक्षत एवं रक्त पुष्प से पुरुषसूक्त द्वारा षोडशोपचार पूजन कर लड्डू इत्यादि का नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। कुशकंडिका का सम्पादन कर आज्यभागान्त आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये।

ॐ प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये न मम । इति मनसा ।

ॐ इन्द्राय स्वाहा । इदं इन्द्राय न मम । इति आघारसंज्ञकौ ।

ॐ अग्नये स्वाहा । इदं अग्नये न मम ।

ॐ सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय न मम । इति आज्यसंज्ञकौ ।

तदनन्तर सूर्य के हवनार्थ दधि, खीर, घृताक्तचरु, शाकल्य एवं अर्क समिधा लेकर हवन करें-ओं घृणिः सूर्याय स्वाहा। इदं सूर्याय न मम।। होम के अनन्तर दिक्पाल, क्षेत्रपालादि को बलिदान देकर पूर्णाहुति प्रदान करना चाहिये।

इसके अनन्तर मंजिष्ठा, गजमद, कुंकुम, रक्तचन्दन, जल से भरे हुये घड़े रखकर अभिषेक करना चाहिये ।

अभिषेकः- इसमे समस्त कलशों के जल को एक पात्र में करके दूर्वा एवं पंचपल्लव से उत्तर मुख होकर चार ऋत्विज सकुटुम्ब सपत्नीक पूर्व मुख बैठे हुये यजमान को जल छीटें। अभिषेक हेतु वैदिक एवं पौराणिक दोनों ही मन्त्रों का प्रयोग दिया गया है। वैदिक मन्त्रों के उच्चारण में त्रुटि की सम्भावना

को देखते हुये यहां पौराणिक मन्त्रों का ही उच्चारण श्रेष्ठ है-

ततो रुüकलशदेवतान्तरकलशोदकमेकस्मिन्पात्रे कृत्वा दूर्वा पंचपल्लवैरुदङ्ङ्ख आचार्यस्तिष्ठन् चत्वारो ऋत्विजश्च सकुटुम्बं स्वोत्तरतः सपत्नीकं यजमानं प्राङ्ङ्खमुपविष्टमभिषिचेयुः।।

अभिषेक मन्त्राः

पौराणिक मन्त्राः-

सुरास्त्वामभिषिंचन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा संकर्षणोविभुः ।।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्चभवन्तु विजयाय ते ।
आखण्डलोग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा ।।
वरुणः पवनश्चैवधनाध्यक्षस्तथा शिवः ।
ब्रह्मणासहिताः सर्वे दिक्पालाः पान्तु ते सदा ।।
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधापुष्टिः श्रद्धाक्रियामतिः ।
बुद्धिर्लज्जावपुः शान्तिः कान्तिश्तुष्टिश्च मातरः ।।
एतास्त्वामभिषिंचन्तु देवपत्न्यः समागता ।
आदित्यश्चन्üमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः ।।
ग्रहास्त्वामभिषिंचन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ।
देवदानव गन्धर्वा यक्षराक्षस पन्नगाः ।।
ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ।
देवपत्न्यो द्रुमानागा दैत्याश्चाप्सरसाणाः ।।
अस्त्राणि सर्व शस्त्राणि राजानो वाहनानि च ।
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ।।
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ।
एतेत्वामभिषिंचन्तु धर्मकामार्थ सिद्धये ।।
अमृताभिषेको ऽस्तु ।। शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु ।।

उसके बाद योग्य को सूर्य की प्रतिमा का दान कर देना चाहिये।

संकल्प- इमां सूर्यप्रतिमां सोपस्करां तुभ्यमहं सम्प्रददे।। इसके बाद प्रार्थना करनी चाहिये।

ॐआदिदेव नमस्तुभ्यं सप्त सप्त दिवाकर।
त्वं खेतारयस्वस्मान् अस्मत् संसारसागरात्।।

तदनन्तर माणिक्य, गोधूम, धेनु, रक्तवस्त्र, गुड, स्वर्ण, ताम्र, रक्त चन्दन व कमल इत्यादि का सूर्य की प्रसन्न्ता हेतु दान देना चाहिये। ब्राह्मणादि को भोजन कराकर कर्म पूर्त्ति को भगवान विष्णु को समर्पित करना चाहिये।

सूर्य पीडासु घोरासु कृता शान्तिः शुभप्रदा ॥

इसके अलावा सूर्य की शान्ति हेतु माणिक्य रत्न के धारण का विधान भी शास्त्रों में दिया गया है। कम से कम ढाई रत्ती का शुद्ध माणिक्य रविवार, सोमवार या बृहस्पतिवार को खरीद कर सोने की अंगूठी में जड़वायें। तदनन्तर शुक्लपक्ष के किसी रविवार के दिन सूर्योदय के समय पहनना चाहिये। इसे धारण करने से पूर्व कच्चे जल या गंगाजल में डुबोकर रखना चाहिये। तदुपरांत शुद्ध जल से स्नान कराकर पुष्प, चन्दन एवं धूपबत्ती से उसकी उपासना करनी चाहिये। इसके साथ ही 7000 बार ॐ घृणिः सूर्याय नमः मन्त्र का जप करना चाहिये। इसे दायें हाथ के तर्जनी अंगुली में धारण करना चाहिये। माणिक्य की विशेषता है कि कमल के कलि पर इसको रखने पर कलि खिल जाती है। गाय के दूध में डालने पर दूध गुलाबी हो जाता है। इस प्रकार जांच कर ही मणिक्य का क्रय करना चाहिये। माणिक्य एक मुल्यवान रत्न है। इसे न खरीद पाने की स्थिति में लालड़ी यानी स्पाइनेल, लाल रंग का तमड़ा यानी गारनेट, सूर्यकान्तमणि यानी जिरकान पहन सकते है।

इस प्रकार आपने यह देखा कि सूर्य ग्रह की शान्ति कैसे की जायेगी। सूर्य शान्ति हेतु रत्नो के धारण के सन्दर्भ में भी आप जान गये होगे। अतः आप सूर्य ग्रह की शान्ति करा सकते है।

अब हम संबंधित विषय को आधार बनाकर कुछ अभ्यास प्रश्न बनायेगें जिसका उत्तर आपको देना होगा। अभ्यास प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- सूर्य ग्रह शान्ति हेतु किस नक्षत्र से संयुक्त रविवार व्रत किया जाता है?

क- हस्त, ख- चित्रा, ग- स्वाती, घ- अनुराधा।

प्रश्न 2- सूर्य ग्रह हेतु किस वर्ण का पुष्प देना चाहिये?

क- सफेद, ख- रक्त, ग- पीत, घ- कृष्ण।

प्रश्न 3- सूर्य शान्ति हेतु किसका कलश स्थापित करना चाहिये?

क- स्वर्ण का, ख- रजत का, ग- ताम्र का, घ- कांस्य का।

प्रश्न 4- सूर्य शान्ति हेतु पूर्णपात्र किसका होना चाहिये?

क- स्वर्ण का, ख- रजत का, ग- ताम्र का, घ- कांस्य का।

प्रश्न 5- सूर्य की प्रतिमा किसकी बनाई जाती है?

क- स्वर्ण की, ख- रजत की, ग- ताम्र की, घ- कांस्य की।

प्रश्न 6- सूर्य शान्ति हेतु किस समिधा का हवन किया जाता है?

क- अर्क, ख- पलाश, ग-,खदिर, ग- अपामार्ग।

प्रश्न 7- आघारान्त कितनी आहुतियां दी जाती है?

क- एक, ख- दो, ग- तीन, घ- चार।

प्रश्न 8- आज्यभागान्त प्रथम आहुति क्या है?

क- प्रजापतये स्वाहा, ख- इन्द्राय स्वाहा, ग- अग्नये स्वाहा, घ- सोमाय स्वाहा।

प्रश्न 9- सूर्य का रत्न क्या है?

क- माणिक्य, ख- मोती, ग- मूंगा, घ- पन्ना।

प्रश्न 10- माणिक्य को किस अंगुलि में धारण करना चाहिये?

क- तर्जनी, ख- मध्यमा, ग- अनामिका, ग- कनिष्ठा।

इस प्रकरण में आपने सूर्य ग्रह की शान्ति प्रविधि के बारे में जाना । आशा है अब आप सूर्य ग्रह की शान्ति करा सकेगें । अब हम चन्द्र ग्रह की शान्ति का विधान कैसे करेगे इसका वर्णन करने जा रहे है जो इस प्रकार है-

2.4.2 चन्द्र ग्रह शान्ति का विधान

चित्रा नक्षत्र में सोमवार से प्रारम्भ कर सात सोमवार को प्रतिदिन श्वेत पुष्प इत्यादि से सोम की पूजा करके सातवें सोमवार को प्रातः स्नानादि करके श्वेत धौत वस्त्र धारण कर आसन पर बैठकर अपने दक्षिण भाग में पूजन सम्भारों को रखकर सपत्नीक (यदि हो तो) दो बार आचमन कर प्राणायामादि करके शांतिपाठ पढ़कर लक्ष्मीनारायण इत्यादि देवताओं को प्रणाम करना चाहिये। तदनन्तर संकल्प करना चाहिये।

संकल्पः ॐश्री विष्णुर्विष्णर्विष्णुः अमुक गोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा सपत्नीकोऽहं श्रुतिस्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थं मम कलत्रादिभिः सह जन्म राशेः सकाशान्नामराशेः सकाशाद्वा जन्मलग्नाद्वर्षलग्नाद् गोचराद्वा चतुर्थाष्टमद्वादशाद्यनिष्ट स्थान स्थित चन्द्रेण सूचितं सूचयिष्यमाणं च यत्सर्वारिष्टं तद्विनाशार्थं सर्वदा तृतीय एकादश शुभ स्थान स्थितवद् उत्तम फल प्राप्त्यर्थं तथा दशा अन्तरदशा उपदशा-जनित-पीडा-ल्पायु अधिदेवाधिभौतिक आध्यात्मिक जनित क्लेश निवृत्ति पूर्वकं शरीरारोग्यार्थं

परमैश्वर्यादि प्राप्त्यर्थं श्री चन्द्रस्य प्रसन्नार्थं च चन्द्र शान्तिं करिष्ये।

तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं आयुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं आचार्यादिवरणानि च करिष्ये। तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनमहं करिष्ये। एतानि कर्माणि शान्तिविधानानुसारेण कुर्यात्।

संकल्प के अनन्तर गणपति पूजन से आचार्य वरणान्त समस्त प्रक्रियाओं का सम्पादन करना चाहिये। तदनन्तर अग्नि स्थापन कर उक्त विधान से ग्रह वेदी का निर्माण कर आवाहन एवं स्थापन कर पूजन करना चाहिये। शान्ति प्रकाश के अनुसार एक वेदी के मध्य में अष्टदल कमल बनाकर उसके ऊपर दधि व अन्न से प्रपूरित एक चाँदी का कलश स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर कांस्य के पूर्णपात्र में चाँदी की चन्द्रमा की प्रतिमा अग्न्युत्तारण पूर्वक प्रधान देवता के रूप में स्थापित की जानी चाहिये। अग्न्युत्तारण का विधान सूर्य शान्ति में दिया गया है। वहां केवल सूर्य के स्थान पर चान्द्र का प्रयोग करना चाहिये। उसके बाद दो श्वेत वस्त्रों से चन्द्रमा की प्रतिमा को आच्छादित कर स्नान कराकर श्वेत चन्दन, श्वेत अक्षत एवं श्वेत पुष्प से पुरुषसूक्त द्वारा षोडशोपचार पूजन कर घृृत पायस इत्यादि का नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। कुशकंडिका का सम्पादन कर आज्यभागान्त आहुतियाँ प्रदान करना चाहिये।

ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। इति मनसा।

ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदं इन्द्राय न मम। इति आघारसंज्ञकौ।

ॐ अग्नये स्वाहा। इदं अग्नये न मम।

ॐ सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय न मम। इति आज्यसंज्ञकौ।

तदनन्तर चन्द्रमा के हवनार्थ दधि, मधु, खीर, घृताक्तचरु, शाकल्य एवं पलास समिधा लेकर 108 बार हवन करें-

ॐ सों सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय न मम।।

होम के अनन्तर दिक्पाल, क्षेत्रपालादि को बलिदान देकर पूर्णाहुति प्रदान करना चाहिये।

इसके अनन्तर उशीर, शिरीष, कुंकुम, रक्तचन्दन, ष्वेतचन्दन, शंख व चाँदी को जल से भरे हुये घड़े में रखकर पूर्ववद् अभिषेक करना चाहिये। उसके बाद योग्य को चन्द्र की प्रतिमा का दान कर देना चाहिये।

संकल्प- इमां चन्द्रप्रतिमां सोपस्करां तुभ्यमहं सम्प्रददे।। ततो प्रार्थना करनी चाहिये।

ॐ महादेव जातिवल्ली पुष्पगोक्षीर पांडुर।

सोम सौम्य भवास्माकं सर्वदा ते नमो नमः।।

तदनन्तर वंश पात्रस्थ चावल,कर्पूर, मौक्तिक, श्वेतवस्त्र, घृतपूर्णकुम्भ, श्वेतचन्दन इत्यादि का चन्द्रमा की प्रसन्ता हेतु दान देना चाहिये। ब्राह्मणादि को भोजन कराकर कर्म पूर्ति को भगवान विष्णु को समर्पित करना चाहिये।

एवं कृते महासौम्यः सोमस्तुष्टिकरो भवेत्।।

इसके अलावा चन्द्र ग्रह की शान्ति के लिये मोती नामक रत्न को चांदी के अंगूठी में पहनना चाहिये। इसे सोमवार या बृहस्पतिवार को खरीदना या मढ़वाना चाहिये। फिर किसी शुक्ल पक्ष के सोमवार को विधिवत् उपासनादि करके 11000 बार चन्द्रमा के मूल मन्त्र का जप करके सन्ध्या के समय धारण करना चाहिये।

इस प्रकार आपने यह देखा कि चन्द्र ग्रह की शान्ति कैसे की जायेगी। चन्द्र शान्ति हेतु रत्नो के धारण के सन्दर्भ में भी आप जान गये होगें। अतः आप चन्द्र ग्रह की शान्ति करा सकते है।

अब हम संबंधित विषय को आधार बनाकर कुछ अभ्यास प्रश्न बनायेगें जिसका उत्तर आपको देना होगा। अभ्यास प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- चन्द्र ग्रह शान्ति हेतु किस नक्षत्र से संयुक्त सोमवार व्रत किया जाता है?

क- हस्त, ख- चित्रा, ग- स्वाती, घ- अनुराधा।

प्रश्न 2- चन्द्र ग्रह हेतु किस वर्ण का पुष्प देना चाहिये?

क- सफेद, ख- रक्त, ग- पीत, घ- कृष्ण।

प्रश्न 3- चन्द्र शान्ति हेतु किसका कलश स्थापित करना चाहिये?

क- स्वर्ण का, ख- रजत का, ग- ताम्र का, घ- कांस्य का।

प्रश्न 4- चन्द्र शान्ति हेतु पूर्णपात्र किसका होना चाहिये?

क- स्वर्ण का, ख- रजत का, ग- ताम्र का, घ- कांस्य का।

प्रश्न 5- चन्द्र की प्रतिमा किसकी बनाई जाती है?

क- स्वर्ण की, ख- रजत की, ग- ताम्र की, घ- कांस्य की।

प्रश्न 6- चन्द्र शान्ति हेतु किस समिधा का हवन किया जाता है?

क- अर्क, ख- पलाश, ग-,खदिर, ग- अपामार्ग।

प्रश्न 7- आज्य संज्ञक कितनी आहुतियां दी जाती है?

क- एक, ख- दो, ग- तीन, घ- चार।

प्रश्न 8- आज्यभागान्त अन्तिम आहुति क्या है?

क- प्रजापतये स्वाहा, ख- इन्द्राय स्वाहा, ग- अग्नये स्वाहा, घ- सोमाय स्वाहा।

प्रश्न 9- चन्द्रमा का रत्न क्या है?

क- माणिक्य, ख- मोती, ग- मूंगा, घ- पन्ना।

प्रश्न 10- मोती को किस अंगुलि में धारण करना चाहिये?

क- तर्जनी, ख- मध्यमा, ग- अनामिका, घ- कनिष्ठा।

इस प्रकरण में आपने चन्द्र ग्रह की शान्ति प्रविधि के बारे में जाना। आशा है अब आप चन्द्र ग्रह की शान्ति करा सकेगें । अब हम भौम ग्रह की शान्ति का विधान कैसे करेगे इसका वर्णन करने जा रहे है जो इस प्रकार है-

2.4.3 मंगल ग्रह शान्ति का विधान

स्वाति नक्षत्र में भौमवार से प्रारम्भ कर सात मंगलवार को प्रतिदिन रक्त पुष्प इत्यादि से भौम की पूजा करके तथा सातवें भौमवार को प्रातः स्नानादि करके श्वेत धौत वस्त्र धारण कर आसन पर बैठकर अपने दक्षिण भाग में पूजन सम्भारों को रखकर सपत्नीक (यदि हो तो) दो बार आचमन कर प्राणायामादि करके शांतिपाठ पढ़कर लक्ष्मीनारायण इत्यादि देवताओं को प्रणाम करना चाहिये। तदनन्तर संकल्प करना चाहिये।

संकल्पः µॐश्री विष्णुर्विष्णर्विष्णुः 0 अमुक गोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा सपत्नीकोऽहं श्रुतिस्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थं मम कलत्रादिभिः सह जन्म राशेः सकाशान्नामराशेः सकाशाद्वा जन्मलग्नाद्वर्षलग्नाद् गोचराद्वा चतुर्थाष्टमद्वादशाद्यनिष्ट स्थान स्थित भौमेन् सूचितं सूचयिष्यमाणं च यत्सर्वारिष्टं तद्विनाशार्थं सर्वदा तृतीय एकादश शुभ स्थान स्थितवद् उत्तम फल प्राप्त्यर्थं तथा दशा अन्तरदशा उपदशा-जनित-पीडा-ल्पायु अधिदेवाधिभौतिक आध्यात्मिक जनित क्लेश निवृत्ति पूर्वकं शरीरे आरोग्यार्थं परमैश्वर्यादि प्राप्त्यर्थं श्री भौमस्य प्रसन्नार्थं च भौम शान्तिं करिष्ये।

तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं आयुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं आचार्यादिवरणानि च करिष्ये। तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनमहं करिष्ये। एतानि कर्माणि शान्तिविधानानुसारेण कुर्यात्।

संकल्प के अनन्तर गणपति पूजन से आचार्य वरणान्त समस्त प्रक्रियाओं का सम्पादन करना चाहिये। तदनन्तर अग्नि स्थापन कर उक्त विधान से ग्रह वेदी का निर्माण कर आवाहन एवं स्थापन

कर पूजन करना चाहिये। शान्ति प्रकाश के अनुसार एक वेदी के मध्य में अष्टदल कमल बनाकर उसके ऊपर एक ताम्र का कलश स्थापित करना चाहिये। ताम्र के पूर्णपात्र में सुवर्ण की मंगल की प्रतिमा अग्न्युत्तारण पूर्वक प्रधान देवता के रूप में स्थापित की जानी चाहिये। अग्न्युत्तारण की विधि सूर्य ग्रह की शान्ति में दी गयी है। उसमें केवल सूर्य के स्थान पर भौम लिखना चाहिये। इसके बाद दो रक्त वस्त्रों से मंगल की प्रतिमा को आच्छादित कर स्नान कराकर कुंकुम, रक्त चन्दन, रक्त अक्षत एवं रक्त पुष्प से पुरुषसूक्त द्वारा षोडशोपचार पूजन कर कंसार इत्यादि का नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। कुशकंडिका का सम्पादन कर आज्यभागान्त आहुतियाँ प्रदान करना चाहिये।

ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। इति मनसा।

ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदं इन्द्राय न मम। इति आघारसंज्ञकौ।

ॐ अग्नये स्वाहा। इदं अग्नये न मम।

ॐ सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय न मम। इति आज्यसंज्ञकौ।

तदनन्तर मंगल के हवनार्थ दधि, मधु, घृताक्त शाकल्य एवं खदिर की समिधा लेकर 108 बार हवन करें-

ॐ भौं भौमाय स्वाहा। इदं भौमाय न मम।।

होम के अनन्तर दिक्पाल, क्षेत्रपालादि को बलिदान देकर पूर्णाहुति प्रदान करना चाहिये।

इसके अनन्तर खदिर, देवदारु, तिल, आमलक, रक्तचन्दन चाँदी के जल से भरे हुये घड़े में रखकर पूर्ववद् अभिषेक करना चाहिये। उसके बाद योग्य को भौम की प्रतिमा का दान कर देना चाहिये।

संकल्प- इमां भौम प्रतिमां सोपस्करां तुभ्यमहं सम्प्रददे।। ततो प्रार्थना करनी चाहिये।

ॐ कुज कुप्रभवोपित्वं मंगलः परिगद्यसे।

अमंगलं निहत्याशु सर्वदा यच्छ मंगलम्।।

तदनन्तर पात्रस्थ प्रवाल, गोधूम, मसूरिका, रक्तवृषभ, गुड, सुवर्ण, रक्त वस्त्र, ताम्र इत्यादि का भौम की प्रसन्न्ता हेतु दान देना चाहिये। ब्राह्मणादि को भोजन कराकर कर्म पूर्त्ति को भगवान विष्णु को समर्पित करना चाहिये।

एवं कृते महा सौम्य भौमस्तुष्टिकरो भवेत्।।

मंगल की शान्ति हेतु मूंगा नामक रत्न को भी धारण करने का विधान है। मूंगा को सोने की अंगूठी में धारण करने का विधान है। यदि धारक के लिये सोना खरीदना संभव न हो तो चांदी में भी इसे मढ़वाया जा सकता है। मूंगे का वजन 6 रत्ती से कम नही होना चाहिये। मंगलवार को मूंगा खरीदकर उसी दिन अगूठी में जड़वाना चाहिये। 10000बार भौम के मूल मन्त्र का जप करके किसी शुक्लपक्ष

के मंगलवार को सूर्योदय से एक घण्टे बाद दायें हाथ की अनामिका अंगुलि में धारण करना चाहिये। इस प्रकार आपने यह देखा कि भौम ग्रह की शान्ति कैसे की जायेगी। भौम शान्ति हेतु रत्नो के धारण के सन्दर्भ में भी आप जान गये होगें। अतः आप भौम ग्रह की शान्ति करा सकते है।

अब हम संबंधित विषय को आधार बनाकर कुछ अभ्यास प्रश्न बनायेगें जिसका उत्तर आपको देना होगा। अभ्यास प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- भौम ग्रह शान्ति हेतु किस नक्षत्र से संयुक्त मंगलवार व्रत किया जाता है?

क- हस्त, ख- चित्रा, ग- स्वाती, घ- अनुराधा।

प्रश्न 2- भौम ग्रह हेतु किस वर्ण का पुष्प देना चाहिये?

क- सफेद, ख- रक्त, ग- पीत, घ- कृष्ण।

प्रश्न 3-भौम शान्ति हेतु किसका कलश स्थापित करना चाहिये?

क- स्वर्ण का, ख- रजत का, ग- ताम्र का, घ- कांस्य का।

प्रश्न 4- भौम शान्ति हेतु पूर्णपात्र किसका होना चाहिये?

क- स्वर्ण का, ख- रजत का, ग- ताम्र का, घ- कांस्य का।

प्रश्न 5- भौम की प्रतिमा किसकी बनाई जाती है?

क- स्वर्ण की, ख- रजत की, ग- ताम्र की, घ- कांस्य की।

प्रश्न 6- भौम शान्ति हेतु किस समिधा का हवन किया जाता है?

क- अर्क, ख- पलाश, ग-,खदिर, ग- अपामार्ग।

प्रश्न 7- आघार संज्ञक कितनी आहुतियां दी जाती है?

क- एक, ख- दो, ग- तीन, घ- चार।

प्रश्न 8- आज्यभागान्त प्रथम आहुति क्या है?

क- प्रजापतये स्वाहा, ख- इन्द्राय स्वाहा, ग- अग्नये स्वाहा, घ- सोमाय स्वाहा।

प्रश्न 9- भौम का रत्न क्या है?

क- माणिक्य, ख- मोती, ग- मूंगा, घ- पन्ना।

प्रश्न 10- मूंगा को किस अंगुलि में धारण करना चाहिये?

क- तर्जनी, ख- मध्यमा, ग- अनामिका, ग- कनिष्ठा।

इस प्रकरण में आपने भौम ग्रह की शान्ति प्रविधि के बारे में जाना। आशा है अब आप भौम ग्रह की शान्ति करा सकेगें। अब हम बुध ग्रह की शान्ति का विधान कैसे करेगे इसका वर्णन करने जा रहे है जो इस प्रकार है-

2.4.4 बुध ग्रह शान्ति का विधान

विशाखा नक्षत्र में बुधवार से प्रारम्भ कर सात बुधवार को प्रतिदिन रक्त पुष्प इत्यादि से बुध की पूजा करके तथा सातवें बुधवार को प्रातः स्नानादि करके श्वेत धौत वस्त्र धारण कर आसन पर बैठकर अपने दक्षिण भाग में पूजन सम्भारों को रखकर सपत्नीक (यदि हो तो) दो बार आचमन कर प्राणायामादि करके शांतिपाठ पढ़कर लक्ष्मीनारायण इत्यादि देवताओं को प्रणाम करना चाहिये। तदनन्तर संकल्प करना चाहिये।

संकल्पः µॐश्री विष्णुर्विष्णर्विष्णुः अमुक गोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा सपत्नीकोऽहं श्रुतिस्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थं मम कलत्रादिभिः सह जन्म राशेः सकाशान्नामराशेः सकाशाद्वा जन्मलग्नाद्वर्षलग्नाद् गोचराद्वा चतुर्थाष्टमद्वादशाद्यनिष्ट स्थान स्थित बुधेन सूचितं सूचयिष्यमाणं च यत्सर्वारिष्टं तद्विनाशार्थं सर्वदा तृतीय एकादश शुभ स्थान स्थितवद् उत्तम फल प्राप्त्यर्थं तथा दशा अन्तरदशा उपदशा-जनित-पीडा-ल्पायु अधिदेवाधिभौतिक आध्यात्मिक जनित क्लेश निवृत्ति पूर्वकं शरीर-आरोग्यार्थं परमैश्वर्यादि प्राप्त्यर्थं श्री बुधस्य प्रसन्नार्थं च बुध शान्तिं करिष्ये।

तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं आयुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं आचार्यादिवरणानि च करिष्ये। तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनमहं करिष्ये। एतानि कर्माणि शान्तिविधानानुसारेण कुर्यात्।

संकल्प के अनन्तर गणपति पूजन से आचार्य वरणान्त समस्त प्रक्रियाओं का सम्पादन करना चाहिये। तदनन्तर अग्नि स्थापन कर उक्त विधान से ग्रह वेदी का निर्माण कर आवाहन एवं स्थापन कर पूजन करना चाहिये। शान्ति प्रकाश के अनुसार एक वेदी के मध्य में अष्टदल कमल बनाकर उसके ऊपर एक काँसे का कलश स्थापित करना चाहिये। कांस्य के पूर्णपात्र में सुवर्ण की बुध की प्रतिमा अग्न्युत्तारण पूर्वक प्रधान देवता के रूप में स्थापित की जानी चाहिये। अग्न्युत्तारण का विधान इससे पूर्व सूर्य की शान्ति में दिया गया है। उसमें केवल नाम का परिवर्तन करके अग्न्युत्तारण करना चाहिये।दो शुक्ल वस्त्रों से बुध की प्रतिमा को आच्छादित कर स्नान कराकर कुंकुम, चन्दन, अक्षत एवं पुष्प से पुरुष सूक्त द्वारा षोडशोपचार पूजन कर गुड और ओदन इत्यादि का नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। कुशकंडिका का सम्पादन कर आज्यभागान्त आहुतियाँ प्रदान करना चाहिये।

ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम । इति मनसा ।

ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदं इन्द्राय न मम । इति आघारसंज्ञकौ ।

ॐ अग्नये स्वाहा। इदं अग्नये न मम ।

ॐ सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय न मम। इति आज्यसंज्ञकौ ।

तदनन्तर बुध के हवनार्थ दधि, मधु, घृताक्त शाकल्य एवं अपामार्ग की समिधा लेकर 108 बार हवन करें -

ॐ बुं बुधाय स्वाहा। इदं बुधाय न मम ।।

होम के अनन्तर दिक्पाल, क्षेत्रपालादि को बलिदान देकर पूर्णाहुति प्रदान करना चाहिये। इसके अनन्तर नदी संगम का जल मिट्टी इत्यादि जल से भरे हुये मिट्टी के घड़े में रखकर पूर्ववद् अभिषेक करना चाहिये। उसके बाद योग्य को बुध की प्रतिमा का दान कर देना चाहिये ।

संकल्प- इमां बुध प्रतिमां सोपस्करां तुभ्यमहं सम्प्रददे।। ततो प्रार्थना करनी चाहिये ।

ॐ बुध त्वं बुद्धिजननो बोधवान्सर्वदा नृणाम् ।

तत्वावबोधं कुरु मे सोम पुत्र नमो नमः ।।

तदनन्तर नील वस्त्र, सुवर्ण, कांस्य, मूंगा, पन्ना, दासी, हाथीदात, पुष्प इत्यादि का बुध की प्रसन्न्ता हेतु दान देना चाहिये । ब्राह्मणादि को भोजन कराकर कर्म पूर्त्ति को भगवान विष्णु को समर्पित करना चाहिये ।

एवं कृते महा सौम्य बुधस्तुष्टिकरो भवेत् ।।

बुध ग्रह की शान्ति के लिये पन्ना नामक रत्न धारण करने का विधान बतलाया गया है । जहां तक संभव हो पन्ना बुधवार को चांदी की अंगूठी में जड़वाना चाहिये । इसका वनज तीन रत्ती से कम नही होना चाहिये । इसे विधिपूर्वक उपासना करने के बाद बुध के मूल मन्त्र का 9000 बार जप करके किसी शुक्ल पक्ष के बुधवार को सूर्योदय के दो घण्टे बाद धारण करना चाहिये । पन्ना सोने की अंगूठी में भी पहनने का प्रचलन है । इसे दाहिने हाथ की कनिष्ठा उंगली में पहनना चाहिये ।

इस प्रकार आपने यह देखा कि बुध ग्रह की शान्ति कैसे की जायेगी । बुध शान्ति हेतु रत्नो के धारण के सन्दर्भ में भी आप जान गये होगें । अतः आप बुध ग्रह की शान्ति करा सकते है ।

अब हम संबंधित विषय को आधार बनाकर कुछ अभ्यास प्रश्न बनायेगें जिसका उत्तर आपको देना होगा। अभ्यास प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- बुध ग्रह शान्ति हेतु किस नक्षत्र से संयुक्त बुधवार व्रत किया जाता है?

क- हस्त, ख- चित्रा, ग- स्वाती, घ- विशाखा।

प्रश्न 2- बुध ग्रह हेतु किस वर्ण का पुष्प देना चाहिये?

क- सफेद, ख- रक्त, ग- पीत, घ- कृष्ण।

प्रश्न 3-बुध शान्ति हेतु किसका कलश स्थापित करना चाहिये?

क- स्वर्ण का, ख- रजत का, ग- ताम्र का, घ- कांस्य का।

प्रश्न 4- बुध शान्ति हेतु पूर्णपात्र किसका होना चाहिये?

क- स्वर्ण का, ख- रजत का, ग- ताम्र का, घ- कांस्य का।

प्रश्न 5- बुध की प्रतिमा किसकी बनाई जाती है?

क- स्वर्ण की, ख- रजत की, ग- ताम्र की, घ- कांस्य की।

प्रश्न 6- बुध शान्ति हेतु किस समिधा का हवन किया जाता है?

क- अर्क, ख- पलाश, ग-,खदिर, घ- अपामार्ग।

प्रश्न 7- आघार एवं आज्य संज्ञक कितनी आहुतियां दी जाती है?

क- एक, ख- दो, ग- तीन, घ- चार।

प्रश्न 8- आज्यभागान्त अन्तिम आहुति क्या है?

क- प्रजापतये स्वाहा, ख- इन्द्राय स्वाहा, ग- अग्नये स्वाहा, घ- सोमाय स्वाहा।

प्रश्न 9- बुध का रत्न क्या है?

क- माणिक्य, ख- मोती, ग- मूंगा, घ- पन्ना।

प्रश्न 10- पन्ना को किस अंगुलि में धारण करना चाहिये?

क- तर्जनी, ख- मध्यमा, ग- अनामिका, घ- कनिष्ठा।

इस प्रकरण में आपने बुध ग्रह की शान्ति प्रविधि के बारे में जाना। आशा है अब आप बुध ग्रह की शान्ति करा सकेगें। अब हम बृहस्पति ग्रह की शान्ति का विधान कैसे करेगे इसका वर्णन करने जा रहे है जो इस प्रकार है-

2.4.5. बृहस्पति ग्रह शान्ति विधान

अनुराधा नक्षत्र में गुरुवार से प्रारम्भ कर सात गुरुवार को प्रतिदिन पीत पुष्प इत्यादि से गुरु की पूजा

करके तथा सातवें गुरुवार को प्रातः स्नानादि करके श्वेत धौत वस्त्र धारण कर आसन पर बैठकर अपने दक्षिण भाग में पूजन सम्भारों को रखकर सपत्नीक (यदि हो तो) दो बार आचमन कर प्राणायामादि करके शांतिपाठ पढ़कर लक्ष्मीनारायण इत्यादि देवताओं को प्रणाम करना चाहिये। तदनन्तर संकल्प करना चाहिये।

संकल्पः µॐश्री विष्णुर्विष्णर्विष्णुः अमुक गोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा सपत्नीकोऽहं श्रुतिस्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थं मम कलत्रादिभिः सह जन्म राशेः सकाशान्नामराशेः सकाशाद्वा जन्मलग्नाद्वर्षलग्नाद् गोचराद्वा चतुर्थाष्टमद्वादशाद्यनिष्ट स्थान स्थित गुरुणा सूचितं सूचयिष्यमाणं च यत्सर्वारिष्टं तद्विनाशार्थं सर्वदा तृतीय एकादश शुभ स्थान स्थितवद् उत्तम फल प्राप्त्यर्थं तथा दशा अन्तरदशा उपदशा-जनित-पीडा-ल्पायु अधिदेवाधिभौतिक आध्यात्मिक जनित क्लेश निवृत्ति पूर्वकं शरीरे आरोग्यार्थं परमैश्वर्यादि प्राप्त्यर्थं श्री गुरोः प्रसन्नार्थं च गुरु शान्तिं करिष्ये।

तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं आयुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं आचार्यादिवरणानि च करिष्ये। तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनमहं करिष्ये। एतानि कर्माणि शान्तिविधानानुसारेण कुर्यात्।

संकल्प के अनन्तर गणपति पूजन से आचार्य वरणान्त समस्त प्रक्रियाओं का सम्पादन करना चाहिये। तदनन्तर अग्नि स्थापन कर उक्त विधान से ग्रह वेदी का निर्माण कर आवाहन एवं स्थापन कर पूजन करना चाहिये। शान्ति प्रकाश के अनुसार एक वेदी के मध्य में अष्टदल कमल बनाकर उसके ऊपर एक सुवर्ण कलश स्थापित करना चाहिये। सुवर्ण के पूर्णपात्र में सुवर्ण की बृहस्पति की प्रतिमा अग्न्युत्तारण पूर्वक प्रधान देवता के रूप में स्थापित की जानी चाहिये।अग्न्युत्तारण की विधि सूर्य ग्रह की शान्ति में दी गयी है। उसमें सूर्य के सथान पर बृहस्पति शब्द का प्रयोग करके अग्न्युत्तारण किया जा सकता है। दो पीत वस्त्रों से गुरु की प्रतिमा को आच्छादित कर स्नान कराकर पीला चन्दन, पीला अक्षत एवं पीले पुष्प से पुरुषसूक्त द्वारा षोडशोपचार पूजन कर खण्ड खाद्य इत्यादि का नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। कुशकंडिका का सम्पादन कर आज्यभागान्त आहुतियाँ प्रदान करना चाहिये।

ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। इति मनसा।

ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदं इन्द्राय न मम। इति आघारसंज्ञकौ।

ॐ अग्नये स्वाहा। इदं अग्नये न मम।

ॐ सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय न मम। इति आज्यसंज्ञकौ।

तदनन्तर गुरु के हवनार्थ दधि, मधु, घृताक्त शाकल्य एवं अश्वत्थ की समिधा लेकर 108 बार हवन करें-

ॐ बृ बृहस्पतये स्वाहा । इदं बृहस्पतये न मम।

होम के अनन्तर दिक्पाल, क्षेत्रपालादि को बलिदान देकर पूर्णाहुति प्रदान करना चाहिये। इसके अनन्तर औदुम्बर, बिल्व, वट, आमलक इत्यादि जल से भरे हुये सुवर्ण के घड़े में रखकर पूर्ववद् अभिषेक करना चाहिये। उसके बाद योग्य को बृहस्पति की प्रतिमा का दान कर देना चाहिये।

संकल्प- इमां बृहस्पति प्रतिमां सोपस्करां तुभ्यमहं सम्प्रददे।। ततो प्रार्थना करनी चाहिये।

ॐ धर्म शास्त्रार्थ तत्वज्ञ ज्ञान विज्ञान पारग।

विबुधार्ति हरा चिन्त्य देवाचार्य नमोस्तुते।।

तदनन्तर पीला वस्त्र, सुवर्ण, पुष्परागमणि, हरिद्रा, षर्करा, पीत धान्य, लवण इत्यादि का बृहस्पति की प्रसन्ता हेतु दान देना चाहिये। ब्राह्मणादि को भोजन कराकर कर्म पूर्त्ति को भगवान विष्णु को समर्पित करना चाहिये।

एवं कृते महा सौम्य गुरुस्तुष्टिकरो भवेत्।।

इसके अलावा बृहस्पति की शान्ति हेतु पुखराज धारण करने का विधान है। पुखराज को सोने की अंगूठी में ही धारण करना चाहिये। सात या बारह रत्ती का पुखराज धारण करना चाहिये। बृहस्पतिवार को पुखराज रत्न की अंगूठी जड़वाना चाहिये। अंगूठी को विधिपूर्वक उपासना करने के बाद बृहसपति के मूल मन्त्र का 19000 बार जप करके किसी शुक्ल पक्ष के गुरूवार को सूर्यास्त से एक घझटे पहले तर्जनी उंगली में धारण करना चाहिये।

इस प्रकार आपने यह देखा कि बृहस्पति ग्रह की शान्ति कैसे की जायेगी। बृहसपति शान्ति हेतु रत्न के धारण के सन्दर्भ में भी आप जान गये होगें। अतः आप बृहस्पति ग्रह की शान्ति करा सकते है।

अब हम संबंधित विषय को आधार बनाकर कुछ अभ्यास प्रश्न बनायेगें जिसका उत्तर आपको देना होगा। अभ्यास प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- बृहस्पति ग्रह शान्ति हेतु किस नक्षत्र से संयुक्त बृहस्पतिवार व्रत किया जाता है?

क- हस्त, ख- चित्रा, ग- स्वाती, घ- अनुराधा।

प्रश्न 2- बृहस्पति ग्रह हेतु किस वर्ण का पुष्प देना चाहिये?

क- सफेद, ख- रक्त, ग- पीत, घ- कृष्ण।

प्रश्न 3-बृहस्पति शान्ति हेतु किसका कलश स्थापित करना चाहिये?

क- स्वर्ण का, ख- रजत का, ग- ताम्र का, घ- कांस्य का।

प्रश्न 4- बृहस्पति शान्ति हेतु पूर्णपात्र किसका होना चाहिये?

क- स्वर्ण का, ख- रजत का, ग- ताम्र का, घ- कांस्य का।

प्रश्न 5- बृहस्पति की प्रतिमा किसकी बनाई जाती है?

क- स्वर्ण की, ख- रजत की, ग- ताम्र की, घ- कांस्य की।

प्रश्न 6- बृहस्पति शान्ति हेतु किस समिधा का हवन किया जाता है?

क- अर्क, ख- पलाश, ग-,खदिर, घ- पीपल।

प्रश्न 7- आघार संज्ञक में मनसा कितनी आहुतियां दी जाती है?

क- एक, ख- दो, ग- तीन, घ- चार।

प्रश्न 8- आघार भागान्त प्रथम आहुति क्या है?

क- प्रजापतये स्वाहा, ख- इन्द्राय स्वाहा, ग- अग्नये स्वाहा, घ- सोमाय स्वाहा।

प्रश्न 9- बृहस्पति का रत्न क्या है?

क- माणिक्य, ख- मोती, ग- पुखराज, घ- पन्ना।

प्रश्न 10- पुखराज को किस अंगुलि में धारण करना चाहिये?

क- तर्जनी, ख- मध्यमा, ग- अनामिका, ग- कनिष्ठा।

इस प्रकरण में आपने बृहस्पति ग्रह की शान्ति प्रविधि के बारे में जाना। आशा है अब आप बृहस्पति ग्रह की शान्ति करा सकेगें। अब हम शुक्र ग्रह की शान्ति का विधान कैसे करेगे इसका वर्णन करने जा रहे है जो इस प्रकार है-

2.4.6 शुक्र ग्रह शान्ति विधान

ज्येष्ठा नक्षत्र में शुक्रवार से प्रारम्भ कर सात शुक्रवार को प्रतिदिन श्वेत पुष्प इत्यादि से शुक्र की पूजा करके तथा सातवें शुक्रवार को प्रातः स्नानादि करके श्वेत धौत वस्त्र धारण कर आसन पर बैठकर अपने दक्षिण भाग में पूजन सम्भारों को रखकर सपत्नीक (यदि हो तो) दो बार आचमन कर प्राणायामादि करके शांतिपाठ पढ़कर लक्ष्मीनारायण इत्यादि देवताओं को प्रणाम करना चाहिये। तदनन्तर संकल्प करना चाहिये।

संकल्पःµॐश्री विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अमुक गोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा सपत्नीकोऽहं श्रुतिस्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थं मम कलत्रादिभिः सह जन्म राशेः सकाशान्नामराशेः सकाशाद्वा जन्मलग्नाद्वर्षलग्नाद् गोचराद्वा चतुर्थाष्टमद्वादशाद्यनिष्ट स्थान स्थित शुक्रेण सूचितं सूचयिष्यमाणं च यत्सर्वारिष्टं तद्विनाशार्थं

सर्वदा तृतीय एकादश शुभ स्थान स्थितवद् उत्तम फल प्राप्त्यर्थं तथा दशा अन्तरदशा उपदशा-जनित-पीडा-ल्पायु अधिदेवाधिभौतिक आध्यात्मिक जनित क्लेश निवृत्ति पूर्वकं शरीरारोग्यार्थं परमैश्वर्यादि प्राप्त्यर्थं श्री शुक्र प्रसन्नार्थं च शुक्र शान्तिं करिष्ये।

तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं आयुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं आचार्यादिवरणानि च करिष्ये। तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनमहं करिष्ये। एतानि कर्माणि शान्तिविधानानुसारेण कुर्यात्।

संकल्प के अनन्तर गणपति पूजन से आचार्य वरणान्त समस्त प्रक्रियाओं का सम्पादन करना चाहिये। तदनन्तर अग्नि स्थापन कर उक्त विधान से ग्रह वेदी का निर्माण कर आवाहन एवं स्थापन कर पूजन करना चाहिये। शान्ति प्रकाश के अनुसार एक वेदी के मध्य में अष्टदल कमल बनाकर उसके ऊपर एक रजत कलश स्थापित करना चाहिये। रजत के पूर्णपात्र में सुवर्ण की शुक्र की प्रतिमा अग्न्युत्तारण पूर्वक प्रधान देवता के रूप में स्थापित की जानी चाहिये। अग्न्युत्तारण का विधान सूर्य ग्रह की शान्ति में दिया गया है। वहां सूर्य के स्थान पर शुक्र का उच्चारण करना चाहिये। दो सफेद वस्त्रों से शुक्र की प्रतिमा को आच्छादित कर स्नान कराकर श्वेत चन्दन, श्वेत अक्षत एवं श्वेत पुष्प से पुरुषसूक्त द्वारा षोडशोपचार पूजन कर घृत संयुक्त पायस इत्यादि का नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। कुशकंडिका का सम्पादन कर आज्यभागान्त आहुतियाँ प्रदान करना चाहिये।

ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। इति मनसा।

ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदं इन्द्राय न मम। इति आघारसंज्ञकौ।

ॐ अग्नये स्वाहा। इदं अग्नये न मम।

ॐ सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय न मम। इति आज्यसंज्ञकौ।

तदनन्तर शुक्र के हवनार्थ दधि, मधु, घृताक्त शाकल्य एवं उदुम्बर की समिधा लेकर 108 बार हवन करें -

ॐ शुं शुक्राय स्वाहा। इदं शुक्राय न मम ।।

होम के अनन्तर दिक्पाल, क्षेत्रपालादि को बलिदान देकर पूर्णाहुति प्रदान करना चाहिये। इसके अनन्तर गोरोचन, कस्तूरीका, शतपूष्पा, शतावरी इत्यादि जल से भरे हुये रजत के घड़े में रखकर पूर्ववद् अभिषेक करना चाहिये। उसके बाद योग्य को शुक्र की प्रतिमा का दान कर देना चाहिये।

संकल्प- इमां शुक्र प्रतिमां सोपस्करां तुभ्यमहं सम्प्रददे।। ततो प्रार्थना करनी चाहिये।

ॐ भार्गवो भर्ग शुक्रष्च श्रुति स्मृति विशारदः ।

हत्वा ग्रह कृतान् दोषानायुरारोग्दोस्तु सः ।।

तदनन्तर श्वेत वस्त्र, श्वेत अश्व, धेनु, वज्र, मणि, सुवर्ण, रजत, तंडुल इत्यादि का शुक्र की प्रसन्ता हेतु दान देना चाहिये। ब्राह्मणादि को भोजन कराकर कर्म पूर्त्ति को भगवान विष्णु को समर्पित करना चाहिये।

एवं कृते महा सौम्य शुक्रस्तुष्टिकरो भवेत् ॥

इसके अलावा शुक्र की शान्ति हेतु हीरा नामक रत्न धारण करना चाहिये। हीरे को प्लेटिनम या चांदी की अंगूठी में धारण करना चाहिये। इसे शुक्रवार को बनवाना उत्तम है। हीरा जड़ी अंगूठी का विधिपूर्वक उपासना करके शुक्र के मूल मन्त्र का सोलह हजार बार जप करके किसी शुक्लपक्ष के शुक्रवार को प्रातःकाल श्रद्धा से धारण करना चाहिये।

इस प्रकार आपने यह देखा कि शुक्र ग्रह की शान्ति कैसे की जायेगी। शुक्र शान्ति हेतु रत्नो के धारण के सन्दर्भ में भी आप जान गये होगें। अतः आप शुक्र ग्रह की शान्ति करा सकते है।

अब हम संबंधित विषय को आधार बनाकर कुछ अभ्यास प्रश्न बनायेगें जिसका उत्तर आपको देना होगा। अभ्यास प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- शुक्र ग्रह शान्ति हेतु किस नक्षत्र से संयुक्त शुक्रवार व्रत किया जाता है?

क- हस्त, ख- ज्येष्ठा, ग- स्वाती, घ- अनुराधा।

प्रश्न 2- शुक्र ग्रह हेतु किस वर्ण का पुष्प देना चाहिये?

क- सफेद, ख- रक्त, ग- पीत, घ- कृष्ण।

प्रश्न 3-शुक्र शान्ति हेतु किसका कलश स्थापित करना चाहिये?

क- स्वर्ण का, ख- रजत का, ग- ताम्र का, घ- कांस्य का।

प्रश्न 4- शुक्र शान्ति हेतु पूर्णपात्र किसका होना चाहिये?

क- स्वर्ण का, ख- रजत का, ग- ताम्र का, घ- कांस्य का।

प्रश्न 5- शुक्र की प्रतिमा किसकी बनाई जाती है?

क- स्वर्ण की, ख- रजत की, ग- ताम्र की, घ- कांस्य की।

प्रश्न 6- शुक्र शान्ति हेतु किस समिधा का हवन किया जाता है?

क- उदुम्बर, ख- पलाश, ग-,खदिर, ग- अपामार्ग।

प्रश्न 7- आघार संज्ञक अन्तिम कितनी आहुतियां दी जाती है?

क- एक, ख- दो, ग- तीन, घ- चार।

प्रश्न 8- आज्यभागान्त अन्तिम आहुति क्या है?

क- प्रजापतये स्वाहा, ख- इन्द्राय स्वाहा, ग- अग्नये स्वाहा, घ- सोमाय स्वाहा।

प्रश्न 9- शुक्र का रत्न क्या है?

क- माणिक्य, ख- हीरा, ग- मूंगा, घ- पन्ना।

प्रश्न 10- हीरा को किसमें धारण करना चाहिये?

क- स्वर्ण, ख- रजत, ग- ताम्र, ग- लौह।

इस प्रकरण में आपने शुक्र ग्रह की शान्ति प्रविधि के बारे में जाना। आशा है अब आप शुक्र ग्रह की शान्ति करा सकेगें। अब हम शनि ग्रह की शान्ति का विधान कैसे करेगे इसका वर्णन करने जा रहे है जो इस प्रकार है-

2.4.7 शनि ग्रह शान्ति विधान

जन्म स्थान से द्वादश, अष्टमस्थ शनि रहने पर शान्ति करानी चाहिये। श्रावण आदि मास के प्रथम शनिवार से प्रारम्भ कर सात शनिवार को प्रतिदिन पुष्प इत्यादि से शनि की पूजा करके तथा सातवें शनिवार को प्रातः स्नानादि करके श्वेत धौत वस्त्र धारण कर आसन पर बैठकर अपने दक्षिण भाग में पूजन सम्भारों को रखकर सपत्नीक (यदि हो तो) दो बार आचमन कर प्राणायामादि करके शांतिपाठ पढ़कर लक्ष्मीनारायण इत्यादि देवताओं को प्रणाम करना चाहिये। तदनन्तर संकल्प करना चाहिये।

संकल्पः- ॐश्री विष्णुर्विष्णर्विष्णुः अमुक गोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा सपत्नीकोऽहं श्रुतिस्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थं मम कलत्रादिभिः सह जन्म राशेः सकाशान्नामराशेः सकाशाद्वा जन्मलग्नाद्वर्षलग्नाद् गोचराद्वा अनिष्ट स्थान स्थित शनैश्चरेण सूचितं सूचयिष्यमाणं च यत्सर्वारिष्टं तद्विनाशार्थं सर्वदा तृतीय एकादश शुभ स्थान स्थितवद् उत्तम फल प्राप्त्यर्थं तथा दशा अन्तरदशा उपदशा-जनित-पीडा-ल्पायु अधिदेवाधिभौतिक आध्यात्मिक जनित क्लेश निवृत्ति पूर्वकं शरीरे आरोग्यार्थं परमैश्वर्यादि प्राप्त्यर्थं श्री शनि प्रसन्नार्थं च शनिश्चरस्य शान्तिं करिष्ये।

तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं आयुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं आचार्यादिवरणानि च करिष्ये। तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनमहं करिष्ये। एतानि कर्माणि पूजनविधानानुसारेण कुर्यात्।

संकल्प के अनन्तर गणपति पूजन से आचार्य वरणान्त समस्त प्रक्रियाओं का सम्पादन करना चाहिये। तदनन्तर अग्नि स्थापन कर उक्त विधान से ग्रह वेदी का निर्माण कर आवाहन एवं स्थापन

कर पूजन करना चाहिये। शान्ति प्रकाश के अनुसार एक वेदी के मध्य में अष्टदल कमल बनाकर उसके ऊपर एक लौह कलश स्थापित करना चाहिये। लौह के पूर्णपात्र में लौह की शनि की प्रतिमा अग्न्युत्तारण पूर्वक प्रधान देवता के रूप में स्थापित की जानी चाहिये। अग्न्युत्तारण की विधि सूर्य ग्रह की शान्ति में दिया गया है। उसमें सूर्य के सथान पर शनि का उच्चारण करके अग्न्युत्तारण किया जा सकता है। दो कृष्ण वस्त्रों से शनि की प्रतिमा को आच्छादित कर पंचामृत या तिल के तैल से स्नान कराकर उड़द, तिल, कम्बल से युक्त कर कस्तूरी, कृष्ण अगरु, कृष्ण पुष्प, चन्दन, अक्षत द्वारा षोडशोपचार पूजन कर कृसरान्न, उड़द, चावल, पायस, वारा, पूरिका इत्यादि का नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। कुशकंडिका का सम्पादन कर आज्यभागान्त आहुतियाँ प्रदान करना चाहिये।

ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। इति मनसा।

ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदं इन्द्राय न मम। इति आघारसंज्ञकौ।

ॐ अग्नये स्वाहा। इदं अग्नये न मम।

ॐ सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय न मम। इति आज्यसंज्ञकौ।

तदनन्तर शनि के हवनार्थ दधि, मधु, घृताक्त शाकल्य एवं शमी की समिधा लेकर 108 बार हवन करें-

ॐ शं शनैश्चराय स्वाहा। इदं शनैश्चराय न मम।।

होम के अनन्तर दिक्पाल, क्षेत्रपालादि को बलिदान देकर पूर्णाहुति प्रदान करना चाहिये। इसके अनन्तर तिल, उड़द, प्रियंगु, गंध व पुष्प इत्यादि जल से भरे हुये लौह के घड़े में रखकर पूर्ववद् अभिषेक करना चाहिये। उसके बाद योग्य को शनि की प्रतिमा का दान कर देना चाहिये।

संकल्प- इमां शनि प्रतिमां सोपस्करां तुभ्यमहं सम्प्रददे।। ततो प्रार्थना करनी चाहिये।

ॐ नीलांजन समाभासं रविपुत्रं यमाग्रजं।

छाया मार्तण्ड सम्भूतं तं नमामि शनैष्चरम्।।

तदनन्तर इन्द्रनील, उड़द, तैल, तिल, कुलित्थ, महिषी, लौह व काली गाय इत्यादि का शनि की प्रसन्न्ता हेतु दान देना चाहिये। ब्राह्मणादि को भोजन कराकर कर्म पूर्त्ति को भगवान विष्णु को समर्पित करना चाहिये।

एवं कृते महा सौम्य शनिस्तुष्टिकरो भवेत्।।

इसके अलावा शनि के लिये नीलम रत्न धारण करना चाहिये। नीलम को शनिवार के दिन पंचधातु या स्टील की अंगूठी में जड़वाकर विधिवत् उसकी उपासनादि करके सूर्यास्त से दो घण्टे पूर्व मध्यमा उंगली धारण करना चाहिये। नीलम का वजन चार रत्ती हो तो अच्छा है। इसे पहनने से पूर्व शनि के

मूल मन्त्र का 23000 बार जप करना चाहिये। शनि का रत्न नीलम धारण से पूर्व परीक्षण करनी चाहिये।

इस प्रकार आपने यह देखा कि शनि ग्रह की शान्ति कैसे की जायेगी। शनि शान्ति हेतु रत्न के धारण के सन्दर्भ में भी आप जान गये होगें। अतः आप श्नि ग्रह की शान्ति करा सकते है।

अब हम संबंधित विषय को आधार बनाकर कुछ अभ्यास प्रश्न बनायेगें जिसका उत्तर आपको देना होगा। अभ्यास प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न -

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है -

प्रश्न 1- शनि ग्रह शान्ति हेतु कौन सा व्रत किया जाता है?

क- शुक्र, ख- शनि, ग- रवि, घ- सोम।

प्रश्न 2- शनि ग्रह हेतु किस वर्ण का पुष्प देना चाहिये?

क- सफेद, ख- रक्त, ग- पीत, घ- कृष्ण।

प्रश्न 3-शनि शान्ति हेतु किसका कलश स्थापित करना चाहिये?

क- स्वर्ण का, ख- रजत का, ग- ताम्र का, घ- लोहे का।

प्रश्न 4- शनि शान्ति हेतु पूर्णपात्र किसका होना चाहिये?

क- स्वर्ण का, ख- रजत का, ग- लोहे का, घ- कांस्य का।

प्रश्न 5- शनि की प्रतिमा किसकी बनाई जाती है?

क- स्वर्ण की, ख- रजत की, ग- लोहे की, घ- कांस्य की।

प्रश्न 6- शनि शान्ति हेतु किस समिधा का हवन किया जाता है?

क- अर्क, ख- शमी, ग-,खदिर, ग- अपामार्ग।

प्रश्न 7- शनि शान्ति हेतु कितना जप अपेक्षित है?

क- 23000, ख-24000, ग-25000, घ-26000।

प्रश्न 8- प्रथम आहुति क्या है?

क- प्रजापतये स्वाहा, ख- इन्द्राय स्वाहा, ग- अग्नये स्वाहा, घ- सोमाय स्वाहा।

प्रश्न 9- शनि का रत्न क्या है?

क- माणिक्य, ख- नीलम, ग- मूंगा, घ- पन्ना।

प्रश्न 10- नीलम को किस अंगुलि में धारण करना चाहिये?

क- तर्जनी, ख- मध्यमा, ग- अनामिका, ग- कनिष्ठा।

इस प्रकरण में आपने शनि ग्रह की शान्ति प्रविधि के बारे में जाना। आशा है अब आप शनि ग्रह की शान्ति करा सकेगें। अब हम राहु एवं केतु ग्रह की शान्ति का विधान कैसे करेगे इसका वर्णन करने जा रहे है जो इस प्रकार है-

2.4.8 राहु एवं केतु शान्ति विधान

शनिवार से प्रारम्भ कर सात शनिवार को प्रतिदिन पुष्प इत्यादि से राहु की पूजा करके तथा सातवें शनिवार को प्रातः स्नानादि करके श्वेत धौत वस्त्र धारण कर आसन पर बैठकर अपने दक्षिण भाग में पूजन सम्भारों को रखकर सपत्नीक (यदि हो तो) दो बार आचमन कर प्राणायामादि करके शांतिपाठ पढ़कर लक्ष्मीनारायण इत्यादि देवताओं को प्रणाम करना चाहिये । तदनन्तर संकल्प करना चाहिये ।

संकल्पः - ॐश्री विष्णुर्विष्णर्विष्णुः अमुक गोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा सपत्नीकोऽहं श्रुतिस्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थं मम कलत्रादिभिः सह जन्म राशेः सकाशान्नामराशेः सकाशाद्वा जन्मलग्नाद्वर्षलग्नाद् गोचराद्वा अनिष्ट स्थान स्थित राहु ग्रहेण सूचितं सूचयिष्यमाणं च यत्सर्वारिष्टं तद्विनाशार्थं सर्वदा तृतीय एकादश शुभ स्थान स्थितवद् उत्तम फल प्राप्त्यर्थं तथा दशा अन्तरदशा उपदशा-जनित-पीडा-ल्पायु अधिदेवाधिभौतिक आध्यात्मिक जनित क्लेश निवृत्ति पूर्वकं शरीर-आरोग्यार्थं परमैश्वर्यादि प्राप्त्यर्थं श्री राहु प्रसन्नार्थं च राहु शान्तिं करिष्ये।

तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं आयुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं आचार्यादिवरणानि च करिष्ये। तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनमहं करिष्ये। एतानि कर्माणि शान्ति विधानानुसारेण कुर्यात्।

संकल्प के अनन्तर गणपति पूजन से आचार्य वरणान्त समस्त प्रक्रियाओं का सम्पादन करना चाहिये। तदनन्तर अग्नि स्थापन कर उक्त विधान से ग्रह वेदी का निर्माण कर आवाहन एवं स्थापन कर पूजन करना चाहिये। शान्ति प्रकाश के अनुसार एक वेदी के मध्य में अष्टदल कमल बनाकर उसके ऊपर एक लौह कलश स्थापित करना चाहिये। लौह के पूर्णपात्र में लौह की राहु की प्रतिमा अग्न्युत्तारण पूर्वक प्रधान देवता के रूप में स्थापित की जानी चाहिये। अग्न्युत्तारण की विधि सूर्य ग्रह की शान्ति में दिया गया है। उसमें सूर्य के स्थान पर राहु एवं केतु का उच्चारण करना चाहिये। दो कृष्ण वस्त्रों से राहु की प्रतिमा को आच्छादित कर पंचामृत से स्नान कराकर कृष्ण पुष्प, चन्दन, अक्षत द्वारा षोडशोपचार पूजन कर पायस इत्यादि का नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। कुशकंडिका का सम्पादन कर आज्यभागान्त आहुतियाँ प्रदान करना चाहिये।

ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। इति मनसा।

ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदं इन्द्राय न मम। इति आघारसंज्ञकौ।

ॐ अग्नये स्वाहा। इदं अग्नये न मम।

ॐ सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय न मम। इति आज्यसंज्ञकौ।

तदनन्तर राहु के हवनार्थ दधि, मधु, घृताक्त शाकल्य एवं दूर्वा की समिधा लेकर 108 बार हवन करें-

ॐ रां राहवे स्वाहा। इदं राहवे न मम।

होम के अनन्तर दिक्पाल, क्षेत्रपालादि को बलिदान देकर पूर्णाहुति प्रदान करना चाहिये। इसके अनन्तर गुगुल, हिंगुल, हरताल, मनः शील,

गंध व पुष्प इत्यादि जल से भरे हुये लौह के घड़े में रखकर पूर्ववद् अभिषेक करना चाहिये। उसके बाद योग्य को राहु की प्रतिमा का दान कर देना चाहिये।

संकल्प- इमां राहु प्रतिमां सोपस्करां तुभ्यमहं सम्प्रददे।। ततो प्रार्थना करनी चाहिये।

ॐ अर्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्य विमद्रनम्।

सिंहिका गर्भ संभूतं तं राहुं प्रणमाम्यहम्।।

तदनन्तर गोमेद,नीलवस्त्र, कंबल, तैल, तिल, अष्व, लौह इत्यादि का राहु की प्रसन्न्ता हेतु दान देना चाहिये। ब्राह्मणादि को भोजन कराकर कर्म पूर्त्ति को भगवान विष्णु को समर्पित करना चाहिये।

एवं कृते महा सौम्य राहु तुष्टिकरो भवेत् ।।

इसी प्रकार केतु की भी शान्ति की जाती है। विशेष इस प्रकार हैं - केतु के लिये हवनार्थ कुशा का प्रयोग किया जाता है। हवनार्थ प्रधान मन्त्र-

ॐ कें केतवे स्वाहा। इदं केतवे न मम ।

प्रार्थनामन्त्र-

पालाश धूम्र संकाशं तारका ग्रह मस्तकं ।

रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम् ।।

अभिषेकार्थ- वाराह विहित पर्वताग्र मृद, बकरी का दुग्ध तथा खड्ग का विशेष प्रयोग होता है।

दानार्थ- बैल, तैल, तिल, कम्बल, कस्तूरी, छाग, काला वस्त्र इत्यादि दिया जाता है।

राहु की शान्ति हेतु गोमेद नामक रत्न धारण करने का विधान मिलता है। शनिवार को चांदी या अष्टधातु की अंगूठी में गोमेद को जड़वाकर विधिवत उपासना करके राहु के मूल मन्त्र का 18000 जप करके दाहिने हाथ की मध्यमा अंगुलि में धारण करना चाहिये। गोमेद का वनज छ रत्ती से कम नही होना चाहिये। केतु की शान्ति के लिये लहसुनिया रत्न धारण करना चाहिये। शनिवार को चांदी

की अंगूठी में लहसुनिया जड़वाकर विधिपूर्वक उपासना करनी चाहिये। इसमें केतु के मूल मन्त्र का 7000जप करना चाहिये। लहसुनिया तीन रत्ती से कम नही होना चाहिये। इसको अर्धरात्रि के समय मध्यमा या कनिष्ठा उंगली में धारण करना चाहिये।

इस प्रकार आपने यह देखा कि राहु एवं ग्रह की शान्ति कैसे की जायेगी। राहु एवं केतु शान्ति हेतु रत्नो के धारण के सन्दर्भ में भी आप जान गये होगें। अतः आप राहु एवं केतु ग्रह की शान्ति करा सकते है।

अब हम संबंधित विषय को आधार बनाकर कुछ अभ्यास प्रश्न बनायेगें जिसका उत्तर आपको देना होगा। अभ्यास प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- राहु एवं केतु ग्रह शान्ति हेतु किस वार का व्रत किया जाता है?

क- शनि, ख- सोम, ग- रवि, घ- भौम।

प्रश्न 2- राहु एवं केतु ग्रह हेतु किस वर्ण का पुष्प देना चाहिये?

क- सफेद, ख- रक्त, ग- पीत, घ- कृष्ण।

प्रश्न 3-राहु शान्ति हेतु किसका कलश स्थापित करना चाहिये?

क- स्वर्ण का, ख- रजत का, ग- लोहे का, घ- कांस्य का।

प्रश्न 4- राहु शान्ति हेतु पूर्णपात्र किसका होना चाहिये?

क- स्वर्ण का, ख- लोहे का, ग- ताम्र का, घ- कांस्य का।

प्रश्न 5- राहु की प्रतिमा किसकी बनाई जाती है?

क- स्वर्ण की, ख- रजत की, ग- लोहे की, घ- कांस्य की।

प्रश्न 6- राहु शान्ति हेतु किस समिधा का हवन किया जाता है?

क- अर्क, ख- पलाश, ग-,खदिर, घ- दूर्वा।

प्रश्न 7- केतु शान्ति हेतु समिधा क्या है?

क- कुशा, ख- दूर्वा, ग- खदिर, घ- अर्क।

प्रश्न 8- केतु शान्ति हेतु रत्न क्या है?

क- गोमेद, ख- लहसुनिया, ग- पुखराज, घ- नीलम।

प्रश्न 9- राहु का रत्न क्या है ?

क- माणिक्य, ख- मोती, ग- गोमेद, घ- पन्ना।

प्रश्न 10- गोमेद को किस अंगुलि में धारण करना चाहिये ?

क- तर्जनी, ख- मध्यमा, ग- अनामिका, ग- कनिष्ठा।

इस प्रकरण में आपने राहु एवं केतु ग्रह की शान्ति प्रविधि के बारे में जाना। आशा है अब आप राहु एवं ग्रह की शान्ति करा सकेगें।

2.5 सारांश

इस ईकाई में आपने नवग्रहों के शान्ति का विधान जाना है। वस्तुतः ग्रहों की संख्या नौ बतलाई गई है जिन्हे सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु ण्वं केतु बतलाया गया है। इन ग्रहों का मानव जीवन पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता ही है। लेकिन ज बवह प्रभाव अनुकूल न होकर प्रतिकूल पड़ने लगता है तो बड़े - बड़े धैर्यवान जन व्याकुल हो जाते है। उनके इस व्याकुलता का शमन करने केलिये और उनके धैर्य को बढ़ाने के लिये पौरोहित्य जिसे कर्मकाण्ड कहा जाता है उसमें नवग्रह शान्ति का विधान किया गया है। इसके अन्तर्गत सूर्य शान्ति हेतु सूर्यवार व्रत, रक्त पुष्प का सूर्य भगवान को प्रदान करना, सूर्य के मूल मन्त्र का जप, सूर्य समिधा अर्क का हवन एवं सूर्य के रत्न के धारण का विधान किया गया है। चन्द्र शान्ति हेतु सोमवार व्रत, सफेद पुष्प का चन्द्रमा को प्रदान करना, चन्द्र के मूल मन्त्र का जप, चन्द्र समिधा पलाश का हवन एवं चन्द्र के रत्न के धारण का विधान किया गया है। भौम शान्ति हेतु भौमवार व्रत, रक्त पुष्प का मंगल यन्त्र या हनुमान जी को प्रदान करना, भौम के मूल मन्त्र का जप, भौम समिधा खदिर का हवन एवं भौम के रत्न के धारण का विधान किया गया है। बुध शान्ति हेतु बुधवार व्रत, रक्त पुष्प का गणेश भगवान को प्रदान करना, बुध के मूल मन्त्र का जप, बुध समिधा अपामार्ग का हवन एवं बुध के रत्न के धारण का विधान किया गया है। बृहस्पति शान्ति हेतु बृहस्पतिवार व्रत, पीत पुष्प का विष्णु भगवान को प्रदान करना, बृहस्पति के मूल मन्त्र का जप, बृहस्पति समिधा पीपल का हवन एवं बृहस्पति के रत्न के धारण का विधान किया गया है। शुक्र शान्ति हेतु शुक्रवार व्रत, सफेद पुष्प का देवी मां को प्रदान करना, शुक्र के मूल मन्त्र का जप, शुक्र समिधा अर्क का हवन एवं शुक्र के रत्न के धारण का विधान किया गया है। शनि राहु एवं केतु शान्ति हेतु शनिवार व्रत, कृष्ण पुष्प का शनि, राहु एवं केतु को प्रदान करना, शनि, राहु एवं केतु के मूल मन्त्र का जप, शनि, राहु एवं केतु समिधा शमी, दुर्वा एवं कुशा का हवन एवं शनि, राहु एवं केतु के रत्न के धारण का विधान किया गया है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली -

सम्भार- सामग्री, रजत- चांदी, कांस्य- कांसा, पायस- खीर, अर्क- मदार, पलाश- पलाश, खदिर- खैर, अपामार्ग- चिचिड़ी, उदुम्बर- गूगल, कृसर- खिचड़ी, छाग- बकरी, खड्ग- तलवार, मृद- मिट्टी, महिषी- भैंस, लौह- लोहा, मुक्ताफल- मोती, विद्रुम- मूंगा, गारुत्मक- पन्ना, पुष्पक- पुखराज, वज्र- हीरा, कुलित्थ- कुलथी, रक्त- लाल, पीत- पीला, कृष्ण- काला, वर्ण- रंग, आमलक- आंवला, माष- उड़द, तंडुल- चावल।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

पूर्व में दिये गये सभी अभ्यास प्रश्नों के उत्तर यहां दिये जा रहे हैं। आप अपने से उन प्रश्नों को हल कर लिये होगें। अब आप इस उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कर लीजिये। यदि गलत हो तो उसको सही करके पुनः तैयार कर लीजिये। इससे आप इस प्रकार के समस्त प्रश्नों का उत्तर सही तरीके से दे पायेगें।

1.3.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-घ, 2-क, 3-ख, 4-ग, 5-ग, 6-ख, 7-क, 8-ख, 9- ग, 10- घ, 11-ग, 12-घ।

1.3.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ग, 3-ख, 4-ग, 5-ख, 6-ग, 7-घ, 8-क, 9- ग, 10- घ।

1.4.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-ग, 5-क, 6-क, 7-ख, 8-ग, 9-क, 10-क।

1.4.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-क, 3-ख, 4-ख, 5-ख, 6-ख, 7-ख, 8-घ, 9- ख, 10- घ, ।

1.4.3 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-ग, 2-ख, 3-ग, 4-ग, 5-क, 6-ग, 7-ख, 8-ग, 9- ग, 10- ग।

1.4.4 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-घ, 2-ख, 3-घ, 4-घ, 5-क, 6-घ, 7-घ, 8-घ, 9- घ, 10- घ।

1.4.5 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-घ, 2-ग, 3-ग, 4-क, 5-क, 6-घ, 7-क, 8-क, 9- ख, 10-क।

1.4.6 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-ख, 2-क, 3-ख, 4-ख, 5-ख, 6-क, 7-क, 8-घ, 9- ख, 10-ख।

1.4.7 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-ख, 2-घ, 3-घ, 4-ग, 5-ग, 6-ख, 7-क, 8-क, 9-ख, 10-ख।

1.4.8 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-घ, 3-ग, 4-ख, 5-ग, 6-घ, 7-क, 8-ख, 9-ग, 10-ख।

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1-मूल शान्तिः।

2-शान्ति- प्रकाशः।

3-कर्मकाण्ड- प्रदीपः।

4-शान्ति- विधानम्।

5-संस्कार एवं शान्ति का रहस्य।

6-यजुर्वेद- संहिता।

7- ग्रह- शान्तिः।

8- फलदीपिका

2.9- सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री-

1- मुहूर्त्त चिन्तामणिः।

2- श्री काशी विश्वनाथ पंचांग।

3- पूजन विधानम्।

4- रत्न एवं रुद्राक्ष का धारण

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न-

1- नवग्रहों का परिचय दीजिये।

2- नवग्रहों का मानव जीवन से संबंध स्थापित कीजिये।

3- सूर्य ग्रह शान्ति के बारे में आप क्या जानते है? वर्णन कीजिये।

4- चन्द्रमा ग्रह शान्ति विधि का विधान वर्णित कीजिये।

5- मंगल ग्रह शान्ति विधि का वर्णन कीजिये।

6- बुध ग्रह शान्ति सविधि लिखिये।

7- बृहस्पति ग्रह शान्ति विधि का वर्णन कीजिये।

8 शुक्र ग्रह शान्ति की विधि का वर्णन कीजिये।

9-शनि शानित की विधि बतलाइये।

10- राहु एवं केतु शान्ति की विधि वर्णित करें।

इकाई – 3 यमल जनन एवं ज्वरादि रोगोत्पत्ति शान्ति

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3.1 यमल जनन का परिचय
3.3.2 ज्वरादि रोगोत्तपत्ति का विचार
3.3.3 यमल जनन शान्ति एवं ज्वरादि रोगोत्पत्ति शान्ति
3.4.1 यमल जनन शान्ति का विधान
3.3.2 यमल जनन शान्ति एवं ज्वरादि रोगोत्पत्ति शान्ति
3.4.3 यमल जनन शान्ति का विधान-
3.5 सारांशः
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 बोधप्रश्नों के उत्तर
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न
3.10 निबन्धात्मक प्रश्नों के उत्तर

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई में यमल जनन एवं ज्वरादि रोगोत्पत्ति संबंधी शान्ति प्रविधि का अध्ययन का आप अध्ययन करने जा रहे हैं। इससे पूर्व की शान्ति प्रविधियों का अध्ययन आपने कर लिया होगा। कोई भी जातक यदि यमल जनन या ज्वरादि रोगोत्पत्ति से परेशान है तो उसकी शान्ति आप कैसे करेगें, इसका ज्ञान आपको इस इकाई के अध्ययन से हो जायेगा।

किसी भी जातक का जन्म जब होता है तो उसके तत्क्षण बाद किसी अन्य जातक या जातिका का जन्म यमल जनन कहलाता है। लोक में इसे जुड़वा बच्चा के रूप में जाना जाता है। शास्त्रों यह निर्देश है कि एक ही नक्षत्र में या एक समय पर जन्म होने पर वे दोनों बच्चे अपना अभ्युदय नही कर पाते । इसका मूल कारण यमल जनन का दोष है।या किसी नक्षत्र विशेष में ज्वरोत्पत्ति होने पर उसका प्रकोप कितना रहेगा तथा उसका उपचार क्या हो सकेगा इसको जानना आवश्यक है। क्योंकि इसके कारण जातक का जीवन संकटापन्न होता है। जातक के परिवार का सीधा-सीधा संबंध होने के कारण इनसे संबंधित लोगों का भी जीवन प्रभावित होता है। इसलिये शान्ति कराने की आवश्यकता होती है। इसी शान्ति प्रविधि को यमल जनन एवं ज्वरादि रोगोत्पत्ति शान्ति के नाम से जाना जाता है।

इस इकाई के अध्ययन से आप यमल जनन एवं ज्वरादि रोगोत्पत्ति संबंधी शान्ति करने की विधि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। इससे संबंधित व्यक्ति का यमल जनन एवं ज्वरादि रोगोत्पत्ति संबंधी दोषों से निवारण हो सकेगा जिससे वह अपने कार्य क्षमता का भरपूर उपयोग कर समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगा। आपके तत्संबंधी ज्ञान के कारण ऋषियों महर्षियों का यह ज्ञान संरक्षित एवं संवर्धित हो सकेगा । इसके अलावा आप अन्य योगदान दें सकेगें, जैसे - कल्पसूत्रीय विधि के अनुपालन का सार्थक प्रयास करना, समाज कल्याण की भावना का पूर्णतया ध्यान देना, इस विषय को वर्तमान समस्याओं के समाधान सहित वर्णन करने का प्रयास करना एवं वृहद् एवं संक्षिप्त दोनों विधियों के प्रस्तुतिकरण का प्रयास करना आदि, इस शान्ति के नाम पर ठगी, भ्रष्टाचार, मिथ्या भ्रमादि का निवारण हो सकेगा।

3.2 उद्देश्य-

उपर्युक्त अध्ययन से आप शान्ति की आवश्यकता को समझ रहे होगें। इसका उद्देश्य भी इस प्रकार आप जान सकते है

3.2.1 यमल जनन एवं ज्वरादि रोगोत्पत्ति संबंधी शान्ति के कर्मकाण्ड को लोकोपकारक बनाना।

3.2.2 यमल जनन एवं ज्वरादि रोगोत्पत्ति शान्ति की शास्त्रीय विधि का प्रतिपादन।

3.2.3 इस कर्मकाण्ड में व्याप्त अन्धविश्वास एवं भ्रान्तियों को दूर करना।

3.2.4 प्राच्य विद्या की रक्षा करना।

3.2.5 लोगों के कार्यक्षमता का विकास करना।

3.2.6 समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना।

3.3 यमल जनन एवं ज्वरादि रोगोत्पत्ति शान्ति

3.3.1 यमल जनन का परिचय

यह सर्व विदित है कि जब जुड़वा बच्च पैदा होता है तो उसकी शान्ति करानी पड़ती है। लेकिन पहले यह शान्ति है क्या? इसका परिचय आप इस प्रकरण के अध्ययन से प्राप्त कर सकेगें। यमल का अर्थ युगल तथा जनन का अर्थ प्रजनन है। जुड़वा बच्चों के जन्म लेने पर जो शान्ति करानी चाहिये उसे यमल जनन शान्ति कहते है। शास्त्रों में तो लिखा गया है कि केवल मनुष्य ही नहीं अपितु पशुओं को भी यदि जुड़वे बच्चे की प्राप्ति हो तो उसके स्वामी को अवश्य यमल जनन शान्ति कराना चाहिये। शान्ति प्रकाश नामक ग्रन्थ में लिखा गया है कि ग्रहों के उत्पात में, उलूक, गृध, कपोत व बाज पक्षी के गृह में प्रवेश करने पर या गृह के खम्भों पर बैठने पर, बल्मीक (चीटियों के घर बना लेने पर), मधुमक्खियों के जाला लगाने पर, घड़े के अकारण रिसने पर, आसन व शयन के जल जाने पर, गृह में आग लग जाने पर, यान के भंग हो जाने पर, गृहकपोतिका व कृकलाश के सरकने पर, छत्र एवं ध्वज के भंग हो जाने पर, उत्पात के समय, भूकम्प होने पर, उल्कापात होने पर, काक एवं सर्प का संगम देखने पर, दासी, महिषी, बडवा, गौ, हस्तिनी को भी यमल जनन होने पर यमल जनन शान्ति कराना चाहिये। उक्त सन्दर्भों से यह पता चलता है कि यमल (जोड़ा) जनन शान्ति का प्रयोग व्यक्ति के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस यमल जनन शान्ति का प्रतिपादन महर्षि कात्यायन ने किया है इसलिये इसको कात्यायनोक्त यमल जनन शान्ति के नाम से भी जाना जाता है। अतः इसका सम्पादन करना उचित है।

इसी सन्दर्भ से जुड़ी हुई एक बात और देखने को मिलती है कि -

एकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोः।
प्रसूतिश्चेत्तयोर्मृत्यु भवेदेकस्य निश्चयात्॥
तत्र शान्ति प्रकर्त्तव्या सर्वाचार्यमतेन तु।

इस वचन के अनुसार एक ही नक्षत्र में यदि भाई, पिता एवं पुत्र का जन्म हो तो उसमें से एक की मृत्यु निश्चित है। यह प्रतीत होता है कि यमल जनन में भी प्रायः एक नक्षत्र जनन वाली घटना घटती है। लेकिन सबमें नही, क्योंकि हो सकता है यमल जनन हो लेकिन दोनों के दो नक्षत्र हों। यमल जनन शान्ति से दोनो शिशुओं की रक्षा की जाती है।

इस प्रकरण में आपनें यमल जनन क्या है ? इसके बारे में जाना । इसकी जानकारी से आप यमल जनन से हो रही हानि तथा उसकी शान्ति की आवश्यकता को बता सकते है। अब हम संबंधित विषय को आधार बनाकर कुछ अभ्यास प्रश्न बनायेगें जिसका उत्तर आपको देना होगा। अभ्यास प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1-यमल का अर्थ क्या है?

क-युगल, ख- त्रिगल, ग- चतुर्गल, घ- पंचगल।

प्रश्न 2- जनन का अर्थ क्या है?

क- अवनेजन, ख- प्रजनन, ग- नियोजन, घ- वियोजन।

प्रश्न 3- ग्रहों के उत्पात मे कौन शान्ति करना चाहिये?

क- मूल शान्ति, ख- दन्त जनन शान्ति, ग-यमल जनन शान्ति, घ-एक नक्षत्र जनन शान्ति।

प्रश्न 4- उलूक व बाज पक्षी के गृह में प्रवेश करने पर कौन शान्ति करना चाहिये?

क- मूल शान्ति, ख- दन्त जनन शान्ति, ग-यमल जनन शान्ति, घ-एक नक्षत्र जनन शान्ति।

प्रश्न 5- बल्मीक यानी चीटियों के घर बना लेने पर कौन शान्ति करना चाहिये?

क- मूल शान्ति, ख- दन्त जनन शान्ति, ग-यमल जनन शान्ति, घ-एक नक्षत्र जनन शान्ति।

प्रश्न 6- मधुमक्खियों के जाला लगाने पर कौन शान्ति करना चाहिये?

क- मूल शान्ति, ख- दन्त जनन शान्ति, ग-यमल जनन शान्ति, घ-एक नक्षत्र जनन शान्ति।

प्रश्न 7- गृह में आग लग जाने पर कौन शान्ति करना चाहिये?

क- मूल शान्ति, ख- दन्त जनन शान्ति, ग-यमल जनन शान्ति, घ-एक नक्षत्र जनन शान्ति।

प्रश्न 8- भूकम्प होने पर कौन शान्ति करना चाहिये?

क- मूल शान्ति, ख- दन्त जनन शान्ति, ग-यमल जनन शान्ति, घ-एक नक्षत्र जनन शान्ति

प्रश्न 9- यमल जनन का प्रतिपादन किसने किया था?

क- वसिष्ठ ने, ख- कात्यायन ने, ग- पुलसत्य ने, घ- गौतम ने।

प्रश्न 10- यमल जनन से रक्षा होती है-

क- नवजातों की, ख- गर्भस्थों की, ग- जन्म लेने वालों की, घ- माता पिता की।

अतः इस प्रकरण में आपने यमल जनन शान्ति के बारे के परिचय के बारे में जाना। अब हम अग्रिम प्रकरण में ज्वरादि रोगोत्पत्ति पर विचार करेगें।

3.3.2 ज्वरादि रोगोत्पत्ति का विचार -

इससे पूर्व बताए गये समस्त बातों को आपने आत्मसात् कर लिया होगा। अब हम इस प्रकरण में ज्वरादि जिसे लोक में बुखार के नाम से जाना जाता है के बारे में आपको ज्ञान प्रदान करना चाहते है। इसका साधारण नियम यह है कि जिस दिन ज्वर प्रारम्भ हो उस दिन पंचांग से यह देख लीजिये कि कौल सी नक्षत्र है? जोभी नक्षत्र होगी उसका नाम नीचे लिखे गये नक्षत्रों से मिलाइये। कोई न कोई नक्षत्र अवश्य मिल जायेगी। अब उस नक्षत्र के आगे का वर्णन पढ़िये। आपको पता चल जायेगा कि यह बुखार कितने दिन तक रहेगा। उसके बाद यदि शान्ति कराने की आवश्यकता समझ में आयेगी तो दिये गये विधान के अनुसार आप शान्ति करा सकते है। यहां इसी सन्दर्भ में विचार किया जा सकता है। इसके विचार से विमारी की गम्भीरता का विचार आप लगा सकते है जो इस प्रकार है।

अश्विन्यां रोगोत्पत्तावेकाह नवदिनानि वा पंचविंशतिदिनानि वा। भरण्यामेकादशैकविंशतिर्वा मासमृत्युर्वा।। कृत्तिकायां दशनवैकविंशतिर्वा। रोहिण्यां दश वा नव सप्त त्रीणिवाऽहनि। मृगे पंच नव वा त्रिंषद्वा। आर्द्रायां मृत्युर्वा दशाहं मासं वा। पुनर्वसौ सप्त नव वामृत्युर्वा। पुष्ये सप्त वा मृत्युः। आश्लेषायां मृत्युर्वा विंशतिस्त्रिंशद्वा नव दिनानि वा पीडा। मघायां मृत्युर्वासार्द्धमासान्वामासं विंशति दिनानि वा पीडा। पूर्वाफाल्गुन्यां मृत्युर्वाऽब्दं मासं वा पंचदश वा षष्टि दिनानि पीडा। उत्तराफाल्गुन्यां सप्तविंशतिः पंचदश सप्त वा दिनानि। हस्ते मृत्युरष्टं वा सप्त पंचदश दिनानि वा। चित्रायां पक्षमष्ट वा दश वैकादशे हानि। स्वात्यां मृत्युर्वैकद्वित्रिचतुः पंचमासै र्वा दशदिनै रोग नाशः। विशाखायां मासं वा पक्षं वा अष्टदिनं विंशतिदिनानि वा पीडा। अनुराधायां दशरात्रं अष्टाविंशतिरात्रं वै ज्येष्ठायां मृत्युर्वा पक्षं वा मासं वैकविंशतिरात्रं वा पीडा। मूले मृत्युः पक्षं नवरात्रं विंशतिरात्रं वा पीडा। पूर्वाषाढायां मृत्युर्वा द्वित्रिषडादिमासै विंषतिदिनैः पक्षेण वा रोगनाशः। उत्तराषाढायां सार्द्धमासं विंशतिरात्रं वा मासम्। श्रवणे पंचविंशतिर्दशवैकादश वा षष्टिर्वा हानि। धनिष्ठायां दशरात्रं पक्षं मासं वा त्र्योदशरात्रम्। शततारकायां द्वादशाष्टैकादश वा। पूर्वाभाद्रपदायां मृत्युर्वा द्वित्र्यादिमासं वा दशरात्रम्। उत्तराभाद्रपदायां सार्द्धमासं पक्षं सप्ताहं दशाहं वा। रेवत्यां ज्वराद्युत्पतौ दशाहमष्टाविंशति रात्रं वा पीडा। जन्म नक्षत्रे जन्मराशौ वाऽष्टमचन्द्रे मृत्युयोगे च रोगोत्पतौ मृत्युः। येषु नक्षत्रेषु मरणमुक्तं तत्र शान्तिरावश्यकी।

उपरोक्त प्रकरण में यह स्पष्ट किया गया है कि किस नक्षत्र में ज्वरादि रोगों की उत्पत्ति होने पर उससे संबंधित व्यक्ति कितने दिन तक प्रभावित रह सकता है। जैसे- अश्विनी नक्षत्र में यदि किसी को रोग की प्राप्ति हो जाय तो वह रोग एक दिन, नौ दिन या पचीस दिन तक व्यक्ति को प्रभावी रखेगा। भरणी

नक्षत्र में ग्यारह, इक्कीस, तीस दिन या मृत्यु पर्यन्त ज्वरादि रोगों का प्रभाव रहता है। कृत्तिका नक्षत्र में दश, नौ या इक्कीस दिन तक एवं रोहिणी में दश, नव, तीन या सात दिन तक प्रभाव रहता है। मृगशिरा में पाँच, नव या तीस, आर्द्रा में दश, एक मास अथवा मृत्यु पर्यन्त तक, पुनर्वसु में सात, नव या मृत्यु पर्यन्त, पुष्य में सात दिन या मृत्यु पर्यन्त तक, आश्लेषा में बीस, तीस, नव दिन या मृत्यु तक, मघा में पैंतालीस, तीस, बीस अथवा मृत्यु तक कष्ट के योग बनते है। पूर्वाफाल्गुनि में पन्द्रह, तीस, साठ, एक वर्ष या मृत्यु पर्यन्त, उत्तराफाल्गुनि में सात, पन्द्रह या सत्ताईस दिन तक, हस्त में आठ, सात, पन्द्रह दिन अथवा मृत्यु तक, चित्रा में आठ, दश, ग्यारह, पन्द्रह दिन तक, स्वाती में दश दिन, एक- दो- तीन-चार या पाँच महीनों में अथवा मृत्यु तक, विशाखा में आठ, पन्द्रह, बीस, तीस दिनों तक, अनुराधा में दश अथवा बाईस रात तक, ज्येष्ठा में पन्द्रह, इक्कीस, तीस दिनों तक या मृत्यु तक, मूल में नव, पन्द्रह, बीस दिनों तक या मृत्यु पर्यन्त, पूर्वाषाढ़ा में पन्द्रह, बीस दिनों तक या दो, तीन अथवा छः महीनों तक, उत्तराषाढ़ा में बीस, तीस अथवा पैंतालिस दिनों तक, श्रवण में दश, ग्यारह, पचीस अथवा साठ दिनों तक, धनिष्ठा में दश, तेरह, पन्द्रह अथवा तीस दिनों तक, शतभिषा में आठ, दश अथवा ग्यारह दिनों तक, पूर्वाभाद्रपद में दश दिनों तक या दो तीन महीनों तक या मृत्यु तक, उत्तराभाद्रपद में सात, दश, पन्द्रह अथवा पैंतालीस दिनों तक तथा रेवती में दश अथवा बाईस दिनों तक कष्ट रहता है। इसके अलावा जन्म नक्षत्र, जन्मराशि अथवा अष्टम चन्द्रमा एवं मृत्यु योग में ज्वरादि रोगों की उत्पत्ति होने पर मृत्यु तक कष्ट रहता है। इसलिये शान्ति अवश्य करनी चाहिये।

इसको और भी सुगम विधि से इस प्रकार समझा जा सकता है-

अश्विनी - 1, 9, 25 दिनों तक।

भरणी - 11, 20, 30 दिनों तक या मरणान्त तक।

कृत्तिका - 9, 10, 21 दिनों तक।

रोहिणी - 9, 10, 7, 3 दिनों तक।

मृगशिरा - 5, 9, 30 दिनों तक।

आर्द्रा - 10, 30 दिनों तक या मरणान्त तक।

पुनर्वसु - 7, 9 या मरणान्त तक।

पुष्य - 7 या मरणान्त तक।

आश्लेषा - 9, 20, 30दिनों तक या मरणान्त तक।

मघा - 20, 30, 45 दिनों तक या मरणान्त तक।

पूर्वाफाल्गुनी- 15, 30, 60 दिनों तक या एक वर्ष तक या मरणान्त तक।

उत्तराफाल्गुनी - 7, 15, 27 दिनों तक।

हस्त - 7, 8, 15 दिनों तक या अन्त तक।

चित्रा - 8, 10, 11, 15 दिनों तक।

स्वाति - 1,2,3,4,5, महीनों या अन्त तक।

विशाखा - 8, 15, 20या 30 दिनों तक।

अनुराधा - 10, 18 दिनों तक।

ज्येष्ठा - 15, 21 या 30दिनों तक या अन्त तक।

मूल - 9, 15, 20 दिनों तक या अन्त तक।

पूर्वाषाढ़ा- 20, 15 दिनों तक या 2, 3, 6 महीनों तक या अन्त तक।

उत्तराषाढ़ा - 20, 30, 45 दिनों तक।

श्रवण - 10, 11, 25 या 60 दिनों तक।

धनिष्ठा - 10, 13, 15 या 30 दिनों तक।

शतभिषा- 8, 11 या 12 दिनों तक।

पूर्वाभाद्रपद - 10 दिन या 2, 3 महीनों तक या अन्त तक।

उत्तराभाद्रपद- 7, 10, 15, 45 दिनों तक।

रेवती - 10 या 28 दिनों तक।

इस प्रकरण में आपनें ज्वरादि रोगोत्पत्ति का क्या है ? इसके बारे में जाना। इसकी जानकारी से आप ज्वरादि रोगोत्पत्ति से हो रही हानि तथा उसकी शान्ति की आवश्यकता को बता सकते है। अब हम संबंधित विषय को आधार बनाकर कुछ अभ्यास प्रश्न बनायेगें जिसका उत्तर आपको देना होगा। अभ्यास प्रश्न अधोलिखित है -

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1-अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर निम्नलिखित में कितने दिनों तक रह सकता है?

क-एक दिन, ख- पांच दिन, ग- दश दिन, घ- बीस दिन।

प्रश्न 2-भरणी नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर निम्नलिखित में कितने दिनों तक रह सकता है?

क-एक दिन, ख- पांच दिन, ग- दश दिन, घ- बीस दिन।

प्रश्न 3- कृत्तिका नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर निम्नलिखित में कितने दिनों तक रह सकता है?

क-एक दिन, ख- पांच दिन, ग- दश दिन, घ- बीस दिन।

प्रश्न 4- रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर निम्नलिखित में कितने दिनों तक रह सकता है?

क-एक दिन, ख- पांच दिन, ग- दश दिन, घ- बीस दिन।

प्रश्न 5--मृगशिरा नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर निम्नलिखित में कितने दिनों तक रह सकता है?

क-एक दिन, ख- पांच दिन, ग- दश दिन, घ- बीस दिन।

प्रश्न 6-आर्द्रा नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर निम्नलिखित में कितने दिनों तक रह सकता है?

क-एक दिन, ख- पांच दिन, ग- दश दिन, घ- बीस दिन।

प्रश्न 7-आश्लेषा नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर निम्नलिखित में कितने दिनों तक रह सकता है?

क-एक दिन, ख- पांच दिन, ग- दश दिन, घ- बीस दिन।

प्रश्न 8-मघा नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर निम्नलिखित में कितने दिनों तक रह सकता है?

क-एक दिन, ख- पांच दिन, ग- दश दिन, घ- बीस दिन।

प्रश्न 9-चित्रा नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर निम्नलिखित में कितने दिनों तक रह सकता है?ेेे

क-एक दिन, ख- पांच दिन, ग- दश दिन, घ- बीस दिन।

प्रश्न 10-रेवती नक्षत्र में उत्पन्न ज्वर निम्नलिखित में कितने दिनों तक रह सकता है?

क-एक दिन, ख- पांच दिन, ग- दश दिन, घ- बीस दिन।

इस प्रकार उपरोक्त प्रकरणों में आपने यमल जनन का परिचय एवं ज्वरादि रोगोत्पत्ति विचार के बारे में जाना। अब आपको इन दोनों की शान्तियां कैसे की जायेगी यह जानने की इच्छा कर रही होगी। इसलिये हम अब इनके शान्ति प्रविधियों की चर्चा अग्रिम प्रकरण में करने जा रहे है।

3.3.3 यमल जनन शान्ति एवं ज्वरादि रोगोत्पत्ति शान्ति

3.4.1 यमल जनन शान्ति का विधान-

सर्व प्रथम शान्ति हेतु उपयुक्त स्थान का चायन किया जाता है जहां निर्विघ्नतापूर्वक शान्ति करायी जा सके। तदनन्तर शान्ति कर्म में प्रयुक्त होने वाली समस्त सामग्रियों को एकत्रित किया जाता है। कुछ सामग्रियों का चयन उसी दिन किया जाता है जैसे दूध, फूलमाला, दूर्वा इत्यादि। क्योकि ये वस्तुयें पूर्व में संग्रहीत करने पर खराब हो सकती है। इसलिये उसी दिन चयन करने का विधान है। शान्ति कर्म प्रारम्भ करने के एक दिन पूर्व सायंकाल अपने मन में यह दृढ़ निश्चय करना चाहिये कि कल मै यह शान्ति इस कामना के लिये करूंगा। उसके बाद उस दिन सात्विक आहारादि का ग्रहण कर नियमस्थ हो जाना चाहिये।

शान्ति वाले दिन उपयुक्त सामग्रियों के साथ सुनिश्चित स्थान पर पहुच कर आसन इत्यादि बिछा कर गणेशाम्बिका, कलश, षोडशमातृका, सप्तघृतमातृका इत्यादि के लिये सज्जता करनी चाहिये। तदनन्तर यमल जनन शान्ति करना चाहिये। पूर्वोक्त रीति से आचमनादि प्रक्रियाओं का सम्पादन करते हुये स्वस्ति मन्त्रों का पाठ कर संकल्प का आचरण करना चाहिये।

संकल्पः- ॐ श्री विष्णुर्विष्णर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्त्तमानस्य अद्य श्री ब्रह्मणोन्हि द्वितीये परार्द्धे विष्णुपदे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवश्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे युगे कलियुगे कलिप्रथम चरणे जम्बूद्वीपे भूर्लोके भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे अमुकक्षेत्रे अमुकसंवत्सरे अमुकायने अमुकऋतौ महामांगल्यप्रदमासोत्तमे मासे अमुकमासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक नक्षत्रे अमुक योगे अमुक करणे अमुकराशि स्थिते श्रीचन्द्रे अमुक राशिस्थिते श्री सूर्ये अमुक राशिस्थिते देवगुरौ अमुक गोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा सपत्नीकोऽहं श्रुति स्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थं मम भार्यायाः यमलजननसूचित सर्वारिष्टनिरसनद्वारा शुभता सिद्धये सवोपद्रवशान्त्यर्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं सनवग्रहमखां कात्यायनोक्तां यमलजनन शान्तिं करिष्ये। तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं आयुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं आचार्यादिवरणानि च करिष्ये।

तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनमहं करिष्ये। एतानि कर्माणि शान्तिविधानानुसारेण कुर्यात्।

इसके बाद यज्ञीयकर्मक्षेत्र विघ्नादिकारक तत्वों से रहित हो जाय इसके लिये पीली सरसों को दाहिने हाथ में रखकर बाँये हाथ से ढककर दिग्रक्षण मन्त्रों का पाठ करे।

तत्र मन्त्रः- **यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्यसर्वदा। स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु।**

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमि संस्थिताः। ये भूता विघ्नकर्तारः ते नश्यन्तु शिवज्ञया।

अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम्। सर्वेषामविरोधेन शान्ति कर्म समारभे।

पूर्व आदि चारो दिशाओं में छींटकर शान्ति विधान या संबंधित पद्धितियों के अनुसार गणेशाम्बिका पूजन, कलश स्थापन, पुण्याहवाचन, षोडशमातृका पूजन, सप्तघृतमातृका पूजन, आयुष्यमन्त्र जप, नान्दीश्राद्ध, आचार्यवरण, नवग्रहादि स्थापन एवं पूजन करना चाहिये। तदनन्तर भूमौ प्रादेशं कृत्वा (यज्ञ भूमि के ऊपर दाहिने हाथ की तर्जनी एवं अगूंठे को फैलाते हुये वाचन करे) ॐ देवाः आयान्तु, यातुधानाः अपयान्तु, विष्णोदेवयजनं रक्षस्व। मन्त्र का पाठ करना चाहिये।

इसके अनन्तर एक स्थण्डिल या चौकी या पीढ़े पर आठों दिशाओं में आठ कलशों की स्थापना करें। इन समस्त कलशों का स्थापन कलश स्थापन विधि के अनुसार करना चाहिये। उन समस्त कलशों में

सर्वोषधि इत्यादि प्रक्षिप्त कर दम्पति का अभिषेक करना चाहिये। अभिषेकार्थ अग्रलिखित मन्त्रों का प्रयोग किया जा सकता है-

पौराणिक मन्त्राः-

सुरास्त्वामभिषिंचन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा संकर्षणोविभुः ।।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्चभवन्तु विजयाय ते।
आखण्डलोग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा।।
वरुणः पवनश्चैवधनाध्यक्षस्तथा शिवः।
ब्रह्मणासहिताः सर्वे दिक्पालाः पान्तु ते सदा।।
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधापुष्टिः श्रद्धाक्रियामतिः।
बुद्धिर्लज्जावपुः शान्तिः कान्तिश्तुष्टिश्च मातरः।
एतास्त्वामभिषिंचन्तु देवपत्न्यः समागता।
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः।।
ग्रहास्त्वामभिषिंचन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः।
देवदानव गन्धर्वा यक्षराक्षस पन्नगाः।।
ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च।
देवपत्न्यो द्रुमानागा दैत्याश्चाप्सरसांगणाः।।
अस्त्राणि सर्व शस्त्राणि राजानो वाहनानि च।
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये।।
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः।
एतेत्वामभिषिंचन्तु धर्मकामार्थ सिद्धये।।

अथवा इन वैदिक मन्त्रों का भी इस अवसर पर पाठ किया जा सकता है- ॐ आपोहिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयते ह नः। उशतीरिव मातरः। ॐ तस्माऽअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः। कया नश्चित्र आभुवदूती सदा वृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता।। कस्त्वा सत्यो मदानामंहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढाचिदारुजे वसु। स्तोकानामिन्दुप्रतिशूरऽ इंद्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट्। घृतप्रुषामनसा मादेमाना स्वाहा देवाऽ अमृतामादयन्ताम्।। आ यात्विन्द्रो व्वसऽ उपनडहस्तुतः सधमादस्तुशूरः। व्वावृधानस्तविशीर्यस्य पूर्वी द्यौर्नक्षत्रमभिभूति पुष्यात् ।। आ न इन्द्रो दूरादानऽ आसादभिष्टि

कृदवेयासदुग्रः ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्र बाहुः ॐ सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्युन् ॥ आनऽ इन्दो हरिभिर्यात्वच्छार्व्वाचीनोव्वसे राधसे च। तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमँयज्ञ मनुना व्वाजसातौ ॥ त्रातारमिन्द्र मवितारमिन्द्र गुं हवे हवे सुहव गुं शूरमिन्द्रमह्वययामि शुक्रम्पुरुहूत मिन्द्र गुं स्वस्ति नो मघवाधात्विन्द्रः॥ इमम्मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युराचके॥ तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्त दाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुष गुं समानमायुः प्रमोषीः। त्वन्नोऽ अग्ने व्वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽ अवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठोवह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषा गुं सि प्रमुमुग्ध्यस्मत्॥ सत्वन्नो । उदुत्तमं ॥ इदमापः प्रवहतावद्यंच मलंचयत्। यच्चाभिदुद्रोहा नृतं यच्च शेपे अभीरुणम् ॥ आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्चमुंचतु ॥ अपाघमपकिल्विष मपकृत्यामपोरपः। अपामार्गत्व मस्मदपदुःश्वप्न्य गुं सुव ॥

इस प्रकार से अभिषिक्त यजमान दम्पति वस्त्र एवं चन्दन से अलंकृत होकर बैठे। तदनन्तर पूर्व में दिये गये की भाँति यानी पंचभूसंस्कार करके अग्नि की स्थापना करनी चाहिये। ग्रहों की स्थापना करके पूजन करके कुशकण्डिका विधि का सम्पादन कर आज्यभागान्त आहुतियाँ प्रदान की जानी चाहिये। तद्यथा-

ॐ प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये न मम। इति मनसा

ॐ इन्द्राय स्वाहा। इदं इन्द्राय न मम। इति आघारसंज्ञकौ

ॐ अग्नये स्वाहा। इदं अग्नये न मम।

ॐ सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय न मम। इति आज्यसंज्ञकौ

उपरोक्त चारों आहुतियाँ केवल आज्य से की जाती है। उसके बाद यजमान हाथ में जल, अक्षत लेकर यह संकल्प करे- इमानि हवनीय द्रव्याणि या या यक्ष्यमाणदेवताः ताभ्यस्ताभ्यो मया परित्यक्तं न मम यथा दैवतमस्तु।

इसके अनन्तर वराहुति एवं ग्रहाहुति देनी चाहिये। प्रत्येक आहुति 8 या 28 अथवा 108 समिधा, तिल, चरु और घृत से तथा हवन सामग्री से करनी चाहिये। वराहुति से तात्पर्य गणेश एवं अम्बिका जी की आहुति से तथा ग्रहाहुति से तात्पर्य सूर्यादि नवग्रहों की आहुति से है। यथा -

ॐ गणपतये स्वाहा। ॐ अम्बिकायै स्वाहा। ॐ सूर्याय स्वाहा। इसके अनन्तर दिये गये स्नपन मन्त्रों से आज्याहुति देनी चाहिये। तदनन्तर अधोलिखित हवन करना चाहिये।

अग्नये स्वाहा इदं अग्नये न मम॥ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय न मम॥ पवमानाय स्वाहा इदं पावकाय न मम॥ मारुताय स्वाहा इदं मारुताय न मम॥ मरुतयः स्वाहा इदं मरुतयो न मम॥ यमाय स्वाहा इदं यमाय न मम॥ अन्तकाय स्वाहा इदं अन्तकाय न मम॥ मृत्यवे स्वाहा इदं मृत्यवे न मम॥ ब्रह्मणे

स्वाहा इदं ब्रह्मणे न मम।।

इसके अनन्तर एक चरु की आहुति से स्विष्टकृदाहुति प्रदान कर बलिदान देना चाहिये।

ततो बलिदानम्-पहले इन्द्र आदि दशदिक्पालों को बलिदान देना चाहिये- इन्द्रादिदश दिक्पालेभ्यो नमः। गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि।

हाथ में जल और अक्षत लेकर बोलें- इन्द्रदिदशदिक्पालेभ्यः सांगेभ्यः सपरिवारेभ्यः सायुधेभ्यः सशक्तिकेभ्यः एतान् सदीप दधि माषाक्षत बलीन् समर्पयामि। इति जलाक्षतान् त्यजेत्। ऐसा कहकर हाथ का जल एवं अक्षत त्याग दें।

हाथ में पुष्प लेकर प्रार्थना करें- भो भो इन्द्रादिदशदिक्पालाः सांगाः सपरिवाराः सायुधाः सशक्तिकाः मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य गृहे आयु कर्त्तारः क्षेमकर्त्तारः शान्तिकर्त्तारः पुष्टिकर्त्तारः तुष्टिकर्त्तारः वरदा भवत। हाथ का पुष्प समर्पित कर दें। हाथ में जल लेकर बोलें- अनेन बलिदानेन इन्द्रदिदशदिक्पालाः प्रीयन्ताम् ।

अब ग्रहों के बलिदान हेतु गन्धाक्षत पुष्प लेकर नवग्रहों का ध्यान करके उनके ऊपर चढ़ा देतें है। नवग्रहादिमण्डलस्थदेवताभ्योनमः। गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि।

हाथ में जल एवं अक्षत लेकर- ग्रहेभ्यः सांगेभ्यः सपरिवारेभ्यः सायुधेभ्यः सशक्तिकेभ्यः अधिदेवता प्रत्यधिदेवता गणपत्यादि पंचलोकपाल वास्तोष्पति सहितेभ्यः एतान् सदीप दधि माषाक्षत बलीन् समर्पयामि। इति जलाक्षतान् त्यजेत्। ऐसा कहकर हाथ का जल एवं अक्षत त्याग दें।

हाथ में पुष्प लेकर प्रार्थना करें- भो भो सूर्यादिग्रहाः सांगाः सपरिवाराः सायुधाः सशक्तिकाः अधिदेवता प्रत्यधिदेवता गणपत्यादि पंचलोकपाल वास्तोष्पति सहिताः मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य गृहे आयु कर्त्तारः क्षेमकर्त्तारः शान्तिकर्त्तारः पुष्टिकर्त्तारः तुष्टिकर्त्तारः वरदा भवत। हाथ का पुष्प समर्पित कर दें। हाथ में जल लेकर बोलें- अनेन बलिदानेन सूर्यादिग्रहाः प्रीयन्ताम्। जल छोड़ देना चाहिये ।

अब क्षेत्रपाल बलिदान में गंधाक्षतपुष्प लेकर क्षेत्रपाल का पूजन करे ।

ॐ क्षेत्रपालाय नमः। सकलपूजार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि ।

हाथ में पुष्प लेकर अग्रलिखित श्लोकों से क्षेत्रपाल की प्रार्थना हाथ जोड़कर करें ।

नमो वै क्षेत्रपालस्त्वं भूतप्रेतगणैः सह ।
पूजा बलिं गृहाणेमं सौम्यो भवतु सर्वदा ।।
पुत्रान् देहि धनं देहि देहि मे गृहजं सुखम् ।
आयुरारोग्य मे देहि निर्विघ्नं कुरु सर्वदा ।।

क्षेत्रपालाय नमः प्रार्थनार्थे पुष्पाणि समर्पयामि ।

हाथ में जल अक्षत लेकर- ॐ क्षेत्रपालाय सांगाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय मारीगणभैरव राक्षस कूष्माण्ड वेताल भूत प्रेत पिशाच शाकिनी डाकिनी पिशाचिनी गण सहिताय एतं सदीपमाषभक्तबलिं समर्पयामि।

प्रार्थयेत्- हाथ में पुष्प लेकर प्रार्थना करें- भो भो क्षेत्रपाल क्षेत्रं रक्षबलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य गृहे आयु कर्त्ता क्षेम कर्त्ता शान्तिकर्त्ता पुष्टिकर्त्ता तुष्टिकर्त्ता वरदो भव।

हाथ में जल लेकर- अनेन बलिदानेन क्षेत्रपालः प्रीयताम्। कहकर जल छोड़ दें। जल छीटकर पवित्र होकर आचमन करके पूर्णाहुति प्रदान करनी चाहिये।

नारियल में कलावा आवेष्टित कर 12 या 6 या 4 स्रुव घी स्रुची में डालकर उसें ऊपर नारिकेल स्थापित कर ॐ पूर्णाहुत्यै नमः मन्त्र से पूजन करके स्रुची को उठाकर पूर्णाहुति देनी चाहिये।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते स्वाहा।

इदमग्नये वैश्वानराय वसुरुüदित्येभ्यः शतक्रतवे सप्तवते अग्नये ऽ यश्च न मम।।

पूर्णाहुति देने के बाद वसोर्द्धारा हवन करने का विधान है। वसोः पवित्रमसि शतधारं व्वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु व्वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः स्वाहा।।

उसके बाद अग्नि की एक बार प्रदक्षिणा करके पश्चिम भाग में बैठ जाना चाहिये या स्थित हो जाना चाहिये। ततो ऽग्निं प्रदक्षिणीकृत्य पश्चिमदेशे प्राङ्मुखोपविश्य।। कुण्ड के ईशान भाग से स्रुव द्वारा भस्म निकाल कर अनामिका अंगुलि से ललाट में, ग्रीवा में, दक्षिण भुजा के मूल में तथा हृदय में लगाना चाहिये। संस्रव प्राशनम्।। आचमनम्।। पवित्राभ्यां मार्जनम्।। अग्नौ पवित्रप्रतिपत्तिः।। ब्रह्मणे पूर्णपात्रदानम्।। कृतस्य अमुक शान्तिहोमकर्मणो ऽ ¯तयाविहितमिदं पूर्णपात्रं सदक्षिणं ब्रह्मणे तुभ्यमहं सम्प्रददे।। इस मन्त्र को पढ़कर ब्रह्मा को पूर्णपात्र देना चाहिए तथा अग्रिम मन्त्र को पढ़कर उसको ग्रहण करने का विधान है। ॐ द्यौस्त्वा ददातु पृथिवीत्वा प्रतिगृह्णातु।। अग्नेः पश्चातप्रणीताविमोकः।। ॐ आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमास्तास्ते क्रण्वन्तुभेषजम्।। उपयमनकुशैैर्मार्जयेत्।। उपयमन कुशानामग्नौ प्रक्षेपः ब्रह्मग्रन्थि विमोकः।।

इस प्रकार ब्राह्मण भोजनादि का संकल्प कर उत्तर पूजन करना चाहिये एवं विसर्जन करना चाहिये।

क्षमा प्रार्थना -

ओं विष्णवे नमः ।। 3।।

तिलकाशीर्वादः-

श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधात्पवमानं महीयते।

धान्यं धनं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः।।

मन्त्रार्थाः सफला सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथाः।

शत्रूणां बुद्धि नाशोऽ स्तु मित्राणा मुदयस्तवः।।

यज्ञान्त में ब्राह्मणों को भोजन कराकर अपने इष्ट मित्रों के साथ सानन्द मिष्ठान्नादि ग्रहण करना चाहिये।

इस प्रकार इस प्रकरण में आपनें यमल जनन शान्ति का विधान क्या है ? इसके बारे में जाना। इसकी जानकारी से आप यमल जनन शान्ति करा सकते हैं तथा इसकी शान्ति की आवश्यकता को बता सकते है। अब हम संबंधित विषय को आधार बनाकर कुछ अभ्यास प्रश्न बनायेगें जिसका उत्तर आपको देना होगा।

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1-दिग्रक्षण किससे किया जाता है?

क-पीली सरसों से, ख- पीले पुष्पों से, ग- चावलों से, घ- जल से।

प्रश्न 2- सर्वप्रथम पूजन किसका किया जाता है ?

क- गणेश जी का, ख- कलश का, ग- षोडशमातृका का, घ- सप्तघृतमातृका का।

प्रश्न 3- भस्म कुण्ड के किस भाग से निकाला जाता है?

क- अग्नि कोण से, ख- ईशान से, ग- पूर्व से, घ- दक्षिण से।

प्रश्न 4- प्रथम ग्रहाहुति क्या है?

क- सूर्य की, ख- चन्द्र की, ग- मंगल की, घ- बुध की।

प्रश्न 5- दिग्पाल बलिदान में प्रथम बलिदान किसको दिया जाता है?

क- अग्नि को, ख- इन्द्र को, ग- यम को, घ- कुबेर को।

प्रश्न 6- द्वितीय ग्रहाहुति क्या है?

क- सूर्य की, ख- चन्द्र की, ग- मंगल की, घ- बुध की।

प्रश्न 7- दिग्पाल बलिदान में द्वितीय बलिदान किसको दिया जाता है?

क- अग्नि को, ख- इन्द्र को, ग- यम को, घ- कुबेर को।

प्रश्न 8- अन्त में विष्णवे नमः कितनी बार बोलना चाहिये?

क- एक बार, ख-दो बार, ग- तीन बार, घ- चार बार।

प्रश्न 9- षोडशमातृका मण्डल पर कितने देवता होते है?

क- सोलह, ख- सत्रह, ग- अठ्ठारह, घ- उन्नीस।

प्रश्न 10- पूर्णपात्र का दान किसको किया जाता है?

क- आचार्य को, ख- ऋत्विज को, ग- ब्रह्मा को, घ- सदस्य को।

अब आपको यमल जनन शान्ति का ज्ञान हो गया है। अब हम ज्वरादि रोगोत्पत्ति शान्ति के विषय में विधि का प्रतिपादन करने जा रहे हैं जो अग्रलिखित है-

3.4.2 ज्वरादि रोगोत्पत्ति शान्ति विधि-

ज्वरादि रोगोत्पत्ति का विचार कैसे किया जाता है इसकी जानकारी आपको पूर्व में प्रदान किया जा चुका है। अब यदि आवश्यक हो तो इसकी शान्ति आप कैसे करायेगें इसके विधि विधान के बारे में आपको यहां जानकारी दी जा रही है जो इस प्रकार है-

पूर्वोक्त कालों में उत्पन्न ज्वरादि रोगों के निवारणार्थ शान्ति प्रकाश नामक ग्रन्थ में सर्व नक्षत्र जन्य पीडा शान्ति प्रयोग दिया गया है। उक्त प्रकार से शान्ति करने पर तन्नक्षत्र जन्य पीडा का शमन होता है ऐसा शास्त्रकारों का मत है। सर्व प्रथम सर्व नक्षत्र जन्य पीड़ा शान्ति प्रयोग का विधान करते हुये बतलाया गया है कि पूजन प्रारम्भ करने वाले आचमनादि प्रक्रियाओं को सम्पादित कर संकल्प करना चाहिये। संकल्प में मास पक्ष इत्यादि का

विधान तो होगा ही परन्तु साथ में योजनीय विन्दु अधोलिखित भी होता है- मम उत्पन्नस्य अमुक व्याधेः जीवच्छरीराविरोधेन समूल नाशार्थं अमुक नक्षत्रस्य देवताख्यं जपं करिष्ये। जप संख्या का प्रतिपादन करते हुये बतलाया गया है कि 108 या 1008 या इससे भी अधिक जपादि कराना चाहिये। तद्यथा-

संकल्प:- ॐ श्री विष्णुर्विष्णर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्त्तमानस्य अद्य श्री ब्रह्मणोन्हि द्वितीये परार्द्धे विष्णुपदे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवश्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे युगे कलियुगे कलिप्रथम चरणे जम्बूद्वीपे भूर्लोके भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे अमुकक्षेत्रे अमुकसंवत्सरे अमुकायने अमुकऋतौ महामांगल्यप्रदमासोत्तमे मासे अमुकमासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक नक्षत्रे अमुक योगे अमुक करणे अमुकराशि स्थिते श्रीचन्द्रे अमुक राशिस्थिते श्री सूर्ये अमुक राशिस्थिते देवगुरौ अमुक गोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा सपत्नीकोऽहं श्रुति स्मृति पुराणोक्त फल प्राप्त्यर्थंमस्माकं शरीरे उत्पन्न व्याधेः समूलनाशार्थं अमुकनक्षत्रे उत्पन्न ज्वरादिरोगोत्पत्तिशान्तिं

करिष्ये। तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं आयुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं आचार्यादिवरणानि च करिष्ये।

तत्रादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनमहं करिष्ये। एतानि कर्माणि शान्तिविधानानुसारेण कुर्यात्।

इसके बाद यज्ञीयकर्मक्षेत्र विघ्नादिकारक तत्वों से रहित हो जाय इसके लिये पीली सरसों को दाहिने हाथ में रखकर बाँये हाथ से ढककर दिग्रक्षण मन्त्रों का पाठ करे।

तत्र मन्त्रः- यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्यसर्वदा। स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु।

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमि संस्थिताः। ये भूता विघ्नकर्तारः ते नश्यन्तु शिवज्ञया।

अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम्। सर्वेषामविरोधेन शान्ति कर्म समारभे।

पूर्व आदि चारो दिशाओं में छींटकर शान्ति विधान या संबंधित पद्धितियों के अनुसार गणेशाम्बिका पूजन, कलश स्थापन, पुण्याहवाचन, षोडशमातृका पूजन, सप्तघृतमातृका पूजन, आयुष्यमन्त्र जप, नान्दीश्राद्ध, आचार्यवरण, नवग्रहादि स्थापन एवं पूजन करना चाहिये। तदनन्तर भूमौ प्रादेशं कृत्वा (यज्ञ भूमि के ऊपर दाहिने हाथ की तर्जनी एवं अगूंठे को फैलाते हुये वाचन करे) ॐ देवाः आयान्तु, यातुधानाः अपयान्तु, विष्णोदेवयजनं रक्षस्व। मन्त्र का पाठ करना चाहिये। पंचांगादि पूजनों का सम्पादन करते हुये आचार्य वरणान्त विधियों का विधान करना चाहिये। तदनन्तर भूमि पर चावल से चतुरस्त्र मण्डल बनाकर यथाविधि ताम्र का एक कलश स्थापित कर जल से भरकर गंध, सर्वोषधि, दूर्वा, पल्लव, पंचत्वक्, सप्तमृत्तिका, पंचरत्न, पंचगव्य, हिरण्यादि उन- उन मन्त्रों के उच्चारण से छोड़ना चाहिये। वस्त्रद्वय से आवेष्टित कर सर्वे समुद्राः सर्वे इत्यादि मन्त्रों से तीर्थो का आवाहन करना चाहिये। वरुण का आवाहन कर यथोपलब्धोपचारों से पूजन करना चाहिये। कलश के ऊपर पूर्णपात्र पर द्वादश दल कमल बनाकर सौवर्णी नक्षत्र देवता की प्रतिमा भी संस्थापित कर पूजन करना चाहिये। सुवर्ण की नक्षत्र प्रतिमा स्थापन अग्न्युत्तारण पूर्वक करना चाहिये जिसका विधान नीचे दिया गया है-

अग्न्युत्तारण हेतु सर्वप्रथम संकल्प किया जाता है।

संकल्पः- देशकालौ संकीर्त्य अमुकगोत्रः अमुकशर्माऽहं अस्यां मूर्त्तौ अवघातादिदोष परिहारार्थं अग्न्युत्तारणं देवता सान्निध्यार्थं च प्राणप्रतिष्ठां करिष्ये।

नक्षत्र की मूर्त्ति को पात्र में रखकर घृत लगाकर उसके ऊपर दुग्धधारा या जलधारा गिरानी चाहिये और अधोलिखित मन्त्रों का अथवा नक्षत्र के मूल मन्त्र का 108 बार पाठ करना चाहिये।

ॐ समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परिव्ययामसि पावकोऽअस्मभ्य गुं शिवो भव। हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परिव्ययामसि। पावकोऽ अस्मभ्य गुं शिवो भव। उप ज्मन्नुप वेतसोऽ वतर नदिष्वा। अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमं न्नो यज्ञं पावक वर्ण्ण गुं शिवंकृधि। अपामिदं न्ययन गुं समुद्रस्य निवेशनम्। अन्यास्ते ऽ अस्मत्पन्तु हेतयः पावकोऽ अस्मभ्य गुं शिवो भव। अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया। आ देवा न्वक्षि यक्षि च॥ स नः पावक दीदिवोग्ने देवाँ2ऽ इहावह। उप यज्ञ गुं हविश्चनः॥ पावकया यश्चितयन्त्या कृपाक्षामन्त्ररु च ऽउषसो न भानुना। तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण ऽआ यो घृणो ततृषाणो अजरः॥ नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽ अस्त्वर्चिषे। अन्याँस्तेऽ अस्मत्पन्तु हेतयः पावको ऽ अस्मभ्य गुं शिवो भव। नृषदे व्वेडप्सुषदे ब्बेड्बर्हिषदे ब्बेड् व्वनसदे व्वेट् स्वर्विदे वेट्॥ ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियाना गुं संवत्सरीणमुप भागमासते॥ अहुतादो हविषो यज्ञेऽ अस्मिन्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य। ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुर एतारोऽअस्य। येभ्यो न ऽऋते पवते धाम किंचन न ते दिवो न पृथिव्याऽ अधिस्नुषु। प्राणदाऽ अपानदा व्यानदा व्वर्चोदा व्वरिवोदाः। अन्यॉस्तेऽअस्मत्पन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्य गुं शिवो भव।

एवं अग्न्युत्तारणं कृत्वा प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्- इस प्रकार अग्न्युत्तारण करके प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। प्रतिमा को हाथ से संस्पर्ष करते हुये

अधोलिखित बीज मन्त्रों का जप करना चाहिये।

ॐ आँ ह्रीं क्रों यँ रँ लँ वँ षँ षँ सँ क्षँ हँ सः सोऽहं अस्यां अमुक नक्षत्र देवस्य प्राणाः इह प्राणाः। पुनः ॐ आँ ह्रीं क्रों यँ रँ लँ वँ षँ षँ सँ क्षँ हँ सः सोऽहं अस्यां अमुक नक्षत्र देवस्य जीव इह स्थितः। पुनः ॐ आँ ह्रीं क्रों यँ रँ लँ वँ षँ षँ सँ क्षँ हँ सः सोऽहं अस्यां अमुक नक्षत्र देवस्य वाङ्गनस्त्वक्चक्षुः श्रोत्र जिह्वा घ्राण पाणि पाद पायूपस्थानि इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा। इति प्राणप्रतिष्ठा।

स्थण्डिल पर पंचभूसंस्कार करके अग्नि की स्थापना करके सूर्यादिग्रहों की स्थापना करके बतलायी गयी विधि के अनुसार पूजन करना चाहिये। ततो कुशकण्डिका पूर्वक आज्य भागान्त कर्मों का सम्पादन कर दूर्वा, समित्, तिल, आज्य एवं क्षीर से प्रत्येक नक्षत्र देवता मन्त्र से 108 आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। पीड़ाधिक्यता को देखते हुये यदि आवश्यक प्रतीत हो तो 1008 आहुतियाँ देनी चाहिये। तदनन्तर गायत्री मन्त्र से एक माला यानी 108 आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। होमशेष को समाप्त कर दधि ओदन का बलिदान देकर शान्ति कलश के जल से यजमान का अभिषेक करना चाहिये। अभिषेक हेतु मन्त्र पूर्व में लिखा गया है आवश्यकतानुसार उसका अनुसरण करके समन्त्रक अभिषेक करा सकते है।

आचार्य के लिये गौ एवं कलश के ऊपर रखी हुयी नक्षत्र प्रतिमा के दान का विधान है जिसे रोगी के द्वारा प्रदान करवाना चाहिये। इसके बाद घी से भरे हुये कटोरे में अपना मुखावलोकन कर दान देकर ब्राह्मण भोजनादि पूर्वक इस शान्ति को सम्पन्न करना चाहिये।

प्रत्येक नक्षत्रों का मन्त्र इस प्रकार है -

अश्विनी नक्षत्र मन्त्र- ॐ अश्विनी नक्षत्रस्याधिपतये नमः ।।

भरणी नक्षत्र मन्त्र- ॐ भरणी नक्षत्रस्याधिपतये नमः ।।

कृत्तिका नक्षत्र मन्त्र- ॐ कृत्तिका नक्षत्रस्याधिपतये नमः ।।

रोहिणी नक्षत्र मन्त्र- ॐ रोहिणी नक्षत्रस्याधिपतये नमः ।।

मृगशिरा नक्षत्र मन्त्र- ॐ मृगशिरा नक्षत्रस्याधिपतये नमः ।।

आर्द्रा नक्षत्र मन्त्र- ॐ आर्द्रा नक्षत्रस्याधिपतये नमः ।।

पुनर्वसु नक्षत्र मन्त्र- ॐ पुनर्वसु नक्षत्राधिपये नमः ।।

पुष्य नक्षत्र मन्त्र- ॐ पुष्य नक्षत्राधिपतये नमः ।।

आश्लेषा नक्षत्र मन्त्र- ॐ आश्लेषा नक्षत्राधिपतये नमः ।।

मघा नक्षत्र मन्त्र- ॐ मघा नक्षत्राधिपतये नमः ।।

पूर्वाफाल्गुनि नक्षत्र मन्त्र-ॐ पूर्वाफाल्गुनि नक्षत्राधिपतये नमः ।।

उत्तरा फाल्गुनि नक्षत्र मन्त्र-ॐ उत्तराफाल्गुनि नक्षत्रस्याधिपतये नमः।

हस्त नक्षत्र मन्त्र- ॐ हस्त नक्षत्राधिपतये नमः ।।

चित्रा नक्षत्र मन्त्र- ॐ चित्रा नक्षत्राधिपतये नमः ।।

स्वाति नक्षत्र मन्त्रः- ॐ स्वाति नक्षत्राधिपतये नमः ।।

विशाखा नक्षत्र मन्त्रः-ॐ विशाखा नक्षत्राधिपतये नमः ।।

ज्येष्ठा नक्षत्र मन्त्रः-ॐ ज्येष्ठा नक्षत्राधिपतये नमः ।।

मूल नक्षत्र मन्त्रः-ॐ मूल नक्षत्रस्याधिपतये नमः ।।

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र मन्त्रः-ॐ पूर्वाषाढ़ानक्षत्राधिपतये नमः ।।

उत्तराषाढ़ा नक्षत्र मन्त्रः-ॐ उत्तराषाढ़ानक्षत्राधिपतये नमः ।।

अभिजित नक्षत्र मन्त्रः-ॐ अभिजित् नक्षत्रस्याधिपतये नमः ।।

श्रवण नक्षत्र मन्त्रः- ॐ श्रवण नक्षत्रस्याधिपतये नमः ।।

धनिष्ठा नक्षत्र मन्त्रः- ॐ धनिष्ठा नक्षत्रस्याधिपतये नमः ।।

शतभिषा नक्षत्र मन्त्रः- ॐ शतभिषा नक्षत्रस्याधिपतये नमः ।।

पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र मन्त्रः- ॐ पूर्वाभाद्रपद नक्षत्राधिपतये नमः ।।

उत्तराभाद्रपद नक्षत्र मन्त्रः- ॐ उत्तराभाद्रपद नक्षत्रस्याधिपतये नमः ।।

रेवती नक्षत्र मन्त्रः- ॐ रेवती नक्षत्राधिपतये नमः।।

इस प्रकार आपने प्रत्येक नक्षत्रों के नाम मन्त्रों को देखा। अब हम प्रत्येक नक्षत्र के वैदिक मन्त्रों को लिखने जा रहे है। यह ध्यान रहे कि वैदिक मन्त्रों का अत्यन्त महत्व शास्त्रों में वर्णित है। इसके प्रयोग के पूर्व इन मन्त्रों को गुरुमुखोच्चारणानुच्चारण पद्धति से ठीक तरह से उच्चरित होना जरूरी है। त्रुटिपूर्ण उच्चारण शास्त्रोक्त सफलता को नही प्रदान कर सकता इसलिये अनुष्ठानों के सम्पादन में शुद्धता एवं पवित्रता ध्यान रखना परम आवश्यक है।

अश्विनी नक्षत्र के देवता का नाम अश्विनी कुमार है इसलिये यहां अश्विनी कुमारों के लिये वैदिक मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम्। व्वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम्।।

भरणी नक्षत्र के देवता यम बतलाये गये है इसलिये यम का मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ यमाय त्वांगिरस्वते पितृमते स्वाहा स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्मः पित्रे।।

कृत्तिका नक्षत्र के देवता का नाम अग्नि है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ अयमग्निः सहिस्त्रणो व्वाजस्य शतिनस्पतिः। मूर्द्धाकवीरयिणाम्।।

रोहिणी नक्षत्र के देवता का नाम ब्रह्मा है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ ब्रह्म यज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः शुरुचोव्वेनऽ आवः। स बुध्न्या उपमा यस्य विष्ठाः शतश्च योनिमसतश्च व्विवः।।

मृगशिरा नक्षत्र के देवता का नाम सोम है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ सोमो धेनु गुं सोमोऽ अर्वन्तमासु गुं सोमो व्वीरं कर्मण्यं ददाति। सादन्यं विदथ्य गुं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाश दस्मै।।

आर्द्रा नक्षत्र के देवता का नाम रुद्र है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः।।

पुनर्वसु नक्षत्र के देवता का नाम अदिति है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ अदितिर्द्यौरदिति रन्तरिक्षमदिति र्म्माता सपिता सपुत्रः। विष्वेदेवाऽ अदितिः पंचजना ऽ अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्।।

पुष्य नक्षत्र के देवता का नाम वाचस्पति है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ व्वाचस्पतये पवस्व वृष्णोऽ अ गुं शुभ्यांगभस्ति पूतः। देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोसि॥

आश्लेषा नक्षत्र के देवता का नाम सर्प है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ नमोस्तु सर्प्पेभ्यो ये के च पृथ्वीमनु। येऽ अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्प्पेभ्यो नमः॥

मघा नक्षत्र के देवता का नाम पितृ है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। अक्षन्पितरोमीमदन्त पितरो तीतृपन्त पितरः पितरः
शंधध्वम् ॥

पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र के देवता का नाम भग है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ भगप्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमान्धिय मुदवाददन्नः। भ्भगप्रणोजनय गोभिरश्वैर्भगप्प्रनृभिर्नृवन्तः स्याम ॥

उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के देवता का नाम सूर्य है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है -

ॐ दैव्या वध्वर्यूऽ आगत गुं रथेन सूर्यत्वचा। मद्ध्वा यज्ञ गुं समंजाथे। तं प्रत्नथा यं व्वेनश्चित्रन्देवानाम् ॥

हस्त नक्षत्र के देवता का से संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ व्विभ्राड् बृहत्पिवतु सोम्म्यमध्वायुर्द्रधद्यज्ञपता वव्रिहुतम्। व्वातजूतोयोऽ अभिरक्षतित्मना प्रजाः पुपोषपुरुधा व्विराजति॥

चित्रा नक्षत्र के देवता का नाम त्वष्टा है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ त्वष्टा तुरीपोऽ अद्भुतऽ इन्द्राग्नि पुष्टिव्वर्धना। द्विपदाच्छन्दऽ इन्द्रिय मुक्षागौर्न्नव्वयो दधुः॥

स्वाती नक्षत्र के देवता का नाम वायु है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ पीवोऽ अन्नारयिवृधः सुमेधाः। श्वेतः सिषक्ति नियुक्तामभि श्रीः ते वायवे समनसो व्वितस्थुर्विष्वेनरः स्वपत्यानि चक्रुः॥

विशाखा नक्षत्र के देवता का नाम इन्द्राग्नि है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ इन्द्राग्नी ऽ आगत गुं सुतं गीर्भिर्न्नभोवरेण्यम्। अस्य पातन्धियोषिता॥

अनुराधा नक्षत्र के देवता का नाम मित्र है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ नमो मित्रस्य चर्क्षसे महादेवायतद्दत गुं सपर्यत दूरे दृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्यायश गुं शत ॥

ज्येष्ठा नक्षत्र के देवता का मन्त्र इस प्रकार है -

ॐ स इषु हस्तैः सनिषङ्गि भिर्व्वशीस गुं सृष्टा सयुधऽ इन्द्रो गणेन । स गुं सृष्टजित्सो मपाबाहु शर्द्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिता भिरस्ता ।।

मूल नक्षत्र के देवता का मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ मातेव पुत्रम्पृथिवीपुरीष्यमग्नि गुं स्वेयोनावभारुषा। तां विश्वे देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुंचतु।।

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के देवता का मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ अपाधमप किल्विषमपकृत्यामपोरपः। अपाम्मार्गत्वमस्मदपदुः श्वप्न्य गुं सुव।।

उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के देवता का मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ विश्वे ऽ अद्य मरुतोपिष्वऽऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः। विश्वे नो देवाऽ अवसागमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं व्वाजोऽ अस्मे।

अभिजित् नक्षत्र के देवता का मन्त्र इस प्रकार है-

गायत्री मन्त्रः

श्रवण नक्षत्र के देवता का नाम विष्णु है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ इदं विष्णु र्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पा गुं सुरे स्वाहा।।

धनिष्ठा नक्षत्र के देवता का नाम वसु है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ व्वसोः पवित्रमसि शतधारं व्वसोः पवित्रमसि शहस्त्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु व्वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।।

शतभिषा नक्षत्र के देवता का नाम वरुण है इसलिये उससे संबंधित मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ व्वरुणस्यो त्तम्भनमसि व्वरुणस्यस्कम्भ सर्जनीस्थो व्वरुणस्य ऋतसदन्यसि व्वरुणस्य ऋतसदनमसि व्वरुणस्य ऋतसदनमासीद्।।

पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र के देवता का मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ उतनोहिर्बुध्न्यः शृणोत्वजऽ एकपात्पृथिवी समुद्रः। विष्वेदेवाऽ ऋतावृधो हुवानास्तुतामंत्राः कविशस्ताऽ अवन्तु।।

उत्तरभाद्रपद नक्षत्र के देवता का मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ शिवो नामा सिस्वधि पिता नमस्तेऽ अस्तु मामाहि गुं सीः। निवर्त्तयाम्यायुषेन्नाद्याय प्रजननायराय स्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय।।

रेवती नक्षत्र के देवता का मन्त्र इस प्रकार है-

ॐ पूषन्तव व्रते व्वयन्नरिष्येम कदाचन। स्तोतारस्त इहस्मसि।।

इस प्रकार समस्त प्रकार के रोंगों के निवारणार्थ लघुरुद्र, महारुद्र, अतिरुद्र का पाठ एवं अभिषेक अथवा विष्णुसहस्त्रनाम स्तोत्र का शत (100), सहस्त्र (1000), अयुत (10000) जप या पाठ, सूर्यसूक्त का पाठ, सूर्य नमस्कार, अर्घ्यदान, पुरुषसूक्त का पाठ, अच्युत अनन्त गोविन्द इन तीनों नामों का जप यानी हरि नाम संकीर्तन, मृत्युंजय जप, श्रीभागवतस्थज्वरस्तोत्र का जप या पाठ इत्यादि रोंगों के अनुसार कराने से शान्ति होती है। रुद्रकल्पद्रुम में रुद्र के पाँच भेद बतलाये गये है। रूपक, रुद्री, लघुरुद्र, महारुद्र और अतिरुद्र। छः अंगो सहित रुद्राध्याय को रूपक, 11 नमस्ते का पाठ रुद्री, रुद्री का ग्यारह गुना लघुरुद्र, लघुरुद्र का ग्यारह गुना महारुद्र एवं महारुद्र का ग्यारह गुना अतिरुद्र होता है। 100 रुद्र मन्त्रों के पाठ को शतरुद्रीय कहते है।

इसके अलावा सभी प्रकार के जपों मे ज्वर गायत्री का पाठ करने का भी विधान पाया जाता है। ज्वर गायत्री इस प्रकार है - ॐ भस्मायुधाय विद्महे ऐं क्रीं एकदंष्ट्राय धीमहि। तन्नो ज्वरः प्रचोदयात्।

इसके अलावा ज्वर स्तोत्र का पाठ भी ज्वर के उपशमन में सहायक होता है। श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध में इस प्रकार ज्वर स्तोत्र दिया गया है। विद्रविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात्। अभ्यपद्यत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश। अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्वरम्। माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ। माहेश्वरः समाक्रन्दन् वैष्णवेन बलार्दितः। अलब्ध्वाभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः। शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयतांजलिः। ज्वर उवाच। नमामि त्वा अनन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञपितमात्रकम्। विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद्ब्रह ब्रह्मलिंगं प्रशान्तम्। कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः। तत्संघातो बीजरोहः प्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये। नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान्साधूंल्लोकसेतून्विभर्षि। हंस्युन्मार्गान्हिंसया वर्तमानान्जन्मैतत्तै भारहाराय भूमेः। तप्तोहं ते तेजसा दुःस्सहेन शांतोग्रेणात्युलबणेन ज्वरेण। तावत्तापो देहिनां तेंघ्रिमूलं नो सेवेरन्यावदाशानुबद्धाः। श्रीभगवानुवाच। त्रिशिरस्ते प्रसन्नोस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम्। यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम्। इत्युक्तो अच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः। बाणस्तु रथमारूढ़ प्रागाद्योत्स्यंजनार्दनम्। इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे ज्वरकृत्स्त्रोत्रम्।

यह स्त्रोत्र अनुष्ठान प्रकाश के पृ. 347 से लिया गया है। इसके अलावा महार्णव में यह दिया गया है कि ज्वर तर्पण करने से भी ज्वर का प्रकोप शान्त होता है। ज्वर तर्पण हेतु अधोलिखित श्लोक दिये गये है-

योसौ सरस्वती तीरे कुत्सगोत्रसमुद्भवः।
त्रिरात्रज्वरदाहेन मृतो गोविन्द संज्ञकः।

ज्वरापनुत्तये तस्मै ददाम्येतत्तिलोदकम् ।

तथा- गंगाया उत्तरे कूले अपुत्रस्तापसो मृतः। रात्रौ ज्वरविनाशाय तस्मै दद्यात्तिलोदकम्।

इन दो श्लोकों को पढ़ते हुये तिल, रक्त अक्षत, रक्त पुष्प् युक्त जल से ज्वर के अनुसार 108 बार या अयुत बार तर्पण ज्वर को उद्देश्य करके करना चाहिये।

इसके अलावा सर्वरोगहर माहेश्वर कवच का भी पाठ परम कल्याणकारी बतलाया गया है जो इस प्रकार है-

अथ सर्वरोगहरमाहेवरकवचम्- राजोवाच। अंगन्यासो यदुक्तो भो महेशाक्षरसंयुतः। विधानं कीदृशं तस्य कर्तव्यः केन हेतुना। तद्वदस्व महाभाग विस्तरेण ममाग्रतः। भृगुरुवाच। कवचं माहेश्वरं राजन्देवैरपि सुदुर्लभम्। यः करोति स्वगात्रेषु पूतात्मा स भवेन्नरः। कृत्वा न्यासमिमं यस्तु संग्रामं प्रविशेन्नरः। न शरास्तोमरास्तस्य खंगशक्तिपरश्वधाः। प्रभवंति रिपोः क्वापि भवेच्छिवपराक्रमः। व्याधिग्रस्तस्तु यः कश्चित् कारयेच्चैव मार्जनम्। एकादशकुशैः सागै्रर्मुक्तो भवति नान्यथा। न भूता न पिशाचाश्च कूष्माण्डा न विनायकाः। शिवस्मरणमात्रेण न विशन्ति कलेवरम्। ओं नमः पंचवक्त्राय शशिसोमार्कनेत्राय भयार्तानामभयाय मम सर्वगात्ररक्षार्थे विनियोगः। ओं हौं हां हं मन्त्रेणानेन वृषगोमयभस्मस्नानम्। आमंत्र्य ललाटे तिलकमादाय पठेत्। त्राहि मां देव दुष्प्रेक्ष शत्रूणां भयवर्द्धन। ओं स्वच्छन्दभैरवः प्राच्यमाग्नेयां शिखिलोचनः। भूतेशो दक्षिणे भागे नैर्ऋत्यां भीमदर्शनः। वारुण्यां वृषकेतुश्च वायौ रक्षतु शंकरः। दिग्वासा सौम्यतो नित्यमैशान्यां मदनान्तकः। वामदेवोर्ध्वतो रक्षेदधो रक्षेत्रिलोचनः। पुरारिः पुरतः पातु कपर्द्दी पातु पृष्ठतः। विश्वेशो दक्षिणे भागे वामे कालीपतिः सदा। महेश्वरः शिरो भागे भवो भाले सदैव तु। भ्रुवोर्मध्ये महातेजास्त्रिनेत्रो नेत्रयोद्वयोः। पिनाकी नासिका देशे कर्णयोर्गिरिजापतिः। उग्र कपोलयोः रक्षेन्मुखदेशे महाभुजः। जिह्वायामन्धकध्वंसी दंतान्रक्षतु मृत्युजित्। नीलकंठः सदाकंठे पृष्ठे कामांगनाशनः। त्रिपुरारिः स्कन्धदेशे बाह्वोश्च चन्द्रशेखरः। हस्ति चर्मधरो हस्ते नखांगुलीषु शूलभृत्। भवानीशः पातु हृदि पातूदरकटी मृदः। गुदे लिंगे च मेढ्रे च नाभौ च प्रथमाधिपः। जंघोरुचरणे भीमः सर्वांगे केशवप्रियः। रोमकूपे विरूपाक्षः शबदस्पर्शे च योगवित्। रक्तमज्जावसामांसशुक्रे वसुगणार्चितः। प्राणापानसमानेषूदानव्यानेषु धूर्जटिः। रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन यत्। तत्सर्वं रक्ष मे देव व्याधिदुर्गज्वरार्दितः। कार्यं कर्म त्विदं प्राज्ञैर्दीपं प्रज्वाल्य सर्पिषा। निवेद्य शिखि नेत्राय वारयेत्तु हि उदंग्मुखम् । ज्वरदाहपरिक्रान्तं तथान्यव्याधिसंयुतम् । कुशैः सम्मार्ज्यसम्मार्ज्य क्षिपेद्दीपशिखां ज्वरम् । एकाहिकं द्वयाहिकं वा तृतीयकचतुर्थकम् । वातपित्तकफोद्भूतं सन्निपातोग्रतेजसम् । अन्यं दुःखदुराधर्षकर्म्मजं चाभिचारिकम्। धातुस्थं कफसं मिश्रं विषमं कामसंभवम्। भूताभिषंगसंसर्गं भूतचेष्टादिसंस्थितम् । शिवाज्ञां घोरमन्त्रेण पूर्ववृत्तं स्वयं

स्मर । त्यजदेहं मनुष्यस्य दीपं गच्छ महाज्वर । कृतं तु कवचं दिव्यं सर्वव्याधिभयार्द्दनम्। न बाधंते ब्याधयस्तं बालग्रहभयानि च । लूताविस्फोटकं घोरं शिरोर्तिच्छर्दिविग्रहम् । कामलां क्षयकाशं च गुल्माश्मरीभगंदराः । शूलोन्मादं च हृद्रयकृती पाण्डुविद्रधिकम् । अतिसारादिरोगांश्च डाकिनीपीडकग्रहान् । पामाविचर्चिकादद्रु कुष्ठव्याधिविषार्दनम् । स्मरणान्नाशयत्याशु कवचं शूलपाणिनः । यस्तु स्मरति नित्यं वै यस्तु धारयते नरः । स मुक्तः सर्वपापेभ्यो वसेच्छिवपुरे चिरम्। संख्या व्रतस्य दानस्य यज्ञस्यास्तीहशास्त्रतः । न संख्या विद्ते शंभोः कवचस्मरणाद्यतः । तस्मात्सम्यगिदं सर्वैः सर्वकामफलप्रदम् । श्रोतव्यं सततं भक्त्या कवचं सर्वकामिकम् । लिखितं तिष्ठते यस्य गृहे सम्यगनुत्तमम् । न तत्र कलहोद्वेगो नाकालमरणं भवेत् । नाल्पप्रजाः स्त्रियस्तत्र न दौर्भाग्यं समाश्रिताः । तस्मान्माहेश्वरं नाम कवचं देव गणार्चितम् । श्रोतव्यं पठितव्यं च मंतव्यं भावुकप्रदम् । श्रीमाहेश्वरकवचं सर्वव्याधिनिषूदनम्।यः पठेत्तु नरो नित्यं स व्रजेच्छांकरं पुरम् । इति सर्वव्याधिहरं श्रीमाहेश्वरकवचं सम्पूर्णम् ।

यह कवच अनुष्ठान प्रकाश नामक ग्रन्थ के 345वें पृष्ठ से लिया गया है ।

इस प्रकार दिये गये शान्ति के विविध उपायों में से उपयुक्त विधि को अपनाकर लाभ उठाया जा सकता है।

इस प्रकार इस प्रकरण में आपनें ज्वरादि रोगोत्पत्ति की शान्ति का विधान क्या है ? इसके बारे में जाना । इसकी जानकारी से आप ज्वरादि रोगोत्पत्ति शान्ति करा सकते हैं तथा इसकी शान्ति की आवश्यकता को बता सकते है । अब हम संबंधित विषय को आधार बनाकर कुछ अभ्यास प्रश्न बनायेगें जिसका उत्तर आपको देना होगा । अभ्यास प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न -

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं । अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है । प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है -

प्रश्न 1- अभिषेक किससे जाता है?

क-पीली सरसों से, ख- पीले पुष्पों से, ग- चावलों से, घ- जल से।

प्रश्न 2- शत का अर्थ क्या है?

क- 100, ख- 1000, ग- 10000, घ-100000।

प्रश्न 3- शहस्र का अर्थ क्या है?

क- 100, ख- 1000, ग- 10000, घ-100000।

प्रश्न 4- अयुत अर्थ क्या है?

क- 100, ख- 1000, ग- 10000, घ-100000।

प्रश्न 5- लक्ष का अर्थ क्या है?

क- 100, ख- 1000, ग- 10000, घ-100000।

प्रश्न 6- अश्विनी नक्षत्र के देवता का क्या नाम है?

क- अश्विनी कुमार, ख- यम, ग- अग्नि , घ- ब्रह्मा।

प्रश्न 7- भरणी नक्षत्र के देवता का क्या नाम है?

क- अश्विनी कुमार, ख- यम, ग- अग्नि , घ- ब्रह्मा।

प्रश्न 8- कृत्तिका नक्षत्र के देवता का क्या नाम है?

क- अश्विनी कुमार, ख- यम, ग- अग्नि , घ- ब्रह्मा।

प्रश्न 9- रोहिणी नक्षत्र के देवता का क्या नाम है?

क- अश्विनी कुमार, ख- यम, ग- अग्नि , घ- ब्रह्मा।

प्रश्न 10- ग्यारह नमस्ते का पाठ होता है-

क- रुद्री में, ख- लघु रुद्री में, ग- महारुद्री में, घ- अतिरुद्री में।

इस प्रकरण में आपने ज्वरादि रोगोत्पत्ति की शान्ति प्रविधि के बारे में जाना। आशा है अब आप जवरादि रोगोत्पत्ति की शान्ति करा सकेगें।

3.5 सारांश

इस ईकाई में आपने यमल जनन एवं ज्वरादि रोगोत्पत्ति की शान्ति का विधान जाना है। वस्तुतः यमल जनन में जुड़वा बच्चों की उत्पत्ति होती है जिसके कारण दोषों की उत्पत्ति होती हैं उसकी शान्ति कराने से उन दोनों बच्चों एवं उनके माता पिता का विकास सम्यक् होता रहता है। जीवन में कोई भी दोष हो वह मानव जीवन पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव डालता ही है। उस प्रभाव के कारण व्यक्ति को अधिक परिश्रम करने पर भी सफलता हाथ नही लगती है जिससे व्यक्ति व्याकुल हो जाता है। उनके इस व्याकुलता का शमन करने के लिये और उनके धैर्य को बढ़ाने के लिये पौरोहित्य जिसे कर्मकाण्ड कहा जाता है उसमें तत्संबंधी शान्ति का विधान किया गया है। यदि वह दोष यमल जनन के कारण है तो कर्मकाण्ड में उसके प्रशमनार्थ एक विधि दी गयी है जिसे यमल जनन शान्ति के नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत गणेशाम्बिका पूजन, कलश स्थापन, पुण्याहवाचन, षोडशमातृका पूजन, सप्तघृतमातृका पूजन, आयुष्यमन्त्र जप, नान्दीश्राद्ध, आचार्यवरण, नवग्रहादि स्थापन एवं पूजन करना चाहिये।

इसके अनन्तर एक स्थण्डिल या चौकी या पीढ़े पर आठों दिशाओं में आठ कलशों की स्थापना करें। इन समस्त कलशों का स्थापन कलश स्थापन विधि के अनुसार करना चाहिये। उन समस्त कलशों में सर्वोषधि इत्यादि प्रक्षिप्त कर दम्पति का अभिषेक करना चाहिये। उसके बाद शान्ति विधि में बतलाई गयी बिधि के अनुसार हवनादि प्रकियाओं को समपन्न करना चाहिये।

ज्वरादि रोगों के निवारणार्थ शान्ति प्रकाश नामक ग्रन्थ में सर्व नक्षत्र जन्य पीडा शान्ति प्रयोग दिया गया है। उक्त प्रकार से शान्ति करने पर तन्नक्षत्र जन्य पीडा का शमन होता है ऐसा शास्त्रकारों का मत है। सर्व प्रथम सर्व नक्षत्र जन्य पीड़ा शान्ति प्रयोग का विधान करते हुये बतलाया गया है कि पूजन प्रारम्भ करने वाले आचमनादि प्रक्रियाओं को सम्पादित कर संकल्प करना चाहिये। संकल्प में मास पक्ष इत्यादि का विधान तो होगा ही परन्तु साथ में योजनीय विन्दु अधोलिखित भी होता है- मम उत्पन्नस्य अमुक व्याधेः जीवच्छरीराविरोधेन समूल नाशार्थं अमुक नक्षत्रस्य देवताख्यं जपं करिष्ये। जप संख्या का प्रतिपादन करते हुये बतलाया गया है कि 108 या 1008 या इससे भी अधिक जपादि कराना चाहिये। प्रदत्त विधि के अनुसार अभिषेक, मन्त्रों का पाठ एवं जप श्रेयष्कर होता है। इसमें नक्षत्रों को देखकर यह निर्णय किया जाता है कि इस नक्षत्र में उत्पन्न होने वाला ज्वर कितना कष्टकारी होगा। उसी प्रकार का उपचार निर्णीत किया जाता है। अर्थात् इससे रोग की गम्भीरता का विचार किया जाता है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावलियां-

सम्भार- सामग्री, पीड़ा- कष्ट, समित्- समिधा, तिल- तिल्ली, आज्य- घृत्, ओदन- भात, यमल- जुड़वा, क्षीर- दुग्ध,पंचत्वक्- पांच पेड़ों की छालें, हिरण्य- सुवर्ण, रजत- चांदी, कांस्य- कांसा, पायस- खीर, पंचगव्य- गौ से निकले पांच पदार्थ, सप्त धान्य- सात प्रकार का अनाज, सप्तमृत्तिका- सात स्थानों की मिट्टी, श्वेत सर्षप- सफेद सरसों, अर्क- मदार, पलाश- पलाश, खदिर- खैर, गोमय- गोबर, पल्लव- वृक्ष का पत्ता, द्राक्षा- खर्जूर, अपामार्ग- चिचिड़ी, उदुम्बर- गूगल, कृसर- खिचड़ी, वृषभ- बैल, निष्क्रय- क्रय करने के लिये, व्याधि- रोग, छाग- बकरी, खड्ग- तलवार, मृद- मिट्टी, महिषी- भैंस, योजनीय- जोड़ने योग्य, वर्जनीय- त्यागने योग्य, अश्व- घोड़ा, लौह- लोहा, मुक्ताफल- मोती, विद्रुम- मूंगा, गारुत्मक- पन्ना, पुष्पक- पुखराज, वज्र- हीरा, कुलित्थ- कुलथी, रक्त- लाल, पीत- पीला, कृष्ण- काला, वर्ण- रंग, आमलक- आंवला, माष- उड़द, तंडुल- चावल, पूंगीफल- सुपारी, मुखवलोकन- मुख का अवलोकन करना, भुर्जपत्र- भोजपत्र, तण्डुल-चावल, शक्कर- देशी चीनी, चड़क- चना, मुद्ग- मूंग, श्यामक- सांवा, गोधूम- गेहूं, कंगु- ककून, बल्मीक- चीटी का स्थान, संगंम- दो या दो से अधिक नदियों का मिलन।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

पूर्व में दिये गये सभी अभ्यास प्रश्नों के उत्तर यहां दिये जा रहे हैं। आप अपने से उन प्रश्नों को हल कर लिये होगें। अब आप इस उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कर लीजिये। यदि गलत हो तो उसको सही करके पुनः तैयार कर लीजिये। इससे आप इस प्रकार के समस्त प्रश्नों का उत्तर सही तरीके से दे पायेगें।

3.3.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-ग, 5-ग, 6-ग, 7-ग, 8-ग, 9- ख, 10- क।

3.3.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-घ, 3-ग, 4-ग, 5-ख, 6-ग, 7-घ, 8-घ, 9- गा 10-ग।

3.4.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-क, 3-ख, 4-क, 5-ख, 6-ख, 7-क, 8-ग, 9-ख, 10-क।

3.4.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-घ, 2-क, 3-ख, 4-ग, 5-घ, 6-क, 7-क, 8-ग, 9- ख, 10-ग, ।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1-मूल शान्तिः।

2-शान्ति- प्रकाशः।

3-कर्मकाण्ड- प्रदीपः।

4-शान्ति- विधानम्।

5-संस्कार एवं शान्ति का रहस्य।

6-यजुर्वेद- संहिता।

7- ग्रह- शान्तिः।

8- फलदीपिका

9- अनुष्ठान प्रकाश।

10- कर्मजभवव्याधि दैव चिकित्सा।

3.9- सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री-

1- मुहूर्त्त चिन्तामणिः।

2- श्री काशी विश्वनाथ पंचांग

3- पूजन विधानम्।

4- रत्न एवं रुद्राक्ष का धारण

3.10 निबंधात्मक प्रश्न-

1- यमल जनन का परिचय दीजिये।

2- ज्वरादि रोगोत्पत्ति विचार की प्रासंगिकता बतलाइये।

3- यमल जनन शान्ति के बारे में आप क्या जानते है? वर्णन कीजिये।

4- यमल जनन शान्ति विधि का विधान वर्णित कीजिये।

5- ज्वरादि रोगोत्पत्ति शान्ति विधि का वर्णन कीजिये।

6- अग्न्युत्तारण सविधि लिखिये।

7- दिग्रक्षण विधि का वर्णन कीजिये।

8- अभिषेक की विधि का वर्णन कीजिये।

9- ज्वरोत्पत्ति शान्ति के वैदिक मन्त्रों को लिखिये।

10- पंचांग पूजन के बारे में बतलाइये।